॥ श्रीः ॥

कविकुलकण्ठीरव विद्यापति विरचित-

पुरुषपरीक्षा ।

पं. चंद्रकान्तपाठक काव्यतीर्थकृत भाषा-
गद्यपद्यसहिता ।

उसीको
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजीने
अपने "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापेखानेमें
छापकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९८४, शके १८४९.

कल्याण-मुंबई.

सव

भूमिका.

…हित्य भण्डारमें एकसे एक अमोल रत्न भरे पडे हैं
…नशीबमें नहीं, ये उन्हींके नशीबमें हैं, जिन्होंने
…की अभिज्ञताके लिये अविश्रान्त परिश्रम किया
… जटिल तथा गम्भीर है.

इसमें सन्देह नहीं कि कुछ दिनोंसे कुछ सहृदय संस्कृतज्ञ विद्वानोंका संस्कृतसे हिन्दीमें अनुवाद करनेकी तरफ चित्त आकर्षित हुआ है, जिससे श्रीमद्भागवत महाभारत जैसे क्लिष्ट ग्रंथोंका अर्थ सर्व साधार-…को समझनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है पर ऐसे संस्कृत विद्वानोंकी संख्या पर्याप्त नहीं अत्यल्प है, दुनियाँमें एकसे एक दिग्गज विद्वान् इस समय विद्यमान है, यदि कहीं सबका चित्त संस्कृतसे भाषानुवादकी ओर आकृष्ट होता तो इस उत्तम भाषासे वंचित्त बहु संख्यक हमारे …रतवासियोंका अज्ञानान्धकार समुद्रके उस पार अवश्य भाग जाता, अस्तु ईश्वरसे इसके लिये मेरी हार्दिक अभ्यर्थना है.

मैं भी दो अक्षर संस्कृत जानता हूं इस लिये मेरी भी इच्छा हुई कि, मैं भी पहले एक छोटीसी संस्कृत पुस्तकका भाषानुवाद करके श्रीगणेशाय नमः करूं उसीका यह परिणाम है कि इस छोटीसी संस्कृत पुस्तकका हिन्दी गद्य पद्यानुवाद पाठकोंके समक्ष उपस्थित करता हूं, मूलग्रंथके प्रणेता है कविकुल कंठीरव विद्यापति ठाकुर आप मिथिला प्रदेशान्त-र्गत बिसपी ग्रामके अधिवासी थे. आपका जन्मकाल १३६३ के आगे पीछे सिद्ध है, आप संस्कृतके अगाध विद्वान् थे, आपने अनेक संस्कृत तथा मिथिला भाषामें ग्रंथ रचना की है, आपने पुरुषपरीक्षा मिथि-लाके राजा शिवसिंह देवकी आज्ञासे लिखी थी, इस पुस्तककी उत्त-मता देख उक्त राजा साहबने आपको विसपी नामका ग्राम दिया उस ग्रामकी दीर्घताके विषयमें यह लोकोक्ति मिथिलामें प्रसिद्ध है कि "नवसौ हर विसवी बहै तैयो विसपी पडले रहै" अस्तु राजा शिव सिंह देवने जो कविवरजीको ग्राम दिया उसके शासन पत्रका कुछ अंश यहां दिया जाता है,—

स्वस्ति गजरथेत्यादि समस्तप्रक्रियाविराजमानश्रीमद्रामेश्वरी-वर-लब्धप्रसादभवानीभव-भक्तिभावनपरायण-रूपनारायण-महाराजाधिराज श्रीमच्छिवसिंहदेवपादाः समरविजयिनःजरइलतप्पायां विसपीग्राम-वास्तव्यसकललोकान् भूकर्षकांश्च समादिशन्ति । मतमस्तु भवता ग्रामोऽयमस्माभिः सप्रक्रियाभिनव-जयदेव-महाराज-पण्डित-ठक्कुर श्री विद्यापतिभ्यः शासनीकृत्य प्रदत्तोऽतो यूयमेतेषां वचनकरीभूः कर्षणादिकं कर्म करिष्येथेति. ल सं २९३ श्रावण शुदि सप्तम्यां गुरौ ।

श्लोकास्तु—

अब्दे लक्ष्मणसेनभूपतिमते वह्नि ३ ग्रह ९ द्य २ ङ्किते
मासि श्रावणसंज्ञके मुनितिथौ पक्षे वलक्षे गुरौ ।
वाग्वत्याः सरितस्तटे गजरथेत्याख्याप्रसिद्धे पुरे
दित्सोत्साहविरूढबाहुपुलकः सभ्याय मध्येसभम् ॥ १ ॥
प्रज्ञावान् प्रचुरोर्वरं पृथुतराभोगं नदीमातृकं
सारण्यं ससरोवरञ्च विसपीनामानमासीमतः ।
श्रीविद्यापतिशर्मणे सुकवये वाणीरसस्वादविद्-
वीरश्रीशिवसिंहदेवनृपतिर्ग्रामं ददे शासनम् ॥ २ ॥

मैंने पद्यानुवाद अनेक छन्दोंमें किया है, अधिकतर हिन्दीके छन्द हैं, और कुछ संस्कृतके सस्कृतके छन्दोंमें प्रायः तुकान्त कविता करनेकी प्रथा बहुत कम है तदनुसार संस्कृत छन्दकी कविताओंको तुकान्त करनेकी तरफ मेराभी ध्यान न रहा. अतुकान्त होनेपरभी कर्ण मधुरता लानेका प्रयत्न किया गया है, सब कवितायें ठेठ हिन्दीमें लिखी गई हैं.

इस पुस्तकमें कुल कथायें ४१ हैं ये कथायें हितोपदेश तथा पंचतंत्रसे कम महत्त्वकी नहीं हैं सब कथायें शिक्षाप्रद तथा दिलचश्प हैं, इसका मलग्रंथ अलाहाबाद विश्व विद्यालयमें टेक्स्टबुकभी रह चुका है, इस पुस्तककी उत्तमता तथा विशेष चित्ताकर्षकता आदिके विषयमें आडम्बरके साथ लम्बी चौडी भूमिका लिखकर हम सहृदय पाठकोंको मुग्ध करना नहीं चाहते हैं क्योंकि जो वस्तु प्रत्यक्ष है उसमें प्रमाण देना क्या है ? मानो एक प्रकारका पिष्टपेषण है व्यर्थ है. जब यह पुस्तक

१ मूल ग्रथमें ३८–३९ कथायें विचारणीय हैं ।

उनके करकमलमें पडेगी तब वे स्वयं पुस्तकका दोष गुण जान-लेवेंगे, इसकी उत्तमता अनुत्तमताकी परिक्षा उनकी प्रज्ञा कसौटीके ऊपर खुद हो जावेगी. इसलिये अधिक न कहकर क्षमाशील पाठकोंसे नम्रता पुरःसर प्रार्थना है कि, यदि इस पुस्तकमें कुछ त्रुटियां रहगयीं हों तो उनको क्षमा करके करुणा प्रदर्शित करेंगे।

विनतंकधर—

चन्द्रकांतपाठक काव्यतीर्थ.

हेडपण्डित एम्. एम् हाईस्कूल,

धमतरी सी. पी.

जि० रायपुर.



॥ श्रीः ॥

पुरुषपरीक्षाकी–विषयानुक्रमणिका ।

विषय.	पृष्ठ.
१ मंगलाचण.	१
२ दानवीर कथा.	४
३ दयावीर कथा.	१३
४ युद्धवीर कथा.	२०
५ सत्यवीर कथा.	२९
६ कृपण कथा.	३४
७ अलस कथा.	३८
८ भीरु कथा.	४१
९ चौर कथा.	४७
१० मेधावी कथा.	५८
११ सुबुद्धिकथा.	६१
१२ वंचक कथा.	६५
१३ पिशुन कथा.	७६
१४ जन्मबर्बर कथा.	८६
१५ संसर्ग बर्बर कथा.	९०
१६ शस्त्रविद्य कथा.	९२
१७ शास्त्रविद्य कथा.	९८
१८ लोक विद्य कथा.	१०३
१९ उभयविद्य कथा.	१११
२० चित्रविद्य कथा	१२०
२१ गीत विद्य कथा.	१२७
२२ नृत्यविद्य कथा.	१३२
२३ इन्द्रजालविद्य कथा.	१३६
२४ हासविद्य कथा.	१३८
२५ पूजित विद्य कथा.	१४२
२६ अवसन्न विद्य कथा	१४४
२७ अविद्य कथा	१५०
२८ खण्डितविद्यकथा	१५३
२९ सात्विककथा	१५६
३० तामसकथा	१६२
३१ अनुशयी कथा	१६४
३२ महेच्छकथा	१७३
३३ मूढकथा	१७८
३४ बह्वाशकथा	१८२
३५ सावधानकथा	१८६
३६ अनुकूलकथा	१९०
३७ दक्षिणकथा	१९७
३८ घस्मरकथा	२०१
३९ निर्बन्धिकथा	२१३
४० निस्पृहकथा	२२०
४१ लब्धसिद्धिकथा	२२४
४२ राजाशिवसिंह देवकी–वंशपरंपरा	२२९

इति विषयानुक्रमणिका समाप्त ।

छन्द-सूची।

१ चवपाया

२ रोला

३ भुजंगप्रयात

४ शिखरिणी

५ गीतिका

६ द्रुतविलम्बित

७ स्रग्धरा

८ तोमर

९ शार्दूल विक्रीडित

१० वंशस्थ

११ मालिनी

१२ वसन्ततिलका

१३ चौपाई

१४ दोहा

१५ छप्पय

१६ कुण्डलिया

॥ श्रीः ॥

पुरुषपरीक्षा.

भाषागद्य पद्य सहिता ।

मंगलाचरणम् ।

ब्रह्मापि यां नौति नुतः सुरेन्द्रैर्यामर्चितोप्यर्चयतीन्दुमौलिः ।
यां ध्यायति ध्यानगतोऽपि विष्णुस्तामादिशक्तिं शिरसा प्रपद्ये॥१॥

सुर--सुरपति -वन्दित ब्रह्माभी जिसको शिरसे हैं नमते
सुर--सुर पति-- वन्दित शशि धर भी जिसका पूजन हैं करते ।
सुर सुर पातिसे ध्यात विष्णुभी जिसका ध्यान सदा करते
ऐसी श्री श्री आदिशक्ति मायाको हम शिरसे नमते ॥ १ ॥

वीरेषु मान्यः सुधियां वरेण्यो विद्यावतामादिविलेखनीयः ।
श्रीदेवसिंहक्षितिपालसूनुर्जीयाच्चिरं श्रीशिवसिंहदेवः ॥ २ ॥

वीरोंमें था आदर जिनका जो थे वर पण्डित गणमें
गणना जिनकी पहले होती थी विद्वन्मण्डलगणमें ।
ऐसे नरपति देवसिंहके सुत हैं जिनका नाम उदार
श्री श्री श्री शिवसिंहदेव हैं ये जीवें चिरकाल उदार ॥ २ ॥

शिशूनां सिद्ध्यर्थं नयपरिचितेर्नूतनधियां
मुदे पौरस्त्रीणां सकलकविताकौतुकजुषाम् ।
निदेशान्निःशंकं सपदि शिवसिंहक्षितिपतेः
कथानां प्रस्तावं विरचयति विद्यापतिकविः ॥ ३ ॥

नूतनमतियुत बालवर्गको नीतिज्ञान हो
प्रिय कवित्वपुरकी महिलाओंको प्रमोद हो ।
एतदर्थ शिवसिंहदेव आज्ञापर स्थित हो
रचते विद्यापति कवीन्द्र यह द्रुत अभीत हो ॥ ३ ॥

ध्यानुरोधेन गुणेन वाचां कथारसस्यापि कुतूहलेन ।
बुधोऽपि वैदग्ध्यविशुद्धचेताः प्रस्तावमाकर्णयिता न किं मे ॥ ४ ॥

नातिगुणासे पूर्ण हमारी है यह वाणी
सरस कथासे पूर्ण हमारी है यह वाणी।
चतुर तथा सुविशुद्ध--चित यदि विबुध रहेंगे
तदपि न क्या यह कथा हमारी वे न सुनेंगे॥ ४॥

पुरुषाः परिचीयन्ते युक्तेरस्याः परीक्षया।
तत्पूरुषपरीक्षेयं कथा सर्वमनःप्रिया॥ ५॥

इस पुस्तकमें कहीं गयीं जो युक्ति सकल हैं
होता सकल पुरुषका उनसे सुपरीक्षण है।
'पुरुषपरीक्षा' इससे इसका नाम पड़ा है
सबके मनको हरती इसकी सकल कथा है॥ ५॥

आसीदासमुद्रक्षितिपतिः क्षितिपतिसहस्रशिरोमणिमरीचिमञ्जरीरञ्जितपादपीठश्चन्द्रातपायां पुरि पारावारो नाम राजा। तस्य सर्वावयवसुन्दरी सर्वलक्षणसम्पन्नैका पद्मावती नाम कन्या बभूव। तस्याः शैशवापगममवलोक्य स राजा तदनुरूपं वरमनुसन्दधानः सचिंतो बभूव॥ यतः-

चन्द्रातपा नामक पुरीमें पारावार नामका एक राजा राज्य करता था, उसने समुद्रपर्यन्तका आधिपत्य अपने हस्तगत कर लिया था, वह ऐसा प्रतापी राजा था कि हजारों राजा लोग अपने शिरो मुकुटके मणिमें उसके पादपीठको रंजित किया करते थे उसको सर्व शुभलक्षणोंसे भूषित सर्वांग सुन्दरी पद्मावती नामकी एकही कन्या थी जब इसका शिशुत्व चला गया और इसमें यौवनका संचार हो आया तब राजा पारावार इसके अनुरूप वरप्राप्ति कैसेहो इस चिन्तासे चिन्तित हुआ क्योंकि कहाभी है:-

अव्यापारपराङ्मुखस्य विततन्यायाभ्युपात्तश्रियो
भुञ्जानस्य सदैव पथ्यमशनं रोषादिशत्रुद्विषः।
योग्यायोग्यवरार्थनार्थनविधौ चाभ्यर्थनाभङ्गभी-
श्चिन्तार्त्तं तनुते सतोऽपि हृदयं स्वस्थस्य कन्यावतः॥ १॥

उचित कार्यको करते जो हैं नयसे पाते धन जो है
करते भोजन सदा पथ्य जो क्रोध आदिके रिपु जो है।

ऐसे कन्यावान सुजनको योग्य वरान्वेषणके काल
यांचा-भंग-भीति करती है मनको चिन्तासे बेहाल ॥ १ ॥

ततः किं करवाणीति वसूक्तिनामानं मुनिमपृच्छत् । तथाहि—

बाद पारावारने वसूक्ति नामके ऋषिसे इस विषयमें सलाह ली कि क्या करूं जैसा कि कहा गया है:--

नैकाकी निर्णयं कुर्यादिष्टे कृत्यविधौ क्वचित् ।
संभवंति बुधस्यापि दोषादोषभ्रमादयः ॥ २ ॥

करे न सिद्धान्त कहीं किसी भी, स्वकार्यमें हो असहाय कोई ।
अदोषदोष भ्रम आदि होते, हैं विज्ञकोभी परकी कथा क्या ॥ २ ॥

राजोवाच । मुने ! ममेयं पद्मावती नाम कन्यका विद्यते । तत् कमेतस्या वरं करवाणीति विमृश्यादिशतु भवान् । मुनिरुवाच । राजन् पुरुषवरं कुरु । राजोवाच । कथमपुरुषोऽपि वरः संभवति । मुनिरुवाच । राजन् पृथिव्यां बहवः पुरुषाकाराः सन्तीति तत्पुरुषाकारान् परित्यज्य पुरुषवरं वरयेति ब्रवीमि । तथाहि—

राजाने कहा कि हे मुनिजी ! मुझे पद्मावती नामकी एकही कन्या है इसका विवाह किसके साथ करूं यह सोचकर कहिये. यह सुन मुनिने कहा कि हे राजन् ! इसका विवाह पुरुषके साथ करडालो यह सुन राजा पारावार आश्चर्यित हुआ और मुनिसे पूछा कि हे महाराज ! आपने जो कहा है कि कन्याका विवाह पुरुषके साथ कर डालो तो क्या अपुरुषभी वर हो सकता है ? यह सुन मुनिने कहा राजा ! इस संसारमें ऐसे बहुत पुरुषरूपधारी मनुष्य हैं उनको छोडदो और एक श्रेष्ठ पुरुषके साथ अपनी कन्याका विवाह करडालो यह मेरे कहनेका तात्पर्य है. जैसे कि:-

लभ्यन्ते पुरुषाकाराः पुरुषाः खलु दुर्लभाः ।
वक्ष्यमाणेन चिह्नेन निखिलेनोपलक्षिताः ॥ ३ ॥

पुरुष आकृति धारक मात्र हैं, पुरुष वे मिलते अतिमात्र हैं ।
सकल लक्षण लक्षित सभ्य हैं, पुरुष जो नहिं वे सुख लभ्य हैं ॥ ३ ॥

था—वीरः सुधीः सुविद्यश्च पुरुषः पुरुषार्थवान् ॥
तदन्ये पुरुषाकाराः पशवः पुच्छवर्जिताः ॥ ४ ॥

जो वीर है सुमति है कृतविद्य जो है, जो पौरुषी पुरुषभी वहही सहीहै।
हो उक्त लक्षण नहीं जिनमध्य सारे, वे पुच्छहीन पशुहैं नररूप धारे ४

राजोवाच । वीरादयः कथं परिचेतव्याः । मुनिरुवाच ॥

यह सुन राजा पारावारने फिरभी पूछा. कि हे मुने ! उन वीर आदि पुरुषोंकी परीक्षा कैसे हो यह समझाकर मुझे कहिये यह सुन मुनिने कहा ॥

अथ वीरकथा ।

१ दानवीरकथा ।

वीरः शौर्यविवेकाभ्यामुत्साहेन च मंडितः ।
मातापित्रोरलंकर्तुं कुलं कुत्रापि जायते ॥ १ ॥

उत्साहसे शौर्य विवेकसे जो, हैं युक्त वे वीर कहे गये हैं ।
ये जन्म लेते जननी पिताके, सुवंशके भूषण हो कहीं भी ॥ १ ॥

शौर्यं कार्पण्यराहित्यं विवेको धीर्हिताहिते ।
क्रियाप्रवृत्तिरुत्साहो वीरस्तैस्तु भवेत्त्रिभिः ॥ २ ॥

निर्भीकता शौर्य कहा गया है, हिताहितज्ञान विवेक तद्वत् ।
उत्साह है कार्य प्रवृत्ति होना, वे वीर हैं जो इनसे सुयुक्त ॥ २ ॥

स च चतुर्विधः । दानवीरो दयावीरः सत्यवीरो युद्धवीरश्च। तद्यथा–

वीर चार प्रकारके होते हैं:–दानवीर, दयावीर, सत्यवीर और युद्धवीर.

दानवीरो हरिश्चन्द्रो दयावीरः शिबिर्नृपः ।
युद्धवीरोऽभवत् पार्थस्सत्यवीरो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

हरिश्चन्द्र लोकेश थे दानवीर, दयावीर राजा शिबी होगये हैं ।
तथा होगये पार्थ है युद्धवीर, हुए धर्म वीराग्रणी धर्मपुत्र ॥ ३ ॥

राजोवाच । मुने ! ते युगान्तरपुरुषाः कलौ शिक्षायामुपमानत्वं नायांति । यतः–

यह सुनकर राजा पारावार फिर बोला–हे मुने ! ये लोग युगान्तरके पुरुष हैं इसलिये इस कलियुगमें उपदेश देनेके समय इनकी उपमा देना ठीक नहीं जचता क्योंकिः–

कलौ शिक्षाहेतुर्न खलु कृतजातस्य चरितं
कथायां दृष्टान्तः समयकृतभेदान्न घटते ।

न सा बुद्धिः पुंसां न च वपुषि तेजस्तदधुना
न वा सत्यं तादृक् कलिसमयसंजातजनुषाम् ॥ ४ ॥
न शिक्षा देता है चरित कृतउत्पन्न नरका
कथामें देना है समुचित न दृष्टान्त उसका ।
न तेजी है वैसी कलिसमय उत्पन्न जनमें
न थी सच्चाई भी यह समय तो है अपर ही ॥ ४ ॥

ततः कलिसमयसंजातानामेव पुरुषाणां कथाभिः परिचाययतु मां वीरं भवान् । मुनिरुवाच–

इसलिये इस कलियुगमें उत्पन्न पुरुषोंकी ही कथाके द्वारा हमें वीर-पुरुषोंका परिचय करा दीजिये. यह सुन मुनि बोलेः–

सत्ये त्रेतायुगे चैव द्वापरे भूभुजां नयः ।
कथितः सूरिभिः पूर्वैः कथ्यते च कलौ मया ॥ ५ ॥
प्राचीन विद्वद्वरने कही है, जो नीति त्रेतायुगमें नृपाल ।
औ सत्यमें द्वापरमें तथैव, मैं हूं बताता कलिमें उसीको ॥ ५ ॥

तत्र दानवीरकथा तावत् प्रस्तूयते ॥ यतः–

पहले दानवीरकी कथा प्रारम्भ की जाती है क्योंकिः–

स्मृतेनोच्चार्यमाणेन यत्नादाकर्णितेन च ।
नाम्नाऽपि दानवीरस्य शुभं सर्वत्र जायते ॥ ६ ॥
स्मरण जो करते नरदान वीर, नर नाम तथा रहते उसे ।
श्रवण हैं करते फिर जो उसे, नृपति वे नर हैं शुभभाजन ॥ ६ ॥

आसीदुज्जयिनी नाम राजधानी । तस्यां विक्रमादित्यनामा राजा बभूव । स चैकदा सिंहासनोपविष्टः केनापि वैतालिकेन पठ्यमानं श्लोकमेकं शुश्राव ॥ तद्यथा–

उज्जयिनी नामकी राजधानी थी, जिसमें विक्रमादित्यनामका राजा राज्य करता था एक समय उसने जब कि वह राज सिंहासनपर समासीन था, एक किसी वैतालिकके मुखसे एक पद्य सुना वह यह हैः–

विप्रैः संतुष्टचित्तैः प्रमुदितहृदयैर्वादिभिर्लब्धकामै–
र्भृत्यैः सिद्धाभिलाषैर्दिगवनिपतिभिर्वश्यतामाश्रयद्भिः ।

विद्वत्सार्थैः कृतार्थैर्दिशिदिशि सुभटैः काञ्चनाभ्यर्च्यमानै-
र्नित्यं संस्तूयमानः स जयति नृपतिर्दानवीरो बलाहः ॥ ७ ॥

सब विप्र जिनकी नित्य ही करते प्रशंसा तुष्ट हो
फिर वन्दिजनभी नित्य ही करते प्रशंसा तुष्ट हो ।
सब भृत्य भी जिनकी प्रशंसा पूर्ण हो करते सदा
जिनकी प्रशंसा वश्य नृप दिकपाल भी करते सदा ॥
फिर विज्ञगण करते प्रशंसा नित्य ही कृतकृत्य हो
फिर स्वर्णसे पूजित सुभट गण जिन नृपतिसे नित्य हो ।
करते गुणोंका गान जिनके सब दिशाओंमें सदा
हैं शोभते वे दानवीर बलाह नरपालक सदा ॥ ७ ॥

ततो राजा पठन्तं वैतालिकमब्रवीत् । रे रे वैतालिक ! कस्तव नृपतिर्बलाहः। केन दर्पेण मम पुरतस्तस्योत्कर्षं प्रस्तौषि । वैतालिक उवाच । देव मम वृत्तिरियं वैतालिकस्य यद् वीराणां यशः परितः प्रस्तूयते । तथाहि-

इन पद्योंको सुनकर राजा विक्रमादित्यके दिलमें बड़ी ईर्षा हुई, और वह बोला रे वैतालिक ! तेरे राजा बलाहकी भला क्या योग्यता है? तू किस दर्पसे मेरे सामने उसके उत्कर्षकी प्रशंसा कर रहा है? राजाकी ऐसी बात सुन वैतालिकसे नहीं रहा गया, वह झट बोल उठा हे देव ! मैं वैतालिक हूं, मेरी तो यही वृत्ति है कि मैं वीरोंकी कीर्तिको दशों दिशामें फैलाया करता हूं देव सुनिये:-

शूरान् नियोधयति बोधयति प्रमत्तान्
कौत्स्यं विमोचयति कापुरुषान् वचोभिः ।
ब्रूते विपक्षवचनं पुरतो नृपाणां
वैतालिकः कृपणतां नृपते न याति ॥ ८ ॥

वीरोंको जो युद्ध कराना प्रमत्तको समझा देना
वचनद्वारा दुर्जनतासे रहित कुजनको कर देना ।
क्षितिपतिके भी वह प्रत्यक्ष विपक्षवचन वक्ता होता
नरपति सुनिये मेरी वाणी वैतालिक न कृपण होता ॥ ८ ॥

अत एव मामर्थैः शूराः परितोषयन्ति । अहं तु तेषामंकुरितं यशः प्रतिदिशं पल्लवयामि । देवो यदि तदाकर्णने सामर्षस्तदा तदधिकं तद्रूपं वा पौरुषं वितनोतु । कुप्यति कुतः । राजोवाच । किंतत्पौरुषम् । वैतालिकः कथयति । देव तस्य बलाहनाम्नो भूमिपतेर्द्वारि प्रतिरात्रि एकं सौवर्णायतनमुत्पद्यते प्रतिदिनं तच्छेदयित्वा स राजा सुवर्णानि ब्राह्मणेभ्यो दरिद्रेभ्यश्च वितरति । तद्दानपरितुष्टास्ते सर्वत्र तस्य कीर्त्तिगाथां गायन्ति। राजोवाच । वैतालिक सत्यमेतत् ? वैतालिक उवाच । राजन्न तथ्यं कः कथयति। यदि मदुक्तं न प्रत्येति तदा स्वकीयेन चारपुरुषेण निरूपयतु। राजोवाच । वैतालिक! यावदेतान्निरूपयामि तावत्त्वमिहैव नगरे तिष्ठ । यदि तथ्यवाक् भविष्यसि तदा रत्नैस्त्वां पूरयिष्यामीत्यभिधाय वतालिकं बहिः प्राहिणोत् । राजा चान्तःपुरं गत्वा रहस्यचिन्तयत् । अहो महदाश्चर्यं बलाहचरितम् । अथवा धातुः प्रपञ्चे किमसम्भाव्यम् । तत्पश्यामि गत्वा कौतूहलमिदमिति । परामृश्य राज्यधुरं सचिवे सन्निवेश्य अग्निकोकिलनामानौ वेतालावाहूय तयोः स्कन्धमारुह्य जगाम बलाहस्य राजधानीम्। तत्र च सुभटवेषधारी राज्ञो बलाहस्य दर्शनं कृत्वाऽब्रवीत् ।

अतएव शूरगण अर्थराशि देकर हमको सन्तुष्ट करते हैं हम भी उनके अंकुरितयशको प्रत्येक दिशामें पल्लवित किया करते हैं, आप यदि राजा बलाहके उत्कर्षका सुनकर सामर्ष हैं तो उनसे अधिक अथवा उनके समान भी पौरुष क्यों नहीं करडालते, मेरे ऊपर क्रोध क्यों? यह सुन राजा विक्रमादित्य बोला अच्छा बता उसका पौरुष क्या है? तब वैतालिक बोला–महाराज! महाराज बलाहके द्वारपर प्रतिरात्रि एक सुवर्णका आयतन खडा होजाता है जिसे काटकर राजा प्रतिदिन ब्राह्मणों तथा दरिद्रोंको दिया करता है, वे भी उसके दानसे सन्तुष्ट होकर उसकी कीर्ति गाथाका गान सर्वत्र करते फिरते हैं, यह सुन राजा विक्रमादित्य आश्चर्यित हो बोला रे वैतालिक! क्या यह बात सत्य है, वैतालिक-महाराज! किसकी ताकत है जो महाराजके समक्ष असत्य

भाषण करे, यदि महाराज मेरे ऊपर विश्वास न करे तो किसी भी एक चार पुरुषको वहां भेजकर महाराज इसकी परीक्षा कर लेवें, यह सुन राजा विक्रमादित्यने फिर वैतालिकसे कहा कि रे वैतालिक ! मैं इस बातकी परीक्षा करनेके लिये एक चारको वहां भेजता हूं तबतक तू यहां ही ठहर यदि तेरी वाणी सच्ची हुई तो विश्वास रख कि तेरा मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा, ऐसा कहके राजा विक्रमादित्यने उस वैतालिकको बाहिर भेज दिया और स्वयं अन्तःपुरमें जाकर एकान्तमें सोचने लगा कि सच-मुच राजा बलाहका चरित्र बडाही आश्चर्यजनक है अथवा विधाताकी सृष्टिमें असम्भवही क्या है सो वहां जाकर वह आश्चर्यजनकदृश्य अवश्य दर्शनीय है ऐसा परामर्श करके राजा विक्रमादित्यने अपने राज्यका भार अपने मन्त्रीको सौंप दिया, और अग्नि और कोकिल नामक वैतालोंके कन्धोंके ऊपर आरूढ हो राजा बलाहकी राजधानीको चला गया और वहां सुभटका वेष धारण करके राजा बलाहसे भेंट कर कहाः-

'देव अनन्यसमसाहसस्य श्रीविक्रमादित्यस्य दौवारिकोऽहम्' भवतः कीर्त्तिमाकर्ण्य सेवितुमागतोऽस्मि' इत्यभिधाय प्रणनाम। राजोवाच। 'हे दौवारिक महतो महीपालस्य दौवारिकोऽसि तन्ममापि द्वार-देशमधितिष्ठ'।ततः प्रभृति विक्रमादित्यो द्वारि तिष्ठन् परमाद्भुतं प्रत्य-हमुत्पद्यमानं सुवर्णायतनं तद्वितरणं चापश्यत् । ततश्चिन्तयामास । कुत एवास्य सुवर्णायतनं कुतो मम नास्ति।पुरुषाधीने व्यापारे पुरु-षेण नोदासितव्यम । कारणमत्र निरूपयितुं युज्यते।ततस्तत्कारण-जिज्ञासुस्तत्कारणं निरूपयामास।एकदा रात्रौ महानिशाभागे सकलेषु पौरजनेषु राजपरिजनेषु च प्रसुप्तेषु प्रासादादेकाकिनं निस्सरन्तं नग-राच्च बहिर्भवन्तं बलाहराजानं ददर्श।दृष्ट्वा च निभृतक्रमेण तेनालक्षित-स्तदनुगमनपरायणो बभूव। बलाहस्तु परमभयानकं श्मशानमाससाद। तत्र च नद्यां कृतस्नानो भैरवपुरुषैर्नरचर्मरज्जुभिर्बद्धः प्रबलानलसन्त प्ततैलपूर्णे कटाहे निक्षिप्तश्च।स तत्र महतीं वेदनामनुभवन्महता कष्टेन प्राणांस्तत्याज । तस्य च त्यक्तप्राणस्य तैलसुसिद्धानि मांसानि भगवत्या चामुंडया खादितानि । भक्षितमांसा भगवती परितुष्टा

तदस्थीन्यमृतेन सिक्त्वा तं पुनस्तथैव ससर्ज । सृष्टो बलाहः पुनरुत्थाय भगवतीं प्रणनाम वरंच वव्रे । हे भगवति ! वदान्यतया संभावितस्य पुरुषस्यार्थिजनमनोरथपूरणाशक्तिर्मरणादप्यतिरिच्यते। ततोऽहं मरणमंगीकृत्य याचकजनवाञ्छापूरणकामो निजमांसैर्भगवतीमर्चितवानस्मि । मातः ! पूरय मे कामनाम् । देव्युवाच । बलाह ! कृतार्थोऽसि निजभवनद्वारि सौवर्णायतनं भविष्यतीत्युक्त्वा विरराम । ततो वरं लब्ध्वा प्रत्यावृत्तो बलाहः कृतार्थो निजमगारमाजगाम। विक्रमादित्यस्तत्सर्वं दृष्ट्वा चिंतयामास । सत्यं कथितं वैतालिकेन । दानवीर एवायं बलाहः यतः प्रत्यहं दानार्थं प्राणपरिवर्तन धनमर्जयति । भगवती करुणावत्यपि कथमेकेनैव प्राणपरित्यागसाहसेन कृतार्थं न कुरुते ।भवतु तावदग्रिमनिशायां यदुचितं तत्करिष्यामीति परामृश्य राजद्वारं गत्वा निजाधिकारमलंचकार । तदग्रिमनिशायां तु सचिवसामंतभृत्यपरिवारितो बलाहो यावदेकान्तमपेक्षते तावदप्रसुप्तेष्वेव नगरलोकेषु निष्परिजनो विक्रमादित्यः प्रदोषे तं प्रदेशं गतस्तस्यां नद्यां स्नात्वा तस्मिन्नेव संतप्ते तैलपूर्णे कटाहे झम्पमकरोत् । आर्द्रमांसयोगात्तप्ततैलकटकटाशब्देन भगवत्या तत्रागत्य तस्य मांसानि खादितानि तान्यस्थीन्यमृतेन सिक्तानि । ततः पुनरुत्थितं विक्रमादित्यं वलाहभ्रमेण वरेण यावद् भगवती तमनुग्र वड मिच्छति तावदनेन पुनः कटाहे झम्पः कृतः। पुनश्च भगवत्या त मांसानि खादितानि । एवं पुनर्जीवितः पुनः पुनः कृतझम्पः सात्त्विकस्वभावाद्विक्रमादित्योऽयमिति भगवत्या लक्षितो भाषितश्च । श्रीदेव्युवाच । रे विक्रमादित्य ! त्वय्यहं परितुष्टाऽस्मि । ततो लब्धाष्टसिद्धिरपि किमर्थमेतत्साहसं करोषीति परीक्षमाणा कृत्रिमां बुभुक्षां तृप्तिं च दर्शयामि । सम्प्रति तव साहसपरितुष्टास्मीति वरं वृणु तदनंतरं विक्रमादित्यः प्रणम्य वरं वव्रे । विक्रमादित्य उवाच । देवि भक्तवत्सलाऽसि जगन्मातर्वलाहे कृपार्थमहं त्वामाराधितवानस्मि । ततो बिना मरणसाहसेन प्रत्यहं बलाहस्य द्वारि सुवर्णायतनमुत्पाद्य-

ताम् । भगवत्युवाच । तथा भवत्विति वरं दत्वा स्वयमन्तर्बभूव । वरमभिलषितं लब्ध्वा विक्रमादित्यः स्वराज्यं जगाम । यथार्थवचनं वैतालिकमाहूय रत्नैस्तुरगैर्वासोभिर्वारणैश्च पूजयामास । बलाहस्तु सुप्तेषु नगरजनेषु निर्गतो निशायां यदा श्मशानदेशं गतस्तदा न किमपि दृष्टवान् किन्त्वाकाशवाचं शुश्राव । अरे बलाह ! विक्रमादित्यस्तव खेदमपनीतवान् इत्यनिर्द्धारितार्थामेव वाचं प्रत्याकलय्य किमर्थिभ्यो दास्यामीति चिन्ताव्याकुलितः परावृत्य गृहं गतोऽपि पर्यङ्कशयने निद्रां न लेभे । तत्र जाग्रदेव प्रातरागत्य दौवारिकैः प्रतिबोधितः सौवर्णायतनं पूर्ववदेव द्वारि दृष्ट्वा कृतार्थो बभूव । आकाशसरस्वत्याः प्रकरणबलेनार्थं ज्ञातवान् विक्रमादित्यप्रसादान्मम पुनर्मरणायासनिरपेक्षासिद्धिरियं जातेति । निर्द्धारितमप्यर्थं तस्य हृदि वैतालिकः समागत्य पुनरुक्तं चकार । तथा हि—

पृथ्वीनाथ ! मैं असाधारण साहससे युक्त महाराज विक्रमादित्यका दौवारिक हूं. आपकी कीर्तिगाथाको सुनकर आपकी सेवा करनेके निमित्त यहां मेरा आगमन हुआ है ऐसा कहकर प्रणाम किया, ये बातें सुन राजा बलाह बोला कि हे दौवारिक ! तू एक बडे प्रतापी राजाका द्वारपाल है इसलिये यहांभी मेरा द्वारपाल बनकर रह, यह आज्ञा पाकर राजा विक्रमादित्य उस दिनसे राजाके द्वारपर रहने लगा न एवं। जब देखने लगा कि राजा बलाहके द्वारपर प्रतिरात्रि एक सोनेका आयतन उत्पन्न होता तथा सबेरे उसका वितरण होता है तो उसे बडा आश्चर्य लगा और चिन्ता करने लगा कि राजा बलाहके द्वारपर प्रतिरात्रि एक सोनेका आयतन उत्पन्न हो मेरे यहां नहीं इसका क्या कारण है ? यदि व्यापार पुरुषाधीन है तो पुरुषको उदासीनता अवलंबन करना उचित नहीं. इसलिये सुवर्णायतनकी उत्पत्तिका कारण अवश्य जिज्ञासनीय है, ऐसा सोच तत्कारण जिज्ञासु राजा विक्रमादित्यने सुवर्णायतनकी प्राप्तिका कारण ढूंढ निकाला वह यह है एक वेर राजा विक्रमादित्यने देखा कि महानिशाके भागमें जब कि समस्त पुरवासी तथा राजा बलाहके परिजन जन गाढ निद्राके वशीभूत होकर निश्चेष्ट हो अपने अपने स्थानपर सो गये तब राजा बलाह अपने

प्रासादसे अकेला निकला और शहरके बाहर चला गया इस दृश्यको देखकर राजा विक्रमादित्यने इस प्रकार निभृत क्रमसे राजा बलाहका अनुसरण किया कि उसे यह मालूम न पडा कि मेरे पीछे कोई मनुष्य है, अब बलाहका हाल सुनिये राजा बलाह एक भयंकर श्मशान भूमिमें गया और जब वह स्नान कर चुका तब उसे भैरव पुरुषोंने चर्म निर्मित-रज्जुसे बांधकर प्रबलानलसे सन्तप्त तैल पूर्ण एक कटाहमें रखदिया वहाँ उसने असहनीय वेदनाका अनुभव करके प्राणका परित्याग किया इतनेमें भगवती चामुण्डा बलाहके तैलसुसिद्ध मांसको भक्षण करके अत्यन्त सन्तुष्ट हुई और उसकी अस्थियोंको अमृतसे सींचकर उसे पुनः प्राणदान दिया। यह देख राजा बलाह बडा सन्तुष्ट हुआ और भगवती चामुण्डाका अभिवादन करके यह वरदान मांगा कि हे भगवति! जिस मनुष्यने इस संसारमें वदान्यतायुक्त होनेका यश अधिगत किया है वह यदि अर्थियोंकी अर्थना पूर्ण करनेमें असमर्थ है तो उसकी वह असमर्थता उसे मृत्युसे भी अधिक कष्टदायक है. इसलिये मरण अङ्गीकार करके भिक्षुकोंकी वांछा पूर्ण करनेकी इच्छासे मैंने अपने शरीरके मांससे तेरी अर्चना की है. मा मेरी मनःकामना पूर्णकर. यह सुन भगवती चामुण्डा यह कहकर कि रे बलाह तू कृतार्थ हो गया जा तेरे द्वारपर सुवर्णायतन होगा'। वहांसे चली गई. इधर राजा बलाह भी कृतकृत्यहो अपने प्रासादमें आगया. इन सब वृत्तान्तोंको देखकर राजा विक्रमादित्य बडा आश्चर्यित हुआ और सोचने लगा कि बैतालिकने सत्यही कहा सचमुचमें राजा बलाह बडा ही दान वीर है. क्योंकि यह प्रतिदिन दानके लिये अपने प्राणके परिवर्तनसे धनकी उपार्जना करता है. भला करुणावती भगवती इसके एकही प्राण परित्यागरूपी साहससे इसे कृतार्थ क्यों न कर देती. अच्छा कलकी रातमें जैसा समुचित होगा, वैसा करनेका प्रयत्न करूंगा. ऐसा परामर्श करके राजा विक्रमादित्यने पहलेकीभांति राजद्वारपर जा अपने अधिकारको अलंकृत किया दूसरे दिनकी निशामें सचिव सामन्त तथा अपने सेवकोंको अपने २ घर भेजके राजा बलाह एकान्तता चाहही रहा था कि राजा विक्रमादित्य पुरवासियोंके सोजानेपर झट वहांसे अकेला निकला, और उस भयङ्कर

श्मसान प्रदेशमें जा नदीमें स्नान किया. और उसी प्रबलानल सन्तप्त तेल पूर्ण कराहमें कूदपडा आर्द्र मांसके योगसे उस सन्तप्त तेल पूर्ण कराहसे कट कट ऐसा शब्द होने लगा. जिसको सुनकर भगवती चामुण्डाने राजाके शरीरका सुसिद्ध मांसका भक्षण किया और अमृतसे सींचकर राजाको उज्जीवित किया. भगवती चामुण्डा बलाहके भ्रमसे राजा विक्रमादित्यको वर देना चाहतीही थी कि राजा विक्रमादित्य एकाएक फिरभी उस कराहमें कूदपडा, भगवतीने फिरभी मांस भक्षण किया, इस प्रकार राजा कई एकबार कराहमें गिरता गया. और भगवती चामुण्डा उसके शरीरका मांस भक्षण करके उसे उज्जीवित करती गई. अन्तमें भगवतीने सात्त्विकस्वभावसे जान लिया कि यह राजा विक्रमादित्य है. और यों बोली रे विक्रमादित्य। तेरे अनुपम साहसोंको देखकर मैं तुझपर अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ. बता तेरे इन अनुपम साहसोंका क्या कारण है. अष्टसिद्धियां तो तेरे करतलपर नाचती रहती हैं। फिर ऐसा साहस क्यों ? मैंने तेरी परीक्षा करनेके लियेही कृत्रिमा बुभुक्षा तथा तृप्ति दर्शायी है. अब मैं तेरे साहसको देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ वर मांगले. यह सुन राजा विक्रमादित्यने अभिवादन करके देवीसे कहा कि हे देवि । तू तो अन्तर्यामी जगत्की जननी है तुझे तो पहलेसेही मालूम है कि मैंने बलाहके ऊपर अनुकम्पा करनेके लियेही तेरी आराधनाकी है सो मा ! ऐसा वरदान दो जिससे राजा बलाहको प्रतिरात्रि मरणरूपी साहससे मुक्ति प्राप्तहो, और वह प्रतिदिन सुवर्णायतन प्राप्त करता रहे. यह सुन भगवती चामुण्डा 'तथाऽस्तु' यह कहकर अन्तर्धान होगई. इधर राजा विक्रमादित्यभी मनोभिलषित वर प्राप्ति करके अपनी राजधानीको चला गया, राजा बलाहको यह कुछ ज्ञात नहीं था इसलिये वह पुरवासियोंके सो जानेपर महलसे अकेलाही निकला और श्मशान भूमि जाकर उसने कुछभी न देखा केवल आकाशवाणी सुननेमें आई वहां आकाशवाणी हुई कि रे बलाह ! तेरे खेदको राजा विक्रमादित्यने दूर कर दिया, अब घरको लौट जा. राजा इस आकाशवाणीका अभिप्राय कुछभी न समझ सका और सबेरे अर्थियोंको क्या दूंगा इस चिन्तासे चिन्तित हो महलमें आ पर्यंकपर लेट गया. पर चिन्ताके कारण नींद न आई इस प्रकार सबेरा होगया. द्वारपालने

आकर उसे जगाया और वह द्वारपर जाकर क्या देखता है कि पूर्वकी नाईं सुवर्णका आयतन द्वारपर खडा है, इसके पश्चात् राजाने प्रकरणके बलसे आकाश सरस्वतीका तात्पर्य जान लिया कि महाराज विक्रमादित्यकी अनुकम्पासे मरणायासके विनाही सदाके लिये मेरी यह सिद्धि हुई, यद्यपि बलाहको ये सब बातें पहलेसेही ज्ञात थीं तथापि वैतालिकने आकर फिरसे सब बातें कह सुनायीं-

पुंसां प्रथममुल्लेख्यो राजा विक्रमकेसरी ।
कल्पते कल्पवल्लीव दानवीरेऽपि यद्दया ॥ ९ ॥

इति विद्यापति विरचितायां पुरुष-
परीक्षायां दानवीरकथा ॥

प्रथम है नरमें गणनीय जो नृपति जो बलमें मृगराज है ।
सुरलता सम है जिसकी दया नृपति दानसुवीर बलाह पै ॥ ९ ॥

इति दानवीर कथा समाप्ता ।

---

२ दयावीरकथा ।

तद्यथा-

दयालुः पुरुषः श्रेष्ठः सर्वजन्तूपकारकः ।
तस्य कीर्त्तनमात्रेण कल्याणमुपपद्यते ॥ १ ॥

जैसे कि:-

जगमें वर हैं सिर्फ वेही मनुष्य जो हैं स्नेही और सर्वोपकारी ।
ऐसे नरको जो गुणोंको सुगाते ध्रुव वे प्राणी सर्व कल्याण पाते ॥ १ ॥

अस्ति कालिन्दीतीरे योगिनीपुरं नाम नगरम् । तत्र च निजभुजविजितनिखिलभूमण्डलः सकलारातिप्रलयधूमकेतुरनेककरितुरगपदातिसमेतः संकलितजनपदो निर्जितविपक्षनरपतिसीमंतिनी सहस्रनयनजलकल्पितापारपारावारो रक्षितदीनोऽदीनो नाम यवनराजो बभूव । स चैकदा केनापि निमित्तेन महिमसाहिनाम्ने सेनान्ये चुकोप । स च सेनानीस्तं प्रभुं प्रकुपितं प्राणग्राहकं च ज्ञात्वा चिन्तयामास । सामर्षो राजा विश्वसनीयो न भवति । तदिदानीं यावदनिरुद्धोऽस्मि तावत् क्वापि गत्वा निजप्राणरक्षां करोमीति

परामृश्य सपरिवारः पलायितः । पलायमानोऽप्यचिन्तयत्। सपरिवारस्य दूरगमनमशक्यम्, परिवारं परित्यज्य पलायनमपि नोचितम्। यतः-

यमुनाके तटपर योगिनी पुर नामका एक शहर है. वहां एक यवनोंका राजा राज्य करता था, उसका नाम अदीन था वह हमेशा दीनोंकी रक्षामें तत्पर रहा करता था. वह ऐसा शक्तिशाली राजा था कि उसके हुकमके विना एक पत्ता तक नहीं डोलता था. वह अपने विपक्षोंके लिये तो मानो प्रलयकालका धूमकेतुही था. उसकी राजधानी हमेशा हाथी घोडे पदाति सेनाओंसे ठसाठस भरी रहती थी. इसका जनपद्भी कम समृद्ध न था. इसने अपने अनुपम प्रतापसे असीम विपक्षोंको मारकर उनकी सीमन्तिनी जनोंके नेत्राश्रुओंसे हजारों पारावार बना दिये थे, वह एक समय किसी कारणसे महिमसाहि नामके अपने प्रधान सेनानायकके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ यह देख महिमसाहि अपने मनमें विचार करने लगा कि सामर्ष राजा कदापि विश्वासका पात्र नहीं इस लिये जबतक मैं पकडा नहीं जाता तबतकहीं कहीं जाकर अपने प्राणकी रक्षा करना उचित है. बस ऐसा विचार घरको छोड वह कुटुम्बोंके समेत भागनेकोही था कि फिरभी अपने दिलमें यों सोचने लगा कि यदि मैं परिवारोंके समेत यहांसे भागता हूँ तो मेरे लिये दूर जाना सर्वथा असम्भव है, और यदि इनको यहांही छोडकर मैं भाग जाता हूँ तो यहभी मुझे शोभा नहीं देता क्यों कि:-

जीवनार्थं कुलं त्यक्त्वा योऽतिदूरतरं व्रजेत्।
लोकान्तरगतस्येव किं तस्य जीवितेन वै ॥ २ ॥

तजके कुलको आत्मरक्षा निमित्त जो प्राणी है भागता तूर्ण दूर।
उसके जीनेसे भला लाभ क्या है वह है प्राणी प्राणसे हीन तुल्य ॥२॥

तदिहैव दयावीरं हम्मीरदेवं समाश्रित्य तिष्ठामीति परामृश्य स यवनो महिमसाहिर्हम्मीरदेवमुपागम्याह। महिमसाहिरुवाच। देव! विनापराधं हन्तुमुद्यतस्य स्वामिनस्त्रासेनाहं त्वां शरणमागतोऽस्मि। यदि मां रक्षितुं शक्नोषि तर्हि विश्वासं देहि। नोचेदितोऽप्यन्यत्र गच्छामि। राजोवाच। मम शरणागतं त्वां यमोऽपि मयि

चला उसकी असंख्य सेनाओंके पादाघातसे भगवती पृथ्वी डोलने लगी तथा उनके कोलाहलसे दशों दिशायें गूंज उठीं कई एक दिनोंके पश्चात् अदीनराज हम्मीरदेवके किलेके निकट आ पहुँचा और वहाँ बाणोंकी वर्षा करने लगा उसकी बाण वर्षासे पीडित तत्रत्य मनुष्योंको ऐसी प्रतीति हुई मानो प्रलयकालका मेघही बाणोंकी वर्षा करता हो अस्तु इधर हम्मीरदेवसेभी बैठा न रहा गया उसनेभी दुर्गके चारों ओर सुदृढ परिखा बनवाकर दुर्गके प्राकारके ऊपर बडी बडी नोकीली बार्छियाँ गडवादीं किलेके द्वारोंपर झंडियाँ गाडदी गईं जिससे द्वारकी अलौकिक शोभा देखतेही बनती थी. इसके पश्चात् हम्मीरदेवने अपने धनुषको कानपर्यन्त खींचा. जिसके ज्याघातकी ध्वनि सुनकर सबके कान झनझना उठे उसके बाणोंकी वृष्टिसे आकाशदेश अन्धेरेसे व्याप्त होगया इस प्रकार प्रथम युद्ध समाप्त होनेके पश्चात् अदीनराजने हम्मीरदेवके पास एक दूत भेजा उस दूतने वहां जाकर हम्मीरदेवसे कहा कि राजन् हम्मीरदेव! मेरे स्वामीने यह कहकर मुझे भेजा है कि हम्मीरदेवसे कह दो कि वह इसी दम मेरे अपथ्यकारी महिमसाहिको अपने यहांसे निकालदे और मेरे निकट भेजे. यदि कहीं उसने ऐसा न किया तो वह समझरखे कि कल सबेरा होतेही उसका किला अश्वोंके खुराघातसे मिट्टीमें मिलाये विना नहीं छोडा जायगा, इतनाही नहीं किन्तु उसे महिमसाहिके समेत कालके गालके हवाले किये विना मैं विश्राम न लूंगा, यह सुन हम्मीरदेवको बडा क्रोध हुआ, वह बोला रे दूत! तुझे मैं क्या कहूं, क्यों कि तू तो दूत अवध्य है. हां एक बात अवश्य है कि इसका उत्तर तेरे स्वामीको तलवारकेही द्वारा दिया जावेगा वचनके द्वारा नहीं, जो मेरी शरणमें आता है उसे कृतान्तभी कुटिल कटाक्षसे नहीं देख सकता अदीनराजकी तो बातही क्या इस प्रकार निर्भर्त्सितहो उस दूतने जाकर सब हाल अदीनराजसे कह सुनाया अदीनराजभी अत्यन्त क्रोधितहो संग्राम करनेकेलिये प्रस्तुत हो गया, इन दोनोंमें यह संग्राम संघर्ष तीन वर्षतक अविच्छिन्नरूपसे जारी रहा, इतने दिनोंके मध्य कुछ योधागण रणभूमिसे भाग गये, कुछ डटे रहगये कुछ पराभूत हुये, कुछ मारेगये तथा कुछ दूसरेको मारते डटे रह गये, अन्तमें अदीनराजकी आधी सेना कटगयी जो आधी

बचगयी थी वह भी दुर्गके विध्वंस करनेमें असमर्थताका आविष्कार करने लगी अपनी सेनाको इस प्रकार भग्नोद्यम देख अदीनराज हताश होगया और अपनी राजधानीको लौटनेका इरादा करने लगा, इसी समय दैवात् हम्मीरदेवके दो सचिव जिनका नाम रायमल्ल तथा नामपाल था कपट करके अदीनराजसे आ मिले और हम्मीरदेवके यहांका सारा भेद खोल दिया जिस प्रकार कि उसकी सेनामें खाद्य आदि पदार्थका अभावसा होगया था, इन दोनों मन्त्रियोंकी सहायता पाकर अदीनराज बडा प्रसन्न हुआ, और अपनी सारी सेनाको साथ ले चारों ओरसे हम्मीरदेवके दुर्गको घेर लिया इस प्रकार अपनेको सङ्कटाक्रान्त देखकर हम्मीरदेवने अपनी सेनासे कहा रे जाजमदेव आदि मेरे प्रिय योधागण ! मैं जानता हूँ कि मेरे पास सेना बहुत कम है तथापि शरणागतके ऊपर करुणाके अनुरोधसे असंख्य सेनाओंके अधिपति अदीनराजके साथ मुझे लडना अवश्य है क्योंकि शरणागतको त्यागना नीति सम्मत नहीं इसलिये तुमलोग कहीं जाकर अपनी प्राणकी रक्षा करो, मेरे कारण क्लेशमें न पडो यह सुन योधागण बोल उठे-महाराज ! आप निरपराध हैं केवल शरणागतके ऊपर करुणाके अनुरोधसे आप अपनेको बलिदान करना चाहते हैं पर हम आपके आजीव्य भुज होकर आपके समान शरणागत वत्सल राजाकी शरणसे विमुख हो कापुरुषत्वका अवलम्ब करें क्या यह हमें उचित है ? सो कल देखना यदि हम लोगोंने कल शत्रुओंका शिर तोडकर महाराजका मनोरथ पूरा न किया तो हम योधा नहीं पर महाराजसे एक निवेदन है वह यह कि महाराज इस बिचारे महिमसाहिको कहीं भेज दें क्योंकि यह युद्ध इसीके कारण छिडा है यदि रक्षणीय पदार्थकी रक्षा न हुई तो युद्ध करनेसे लाभही क्या ? यह सुन यवन महिमसाहिने कहा देव ! मैं एक विदेशी आदमी हूं मेरे कारण महाराज पुत्रकलत्रादि समेत अपने विशालराज्यको विनष्ट करनेके लिये प्रस्तुत हों, यह हमको अच्छा नहीं ज्ञात होता इसलिये मुझको अदीनराजके हवाले करके महाराज सुखके भागी बने, यह सुन हम्मीरदेव बोला यवन ऐसा मत कह पर यदि तेरी सलाह हो तो तुझे किसी निर्भय स्थानमें भेज दूं. यह सुन यवन बोला देव ! ऐसा न कहिये सबसे पहले मैंही विपक्षके शिरपर प्रहार करूंगा, राजा यदि तेरी ऐसीही

प्रतिज्ञा है तो इन स्त्रियोंको कहीं सुरक्षित स्थानमें भेज दो, यह सुन स्त्रियाँ बोल उठीं–हे स्वामी! शरणागतकी रक्षाके अनुरोधसे संग्राम संवर्षकरके यदि आप वीरोचित स्वर्गयात्रा करनेके लिये प्रवृत्त हैं तो हम अभागिन अबलाओंको किसी निर्भय स्थानमें भेजकर उस अलभ्य लाभसे वंचित रखना यह स्वामीको उचित नहीं है, भला हम अबला प्राण पतिके विना इस भूतलपर कैसे रह सकेंगी. क्योंकि:--

मा जीवन्तु स्त्रियोऽनाथा वृक्षेण च विना लताः।
साध्वीनां जगति प्राणाः पतिप्राणानुगामिनः॥ ३॥

नारियोंको जिन्दगीसे लाभ क्या है प्रिय विना
लताको सुख चैन क्या मिलती कभी तरु प्रिय विना।
है जगतमें अटल यह सिद्धान्त जाता है सही
प्राण साध्वी नारियोंका नाथ असुके साथही॥ ३॥

ततो वयमपि वीरस्त्रीजनोचितं हुताशनप्रवेशमाचरिष्यामः। एवमु-

इसलिये हमभी वीर स्त्री जनोचित हुताशनमें प्रवेश करके पतिअनुगामिनी हुए विना न रह सकूंगी, इस प्रकारः--

भटैरंगीकृतं युद्धं स्त्रीभिरिष्टो हुताशनः।
राज्ञो हम्मीरदेवस्य परार्थे जीवमुज्झतः॥ ४॥

त्यागते थे हेतु परके प्राणको हम्मीर-
देव नरपति जो उन्हींके सर्व अतिरणधीर!
वीरजनने प्रण किया युद्धार्थ रणके बीच-
दहनार्थ महिलाने किया फिर प्रण अनलके बीच॥ ४॥

ततः प्रभाते युद्धे वर्त्तमाने हम्मीरदेवस्तुरगारूढः कृतसन्नाहो निजसुभटसार्थसहितः पराक्रमं कुर्वाणो दुर्गान्निस्सृत्य खड्गधाराप्रहारैर्विपक्षवाजिनः पातयन् कुंजरान् घातयन् रथान् निपातयन् कबंधान् नर्त्तयन् रुधिरधाराप्रवाहेण मेदिनीमलंकुर्वन् शरशकलितसर्वांगस्तुरगपृष्ठे त्यक्तप्राणः सम्मुखः संग्रामभूमौ निपपात सूर्यमण्डलभेदी च बभूव। तथा हि–

इसके पश्चात् दूसरे दिन फिरभी युद्ध छिड गया, हम्मीरदेव कवच पहिनकर तुरंगके ऊपर आरूढ हुआ और बडे २ योधागणोंको साथ

लेकर दुर्गसे बाहर निकल संग्राम भूमिमें डट गया जब वह निशित तलवारकी धाराके प्रहारसे अपना अनुपम पराक्रम देखाने लगा तब विपक्षके हजारों हाथी घोडे तथा रथ कट कटकर रणभूमिमें गिरने लगे, कबन्धोंने नृत्य शुरू किया, रुधिरोंकी धारासे भगवती पृथ्वीमाताका सर्वांग शरीर आर्द्र होगया इधर हम्मीरदेवकाभी सर्वांगशरीर बाणोंसे शकलित हुआ और वह प्राणसे हीन हो पृथ्वीमाताकी गोदमें लेट गया और सूर्यमण्डल भेदी हुआ, ऐसे समय किसी कविने निम्न लिखित पद्य पढा:-

ते प्रासादा निरुपमगुणास्ताः प्रसन्नास्तरुण्यो
राज्यं तच्च द्रविणबहुलं ते गजास्ते तुरंगाः ।
त्यक्तुं यन्न प्रभवति नरः किंचिदेकं परार्थे
सर्वं त्यक्त्वा समिति पतितो हन्त हम्मीरदेवः ॥ ९ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां दयावीरकथा ॥

अनुपम गुणसे युक्त प्रसन्ना नारी महल तथा सुन्दर-
बहुत धनोंसे युक्त राज्य फिर द्विरद मत्त हय अति सुन्दर ।
इनमेंसे न एक भी कोई परार्थ तज सकता है नर-
सब तजके हम्मीरदेव नरपालक मरे समरमें पर ॥ ९ ॥

इति दयावीर कथा समाप्ता ।

---

३ युद्धवीरकथा ।

कातरः शूरतां याति क्रियावानलसो भवेत् ।
युद्धवीरकथां श्रुत्वा जयमाप्नोति साम्प्रतम् ॥ १ ॥

सुनके कथा रणवीरकी डरपोक बनते शूर हैं
फिर आलसी आलस्य तज करते सदा निजकाम हैं ।
सुनके कथा इनकी पुनः नृप इस सकल संसारमें
पाते सदा सर्वत्र विजय मनुष्य सब संग्राममें ॥ १ ॥

(इस लिये युद्धवीरकी कथा आरंभ की जाती है:-)

आसीन्मिथिलायां कार्णाटकुलसंभवस्य नान्यदेवनाम्नो राज्ञः पुत्रो मल्लदेवनामधेयः कुमारः । स च सिंह इव स्वभावात् पराक्रमरासिक-

श्चिन्तयामास । यदहं युवराजोऽपि पितुरुपार्जिते राज्ये सुखमनुभवामीति न मम पौरुषम् । यतः–

मिथिला देशमें नान्यदेव नामक एक राजा राज्य करता था, उसने अपने जन्मसे कर्णाटवंशको भूषित किया था, इसको एकही कुमार था जिसका नाम मल्लदेव था वह बडा वीर था, वह अपनी वीरताके लिये सिंहसे कम प्रख्यात न तथा, एकदिन उसने अपने मनमें सोचा कि मैं युवराज हूं फिर यदि पिताके अर्जित इस विशाल राज्यमेंही मैं सुखानुभव करूं तो मेरा पौरुष किस कामका ? इसका न रहनाही अच्छा है क्यों किः–

सिंहाः सत्पुरुषाश्चैव निजदर्पोपजीविनः ।
पराश्रयेण जीवन्ति कातराः शिशवः स्त्रियः ॥ २ ॥

जीते सदा सज्जन और सिंह स्वदर्पसेही जगमें परन्तु ।
आलस्यकारी शिशु नारियाँ ये जीते सदा है बलसे परोंके ॥ २ ॥

निजभुजोपार्जितेन वित्तेन विना पितृभक्तिरपि न संभवति। यदुक्तम्–

और यदि मैं पिताकी भक्ति करना चाहूं तो यहभी सम्भव नहीं जबतक कि मैं अपनी भुजाके बलसे अर्थ अर्जन न करूं, जैसा कि कहा गया है:–

अर्जितं भुज्यते यस्य यस्य वाऽऽकर्ण्यते यशः ।
पितुर्बहुसुतस्याऽपि तेन पुत्रेण पुत्रिता ॥ ३ ॥

विना युक्त हो क्यों न जगतमें बहु तनयोंसे
पर कहलाते वे न सुती हैं उन तनयोंसे ।
किन्तु तनय युत उसी तनयसे कहलाते हैं
जिसका अर्जित वित्त भोगते यश सुनते हैं ॥ ३ ॥

ततः क्वापि गत्वा भुजदर्पेण पौरुषमर्जयामीति परामृश्य स कुमारः कान्यकुब्जं नाम जनपदं जगाम । तत्र च श्रीजयचन्द्रनाम्नो राज्ञः काशीश्वरस्य सुभटपरिपाट्या दर्शनं चकार । स राजा तं सत्कृत्य प्रियसहचरमकरोत्। कुमारस्तु तस्य राज्ञः सेवायां वर्त्तमानः क्रमेणाधिकसम्मानपात्रतामनुभवन्नेकदा तु स्वसमाचारवैषम्यमनुबभूव । यतः–

इस लिये देशान्तरमें जा अपनी भुजाके बलसे पौरुषका उपार्जन करना मेरा परम कर्तव्य है, ऐसा परामर्श करके वह तुरंत कान्यकुब्ज देशमें चला गया और वहां सुभटका वेष धारण करके काशीके नरेश राजा जयचन्द्रसे जा मिला, राजा जयचन्द्रने उसका बडा आदर किया और उसे अपना प्रिय सहचर बना लिया, इधर वह कुमार भी राजा जयचंद्रकी सेवामें संलग्न होनेके कारण धीरे धीरे उसके अधिक सन्मानका पात्र बन गया एक दिन उस कुमारने राजकृत आदरमें कुछ वैषम्यका अनुभव किया, क्यों कि:-

आदरः सुलभो राज्ञां वस्तुन्यल्पगुणेऽपि च ।
प्रगुणेऽपि च संप्राप्ते भवेन्नूनमनादरः ॥ ४ ॥

नृपति प्रीति उन चीजोंमे भी रखते ध्रुव हैं
जो चीजें संयुक्त अल्पगुणसे भी नृप हैं ।
पर यदि प्रगुण वस्तुभी नृपति निकटमें आती
ध्रुव वह वस्तु न कभी नृपतिसे आदर पाती ॥ ४ ॥

ततः कुमारश्चिंतयामास । यतः—

तब उसने यों सोचाः—

धनं तृष्णावतः प्राणा वह्नेः प्राणास्तथेन्धनम् ।
कामुकस्य स्त्रियः प्राणा मनः प्राणा मनस्विनाम् ॥ ५ ॥

विभव है असु लोभि मनुष्यका अनलका असु इन्धन है सदा ।
सुरमणी असु कामुकका पुनः स्वमन प्राण मनस्वि मनुष्यका ॥५॥

ततो राजानमब्रवीत् । देव! भवतः प्रभुधर्मं श्रुत्वाऽहमिहागतोऽस्मि साम्प्रतमन्यत्र यास्यामि। राजोवाच। कुमार! किं तव उद्वेगे कारणम्? येनान्यत्र यास्यसि । मल्लदेव उवाच । देव! भवतः समादरः क्रमेण शिथिलो भवतीत्याशंकयाहमितोऽन्यत्र गच्छामि । राजोवाच। कथमवगतमिदम्? मल्लदेव उवाच । यतः शौर्यमूलको मादृशां समादरो भवति शौर्यं तु वाग्युद्धेन केवलं ख्यापयितुमशक्यमद्य युद्धं तु भवतो राज्ये न दृश्यते । राजोवाच । आसमुद्रकरग्राहिणो मम युद्धे परिपंथी कोऽपि नास्ति तत्केन समं युद्धं भविष्यति। कुमार उवाच। देव! राज्यस्य फलं विजयसुखम्। विना युद्धेन कुतो विजयः कुतो वा

तत्सुखम्। यदि देवो मन्यते तदाहमितो गच्छामि।यस्य च राज्यमहं गमिष्यामि स एव देवस्य युद्धपरिपंथी भविष्यति। राजा सक्रोधमाह। रे कुमार! कस्त्वं कुमारः। केन वा दर्पेणैवं भाषसे। गच्छ तावद्यत्र गच्छसि। यत्र त्वं यास्यसि तत्रैवाहं प्रयाणं करिष्यामि। कुमार उवाच। अयमहं गच्छामि। ततः कुमारस्तु चीत्कारनाम्नो राज्ञो राज्यं जगाम। ततस्तं तत्र गतं श्रुत्वा काशीश्वरस्तुरगबलसहितश्चीत्कारं प्रति ययौ। कियताऽपि कालेन तं सन्निधानमागतं श्रुत्वा चीत्कारः स्वमंत्रिभिः समं मंत्रयामास। काशीश्वरो महाराजः कोपाविष्टो मामुद्दिश्य समायाति। तदिदानीं किं विधातुमुचितं भवति। मंत्रिण ऊचुः। देव! भवतः परिमितबलस्य तेन महाबलेन समं युद्धं नोचितम्। नवा तस्य महेच्छस्य संधानक्षमं भवतो धनमपि विद्यते। तदिदानीं दुर्गाश्रयणमुचितम्। ततः पलायितुमुद्यतं चीत्कारराजानं दृष्ट्वा मल्लदेवोऽब्रवीत्। राजन् किमिति पलाय्यते। भवन्तमुद्दिश्य काशीश्वरो न कदाप्यागतो नवाऽग्रेऽप्यागमिष्यति। यदि भवान् प्रत्येति तदा कथयामि तस्यागमननिमित्तम्। भवता न भेतव्यम्। चीत्कार उवाच। किं तन्निमित्तम्? मल्लदेवः पूर्वकथां कथयामास। चीत्कार उवाच। तर्हि किमुचितम्। मल्लदेव उवाच। स यतः केवलं मामेवोद्दिश्य समायाति ततो भवता न पलायितव्यम्। किंच मयैकेन समं बहूनां तत्सुभटानां संग्रामकौतूहलं द्रष्टव्यम्। चीत्कार उवाच। कुमार!तेन महाराजेनानन्तबलेन सममेकाकिनस्तव न समुचितं युद्धम्। नीतिविरुद्धमेतत्। कुमार उवाच। शूरः स्वकर्मणि परामर्शं न सहते। चीत्कार उवाच। तर्ह्यविमृश्यकारिणां विपदन्तः समारंभः। कुमारो ब्रूते। अलममुना विवादेन। यतः—

और राजा जयचन्द्रसे कहा महाराज! आपका प्रभुधर्म सुन मैं यहां आया था सम्प्रतिमें मैं स्थानान्तर जानेकी अभिलाषा करताहूं. यह सुन राजाने पूंछा हे राजकुमार! तुम्हारे उद्वेगका कारण क्या है जिससे दूसरी जगह जाना चाहते हो. मल्लदेवने उत्तर दिया देव! मैं देखता हूँ

कि आपका आदर धीरे २ शिथिलताको प्राप्तकर रहा है, यही शंका मुझे स्थानान्तरमें प्रेषित करनेके लिये मुझको बाधित कररही है यह सुन राजा भला यह तुझे कैसे अवगत हुआ. मल्लदेव–हे राजन् । हमारे समान वीरोंका आदर शौर्य मूलक है वह शौर्य वागयुद्धसे प्रकट होसके यह कदापि सम्भव नहीं और युद्ध तो महाराजके राज्यमें इस समय कहीं होता सुनाई देताही नहीं. यह सुन राजा–हे कुमार ! तुझे मालूम है कि मैं समुद्र पर्यन्तकी प्रजाओंसे कर वसूल करता हूँ तथा रणाङ्गणमें कोईभी परिपंथी होकर मेरे सामने खडाहो ऐसी ताकत भला तूही बता किसमें है फिर युद्धमें मेरा परिपंथी कौन हो जिसके साथ मैं लडूं, यह सुन कुमार बोला–हे राजन्! राज्यका फल है विजयसुख, विना युद्धके कहां वह विजय और कहां वह सुख. सो यदि महाराजकी आज्ञा हो तो मैं यहांसे चला जाऊं महाराज समझ रखें कि महाराजका परिपन्थी बनकर युद्धमें वही खडा हो जायगा जिसके राज्यमें मैं जाकर रहूँगा यह सुन राजा बडा क्रोधित हुआ और बोला, रे कुमार ! बता तू कैसा कुमार है. तू किस दर्पसे इस प्रकार अनर्गल वचन बोलता है जा जहां तुझे जानाहो, मैं कहे देता हूँ कि मैं वहांही संग्राम करनेके लिये प्रस्थान करूंगा जहां तू जायगा यह सुन कुमारने क्रोधितहो कहा देखो यह मैं चला यह कह वह चीत्कार नामक राजाके राज्यमें चला गया यह वृत्तान्त काशीश्वर जयचन्द्रके कानतक पहुँचा उसने तुरंत हाथी घोडे तथा बहुतसी सेनाओंको साथमें लेकर राजा चीत्कारके ऊपर आक्रमण करनेके लिये प्रस्थान किया. यह सुन राजा चीत्कार बहुतही भयभीत हुआ और इस विषयमें अपने सचिवोंसे पूँछा कि काशीके अधिपति महाराज जयचन्द्र कोपाविष्टहो मेरे ऊपर आक्रमण करनेके लिये आरहा है सो बताओ इस दशामें क्या करना उचित है ? यह सुन सचिवोंने उत्तर दिया महाराज ! उस बलीके साथ लडाईकी बात न कीजिये क्योंकि वह अपार सेनाओंका अधिपति है यदि आपके पास सेना है भी तो उसकी सेनाके सामने वह नहींके बराबरही है, हां एक बात हो सकती है कि धन देकर उसके साथ सन्धि करले, पर महाराजके पास उतना अर्थभी कहां ? जिसके देनेसे वह महेच्छ काशीनरेश जयचन्द्र सन्तुष्टिको प्राप्त करे. सो यदि हमसे सलाह पूछते हैं तो हम यही सलाह देंगे कि महाराज अवश्य

दुर्गकी शरण लेलेवें यह सुन राजा चीत्कार भागनेके लिये उद्यत होही रहा था कि कुमार मल्लदेवने कहाः--महाराज आप भागते क्यों आप विश्वास रखें कि राजा जयचन्द्र आपके ऊपर कदापि आक्रमण करनेके लिये न तो आरहा है और न कभी आयगा. यदि महाराज मेरी बातपर विश्वास करें तो मैं उसके आगमनका कारण बताऊँ महाराज भयभीत न होवें राजा चीत्कारके उस राजा काशीनरेशके आक्रमणका कारण पूछनेपर कुमार मल्लदेवने पहलेकी सब कथायें कह सुनाई तब चीत्कारने कहा तो बताओ इस समय क्या करना उचित है. मल्लदेव-हे राजन् ! यदि उसका एकमात्रलक्ष्य मैंही हूं तो आपको यहांसे क्यों भागना चाहिये, प्रत्युत अनेक सुभटोंके साथ मुझ एकाकी मनुष्यका संग्राम कौतूहल देखना चाहिये. यह सुन चीत्कार-रे राजकुमार तू अकेला है इसलिये अनन्तबलके अधिपति महाराज काशीश्वरके साथ युद्ध करना तुझे उचित नहीं क्योंकि बलवत्तरके साथ युद्ध करना नीति विरुद्ध है, यह सुन कुमार महाराज ! शूरलोग अपने कर्तव्य कर्ममें परामर्शकी प्रतीक्षा नहीं रखते यह सुन चीत्कार हे कुमार ! जो मनुष्य परामर्श शील नहीं होता उसका समारम्भ तो विपत्तिका जनयिता होता है यह सुन कुमार हे राजन् ! यह समय वादविवादका नहीं है किन्तु युद्ध करनेका है मैं जैसा कर्म करूंगा वैसा फल मुझको ही भोगना पडेगा फिर मुझको संग्रामसे विमुख करनेके लिये महाराजकी ऐसी हठ क्यों ? कहाभी है:--

स्वयं करिष्ये यत् कर्म भोक्ष्ये तस्य स्वयं फलम् ।
स्वापराधविपन्नानां विपत्तिः केन शोच्यते ॥ ६ ॥

मैं कर्म जैसा जगमें करूंगा भोक्ता स्वयं मैं उसका बनूंगा ।
विपन्न है जो निज दोषसे ही क्या सोचना है उसकेलिये भी ॥ ६ ॥

चीत्कार उवाच !

युक्तं तुल्यबलं युद्धं यत्रास्ति जयसंशयः ।
प्रबलेऽरिबले वह्नौ क पतन्ति पतंगवत् ॥ ७ ॥

चीत्कार बोला-
उचित है रणहो समशक्तिमें विजय संशय है रहता जहां ।
जगतमें नर है वह कौन जो सलभसा गिरता प्रबलाग्निमें ॥ ७ ॥

कुमार उवाच-

प्राणत्राणाय संग्रामात् पलायन्तेऽपि ये नराः ।
मृत्युरावश्यकस्तेषां कार्पण्यमतिरिच्यते ॥ ८ ॥

कुमार बोला-
समरसे नर जो द्रुत भागता स्व असु रक्षण हेतु नृपाल है।
मरण क्या उसका नहिं है लिखा? कृपणता उसकी अति है बली॥८॥

चीत्कार उवाच । कुमार ! भवान् महावीरः काशीश्वरो महाराजस्ततो युवयोः संग्रामसंघर्षोऽस्माभिः श्रोतुमपि न शक्यते किं पुनर्द्रष्टुम् । कुमार उवाच । यदि भवतो युद्धस्य दर्शनमप्यनभिमतं तदा भवान् गच्छतु क्वापि यमपुरुषानिरीक्ष्यमाणं स्थानं गत्वा च भवत्वमरः । मया च योद्धव्यमेव । परं ततो मह्यं हस्तिनकं दत्त्वा गच्छतु भवान् । मया शून्यस्यापि भवतो नगरस्यावेक्षा कर्तव्या । चीत्कारः कुमारस्य वचनेन तथा कृत्वा पलायितः । तदग्रिमप्रभाते भेरीभांकारैर्गगनाभोगं पूरयन् कूर्ममर्मस्पृशा तुरगखुरप्रहारेण धरणीमंडलं चपलयन् महाराजो जयचंद्रस्तन्नगरसन्निधानमाजगाम । मल्लदेवस्तमागतं ज्ञात्वा कृतसन्नाहः परिगृहीतास्त्रो गजारूढः पुरो गत्वा राजानं ददर्श । राजोवाच । कस्त्वं रे कुंजरारूढ संधानार्थिनश्चीत्कारस्य दूतो वा युद्धार्थिनो मल्लदेवस्य ? मल्लदेव उवाच । राजन् न हि दूतो न संधानार्थी, किंतु तव प्रतियुद्धार्थी मल्लदेवोऽस्मि । राजा विहस्याह । भद्र मम प्रतिमल्लता सिद्धैव । त्वमिदानीं समागत्यानुसर माम् । मल्लदेव उवाच । त्वमेव किं न मामनुसरसि ? संप्रति त्वं तुरगाधिरूढोऽस्यहं गजाधिरूढोऽस्मि त्वमप्यस्त्राणि धारयासि अहमप्यस्त्राणि धारयामि तदिदानीं प्रहारसमये क्व वचनवैचित्र्याणामवकाशः । राजा साश्चर्यं सैनिकान् प्रत्याह । रे रे सैनिकाः ! मल्लदेवं धृत्वा मे दत्त । मल्लदेवः सर्वान् प्रत्याह-

यह सुन चीत्कार रे कुमार ! तू महावीर है और काशी राज महारज हैं, इस लिये तुम दोनोंका संग्राम संघर्ष कानोंसे सुननेभी योग्य नहीं,

देखनेकी तो बातही क्या, कुमार-महाराज ! यदि आपको युद्धका दर्शनभी अभिमत नहीं तो आप किसी निर्भय स्थानमें जाकर छिप जाइये जहां कि यमराजके दूततककी पहुँच न हो, मेरा तो यही सङ्कल्प है कि मैं युद्ध करूंगा ही, हां एक बातके लिये मेरा निवेदन अवश्य है कि महाराज मुझे एक हाथी देकर जहां भागकर जाना हो वहां जावें महाराजके परोक्षत्वमें भी महाराजके नगरकी रक्षा करनेके लिये मैं सप्रयत्न रहूंगा. यह सुनकर राजा चीत्कार उस कुमारको एक हाथी देकर कहीं भाग गया । इसके दूसरे दिन सवेरा होतेही राजा जयचन्द्र उस नगरके समीप पहुँच आया, उस समय उसकी भेरीके झंकारसे गगनका आभोग पूर्ण होगया, कूर्मके मर्म प्रदेशको स्पर्श करनेवाले घोडोंके खुराघातसे धरणीमण्डल कांप उठा, इधर मल्लदेवभी जयचन्द्रको आये जान झट शरीरमें कवच धारण करलिया और हाथमें अस्त्र ले हाथीके ऊपर आरूढ हो राजा जयचन्द्रके सामने जा खडा हुआ. राजाने पूछा रे कुंजरारूढ बता तू कौन है, तू सन्धानार्थी चीत्कारका दूत है या युद्धार्थी मल्लदेवका ? यह सुन मल्लदेव बोला महाराज ! मैं न तो सन्धानार्थी हूं और न दूतही हूँ. किन्तु आपके साथ युद्धार्थी मल्लदेव हूँ यह सुन राजा जयचन्द्र हंसकर बोला. भद्र मल्लदेव ! मेरी प्रतिमल्लतासे तुझे अच्छीतरह परिचय है, इस लिये आ मेरा अनुसरण कर. यह सुन मल्लदेव-रे जयचन्द्र ! तूही मेरा अनुसरण क्यों नहीं करता? इस समय तू तुरगारूढ है, मैं गजारूढ हूँ. यदि तेरे हाथमें अस्त्र है तो मेरा हाथ भी अस्त्रसे हीन नहीं, सो रे राजा यह समय प्रहार करनेका है, बचनमें कौशल्य दर्शानेका नहीं, यह सुन राजा साश्चर्य हुआ और अपने सैनिकोंको आदेश दिया कि हे सैनिको ! इस दुष्ट मल्लदेवको पकडकर मेरे पास लेआओ यह सुनकर मल्लदेव यों बोलाः-

दिक्पालाः कृतिसाक्षिणश्च मुनयः सिद्धाः सुराः खेचराः
सर्वे पश्यत कौतुकं नृपिशितै रक्षोगणस्तृप्यतु ।
मोदं चाप्सरसः प्रयांतु सहसा वीरानुरागोत्सवा
एकः साहसमातनोति बहुभिः श्रीमल्लदेवो रणे ॥ ९ ॥

हे दिक्पालक सिद्ध खेचर मुने हे देव देखो तमा-
सा-हो राक्षस वर्ग तुष्ट मनुजोंके मांसको पा महा ।

पावे मोद सुराङ्गना तुरतही पा वीरभर्ता महा
एका एकहि मल्लदेव बहुतों को मारता है खडा ॥ ९ ॥

ततो निरोद्धकामान् परितो भटान् बहून् मल्लदेवो नाराचचक्रै-र्निजघान । तेन विनिहतान् निजप्रियसुभटान् भूमौ पतितान् दृष्ट्वा जयचंद्रः सेनामादिदेश । रे वीरपुरुषाः । यद्येनं मुमूर्षुमवरोद्धुं न शक्नुथ तदा शरासारैः स्नपयत । ततस्तां प्रभोराज्ञामासाद्य सुभटास्तं मल्लदेवं युगपदेव ज्याघोषनिर्घोषदारुणैः शरासारैरभ्यषिंचन् । शरशकलितशरीरः कुंजराद्भूमौ पपात । तथाच तत्समये कवेः कस्यापि श्लोकः—

जब सैनिकोंने मल्लदेवको पकडनेके लिये राजा जयचन्द्रकी आज्ञा पाई तो वे उसे संरुद्ध करनेके लिये चले. यह देख राजकुमार बडा क्रोधित हुआ और उनको अपने तीक्ष्ण नाराच चक्रसे छिन्नभिन्न कर दिया वे पवनोत्पाटित वृक्षोंके समान कट २ कर धरणीके ऊपर गिरने लगे यह देख राजा जयचन्द्रने अपने सैनिकोंसे फिर कहा हे वीरपुरुषो ! यदि तुम इस मुमूर्षु मल्लदेवको निरुद्धकरनेमें समर्थ न हो तो लो इसे शरासारसे अभिषिक्त करदो. आज्ञा पातेही योद्धाओंने कानतक धनुषकी प्रत्यंचा चढाई जिसके घनाघोरशब्दोंसे सबके कान एकाएक झनझना उठे मल्लदेवका सर्वाङ्गशरीर बाणवृष्टिकी धारासे आर्द्र होगया वह चेतनासे विहीन होकर हाथीसे पृथ्वीके ऊपर गिरपडा ऐसे समय किसी कविने निम्न लिखित पद्य पढाः—

अशीतिवर्षदेशीयश्चीत्कारः प्रपलायितः ।
षोडशाब्दस्तु कर्णाटः सन्मुखः पतितो रणे ॥ १० ॥

असीवर्षका वृद्ध था हा तथापि गया भाग चीत्काराराजा विदूर !
रसग्लौ (१६) मितावस्थही मल्लदेव डटा युद्धमें है अहो धीरतासे१०॥

तं च प्रचुरनाराचभिन्नशरीरं संग्रामभूमौ पतितं दृष्ट्वा राजोवाच । हे सात्विकमूर्द्धन्य कार्णाटकुलप्रतिष्ठाबीजांकुर ! जीविष्यसि ? मल्लदेव उवाच । आवयोः केन जितं युद्धम् ? राजोवाच—भवता जितम् । मल्लदेव उवाच—कथमिदानीमवधारणीयम् । राजोवाच—

अ..देवका शरीर प्रचुर नाराचोंके प्रहारसे खण्ड २ होगया और वह/..ट होकर संग्राम भूमिमें गिरपडा तब राजा जयचन्द्रने कहा. रे स.. मूर्द्धन्य । तथा कर्णाटकुलके प्रतिष्ठांकुर ! अब बता, जीवेगा ? ..न मल्लदेव--हे देव ! बताइये हम दोनोंमेंसे किसने जीता ! राजाः- ... मल्लदेवः-यह कैसे जाने ? राजाः-

अस्माभिः कृतसंग्रामो यदेको बहुभिर्हतः ।

जिगीषति तथाऽप्यस्मान् कथं न विजयी भवान् ॥ ११ ॥

तू एकही है हम हैं असंख्य प्रहारकर्ता तुझपै कुमार ।

तथापि तू है रखता जिगीषा कैसे नहीं है विजयी भला तू ॥ ११ ॥

ततस्तेन राज्ञः प्रशंसावचनेन पुलकितबाहुमूलो मल्लदेवोऽब्रवीत् । देव जीविष्यामि । तदनंतरं तच्छौर्यपरितुष्टेन जयचन्द्रेण राज्ञा स कुमारः शरानुद्धृत्य स्वस्थानं नीतः पुत्रप्रेम्णा परिपाल्य क्षतेषु निर्वाणेषु प्रतिनिधीकृतश्च । यतः-

राजाके इस प्रकारके वचनसे मल्लदेवका बाहुमूल पुलकित होगया और वह बोला--हां अब मैं जीऊँगा. इस प्रकार कुमारके शौर्यसे राजा जयचन्द्र बडा सन्तुष्ट हुआ और कुमारके शरीरसे बाणोंको उद्धृतकरके उसे अपनी राजधानीको ले गया. वहां क्षतोंके निर्वाण होनेपर उसने उसे अपना प्रधान सचिव बनालिया और पुत्रके प्रेमसे उसका परिपालन करने लगा ऐसे समय किसी कविने निम्नलिखित पद्य पढाः-

तच्छौर्यं मल्लदेवस्य स विवेकश्च भूपतेः ।

भूते भाविनि वा काले न जातो न जनिष्यति ॥ १२ ॥

इति विद्यापतिविरचितायां पुरुषपरीक्षायां युद्धवीरकथा ॥

कर्णाटके शौर्यसमान शौर्य विवेक काशीश्वरके विवेक ।

समान भूमण्डलमें कदापि हुआ न होगा न न है किसीमें ॥ १२ ॥

इति युद्धवीरकथा समाप्ता ।

---

४ सत्यवीरकथा ।

कलौ कामादिभिर्युक्तो मानवोऽनृतवागपि ।

सत्यवीरकथां श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥

कामादस हो यदि युक्तभी नर असत्यवादी कलिमें तथा ०: ।
तुरन्त होते सब पापमुक्त हैं कथा सुने वे यदि सत्यवीरकी ॥ ॥

पुरा हस्तिनाम्नि नगरे महमदनामा यवनेश्वरो बभूव । हेम-न्नासमुद्रं धरणीवलयं शासति तदुत्कर्षासहिष्णुः काफरराजस्तमा-योद्धुं सकलबलसहितस्तत्राजगाम । यवनेश्वरस्तमायान्तं ज्ञात्वा कांबोजैस्तुरुष्कैश्चाश्ववारैर्बहुभिर्लक्षैः परिवृतः पुराद्बहिर्भूय तेन समं संग्राममंगीचकार। तदुभयसमारब्धे संग्रामे महीयसा काफर-राजसैन्येन हन्यमाना निजबलयोधाः पराबभूवुः। ततस्तादृशं सिंह-भयार्दितमिव करियूथं पलायमानं निजबलं दृष्ट्वा यवनेश्वर उवाच। रे रे मम सैन्यसुभटा राजानो राजपुत्राश्च युष्माकं मध्ये कोऽपि तथा नास्ति, य इदानीं रिपुभयभग्नं मम सैन्यं स्वेन बाहुबलेन क्षण-मवलम्बते । तच्च यवनराजवचनं श्रुत्वा कार्णाटकुलसंभवो नरसिंह-देवनामा चौबाणकुलसंभवश्चाचिकदेवनामा च राजकुमारावूचतुः। राजन् ! क इदानीं निम्नाभिमुखं पततः पयस इव रिपुत्रासभग्नस्य भवद्बलस्य परित्राता भवतु । यदि क्षणं परावृत्य भवानवलोकते तदा आवामत्रभवतो विपक्षं खड्गधाराप्रहारपरिकृत्तशिरस्कं करवाव। यवनेश्वर उवाच । साधु कुमारौ साधु । युवाभ्यामन्यः क एवं व्यवस्यति । ततो नरसिंहदेवः पुलकालंकृतबाहुमूलः कुलिशपाता-धिकेन कशाघातेन तुरगं त्वरयित्वा परावृत्यातर्कित एव काफर-राजबलं प्रविवेश । प्रविश्य च जितारिसैन्यं प्रकाशितमायान्तं सिता-तपत्रपरिचितं काफरराजं शल्येन हृदि हतवान्। काफरराजस्तु गत-प्राणो भूमौ निपपात । चाचिकदेवेन च भूमौ पतितस्य शिरश्छित्वा यवनराजस्य पुरो नीतम् । यवनेश्वर उवाच । केनासौ हतः ? चाचिको ब्रूते । राजन् तुलितपार्थेन नरसिंहदेवेन हतः । ततः पश्चाद्गामिना मया शिरश्छिन्नम्। यवनेश्वरः पृच्छति । नरसिंह-देवः कुत्र । चाचिको ब्रूते । काफरराजसन्निधानवर्त्तिभिः स्वामि-वधामर्षितैः सुभटैर्बहुभिरेको हन्यमानो मया दृष्टः क गतः केदानी-

मास्तिन्न ज्ञायते। ततो यवनराजः परसैन्यं हतनायकं पलायमानं दृष्ट्वमसानन्दो बभूव। तदनुगामिनश्च स्वसैनिकान् प्रत्याह। रे रे सैनिकाः! पलायमानान् भटान् किं हथ। संप्रति मम राज्यशत्रुं काफरराजकृतान्तं नररूपिणं सिंहमेव नरसिंहदेवं ज्ञापयत। तदनन्तरमेकत्र संग्रामप्रदेशे बहुतरनाराचभिन्नशरीरं वहद्रुधिरधारासहस्रं पुष्पितं किंशुकमिव वेदनामूर्च्छितं नरसिंहदेवं यवनराजो ददर्श। तुरंगादुत्तीर्य च बभाषे। हे नरसिंहदेव! जीविष्यसि? नरसिंहदेव उवाच। राजन् मया यत्कृतं तदवगतं भवता? यवनेश्वर उवाच। ज्ञातं मया कथितं चाचिकदेवेन त्वया मम शत्रुर्हतः। नरसिंहदेव उवाच। तर्हि जीविष्यामि। यतः–

प्राचीनकालमें एक महम्मदनामका मुसलमानोंका राजा था वह हस्तिनापुरमें अपनी राजधानी बनाकर राज्य करता था, यह साधारण राजा न था यह समुद्रपर्यंत धरणीमण्डलका शासन करता था, इसका उत्कर्षभी साधारण न था जिसको देखकर एक राजा जिसका कि नाम काफरराज था हमेशा जलता रहता था. एक समय वह बलदलको साज महम्मदके साथ संग्राम करनेके लिये वहां आपहुँचा. यवनेश्वरको यह खबर पहुँची वह तुरन्त बहुतसे काम्बोज तुरुक तथा अश्वारोहोंको साथ लेकर पुरके बाहर निकलकर संग्राम करने लगा, इस संग्राममें काफरराजकी सेनाओंने बडी वीरताके साथ यवनेश्वरके बल तथा योधाओंको रणाङ्गणसे मार भगाया, यह देख यवनेश्वरने सिंहके भयसे अर्दित करि यूथके समान अपने सैनिकोंको भागते देख उनसे कहा. रे रे सेनाओं सुभटों, राजाओं तथा राजपुत्रों! तुममें ऐसा कोईभी वीर नहीं है जो विपक्षके डरसे भग्न मेरी सेनाओंको क्षणभरके लिये थाम्ह सके? यह सुन नरसिंहदेव तथा चाचिकदेवने जिन्होंने कर्णाहत या चौबान कुलमें अपना जन्मग्रहण किया था, राजा महम्मदसे कहा कि हे राजन्! आपकी सेनायें विपक्षके त्राससे इधरउधर भाग रही हैं भला किसकी ताकत है कि निम्नाभिमुख बहती हुई नदीके धाराके समान इनको भागनेसे विरुद्ध करसके, पर हां यह हमें अवश्य विश्वास है कि यदि महाराज एक क्षणकेलिये प्रतीक्षा करें तो हम अपनी असिधाराके प्रहा-

रसे आपके विपक्षके शिरको काटकर पृथ्वीके ऊपर गिरा स
सुन यवनेश्वर बडा सन्तुष्ट हुआ और कहा वाह रे वीर वाह तु बा
सिवा ऐसा अद्भुत कार्य करनेमें कौन समर्थ हो सकेगा? यह प॥
सिंह देवका शरीर आनन्दके मारे रोमांचित हो गया, वह म[illegible]म-
विशाल घोडेपर सवार हो निर्भीकताके साथ एकाएक काफरराजकी
सेनामें घुस पडा और श्वेत आतपत्रके द्वारा काफरराजको पहिचाने
उसकी छातीपर शूलसे मारा शूलके लगतेही राजा काफरराज प्राणसे
हीन हो रणाङ्गणमें गिर पडा, बस झट चाचिकदेवने उसके शिरको
तलवारसे काटकर यवनेश्वरके सामने रख दिया, यह देख यवनेश्वर-हे
चाचिकदेव! कहो यह अद्भुतकाम किसने किया? चाचिकदेव-
महाराज! जिसने अपने पराक्रमसे पार्थकी तुलना कीहै ऐसे नर सिंहदेवने
पीछेसे जाकर मैंने विपक्षका शिर उतार लिया. यवनेश्वरः-अच्छा
यह तो बताओ वह इस समय कहां है? चाचिकदेवः-महाराज मैंने
ज्यादा कुछ न देखा केवल इतनाहीं देखाकि. काफरराजकी सेनायें
स्वामीके वधसे आमर्षित होकर नरसिंहदेवके ऊपर बाणोंकी वर्षा कर
रही थी फिर वह कहां गया और इस समय कहां है यह मालूम नहीं.
इस प्रकार विपक्षकी मृत्यु तथा भटोंकी रण विमुखताको सुनकर यवन-
राज बडा प्रसन्न हुआ, और अपने सैनिकोंसे कहा रे सैनिकों! क्या
इन बिचारे भागतेहुए भटोंको मारकर पिष्टपेषणकरना तुमको शोभा नहीं
देता है इसलिये अब यह बताओ कि नररूपधारी सिंह नरसिंहदेव जो
काफरराजका कृतान्त तथा मेरे राज्यका रक्षिता है इस समय कहां है?
इसके पश्चात् उसने उस भयंकर संग्राममें वेदनासे मूर्छित नरसिंहदेवको
देखा देखतेही यवनराजके नेत्रोंमें दयाका अश्रु भरआया उस समय
नरसिंहदेवके शरीरसे हजारों रक्तकी धारायें चलरही थीं प्रतीतत ऐसाही
होता था मानो कुसुमित पलासका वृक्षही हो, यह दृश्य देखकर यवन-
राज झट घोडेके ऊपरसे नीचे उतर पडा और नरसिंहदेवसे पूछा. हे
नरसिंहदेव! अब बताओ तुम्हारी कैसी हालत है? यह सुन नरसिंहदेवः-
देव! मैंने जो कुछ किया आपने जाना क्या? यवनराजः- हां चाचिक-
देवने कहा नरसिंहदेवने विपक्षको मारा, यह सुन नरसिंहदेवः-यदि
मेरा परिश्रम देवको ज्ञात हो गया तो अब मेरी हालत अच्छी है और
मेरा श्रमरूपी पादपभी फलीभूत हुआ. क्योंकिः-

स्वीकृतं दुष्करं कर्म मया यस्य हितेच्छया ।
तेन विज्ञायमानो मे फलितः श्रमपादपः ॥ २ ॥

अति कठोर पराक्रम था किया जिस नृपेश्वरके हितके लिये ।
यदि उसे वह ज्ञात हुआ तब मम हुआ फलवान् श्रम पादप ॥ २ ॥

ततस्तस्य शरीरादापुंखनिमग्नान् नाराचानुद्धृत्य यवनराजस्तं कुमारं भेषजप्रयोगेण नियमेन च स्वल्पैरेव दिवसैर्निर्वाणक्षतमचीकरत् । तदनंतरं सहस्रसंख्यैस्तुरगलक्षसंख्यैः कांचनैश्छत्रचामरादिभिश्च तं पूजयितुमुपचक्रमे । प्रसादावसरे नरसिंहदेव उवाच । राजपुत्राणां युद्धं स्वाभाविक एवं धर्मस्तात्किमद्भुतं कृतं यादियं मम पूजा क्रियते । यदि पूजैव कर्त्तव्या तदा चाचिकदेवस्य येन रिपुशिरोऽप्यानीय सत्यपक्षानुरोधेन भवतः पुरस्तान्मम यशः प्रकाशितं स्वपौरुषं न प्रख्यापितम् । अन्यथा नीयमानं रिपुमरणचिह्नं रिपुशिरो दृष्ट्वा कोवाऽध्यगमिष्यत् यन्मया मारितो रिपुरिति । तदयमेव प्रथमं पूज्यताम् । चाचिकदेव उवाच । कुमार नरसिंह ! मैवं ब्रूहि । कथमहं तव पराक्रमफलमादाय परोच्छिष्टजीवी भविष्यामि । नरसिंहदेव उवाच । साधु सत्यवीर साधु–

यह सुन यवनेश्वरने नरसिंहदेवके शरीरमें आपुंख गडे हुए बाणोंको निकलवाकर भेषज तथा सुपथ्य आदिके प्रयोगसे थोडेही कालमें नरसिंहदेवको क्षतोंसे विमुक्त करादिया, इसके उपरान्त जब यवनराज असंख्य हाथी घोडों कांचन छत्र आदि पदार्थोंके द्वारा नरसिंहदेवका सम्मान करनेके लिये प्रस्तुत हुआ तो नरसिंहदेव बोल उठा हे देव ! राजपुत्रोंका युद्ध करना नैसार्गिक धर्म है सो मैंने कौन ऐसा आश्चर्य जनक काम किया है, जिससे महाराज मेरा इतना भारी सम्मान करनेके लिये उद्यत हुए हैं । यदि महाराज सम्मानही करना चाहते हैं तो चाचिकदेव क्या करे जिसने कि विपक्षका शिर काटकर ले आने पर भी सत्यपक्षके अनुरोधसे मेरे यशका ही वर्णन किया, अपने पौरुषका नहीं, अन्यथा विपक्षके मरणका चिह्न विपक्षके मस्तकको देख कौन जान सकता कि मैंने विपक्षको मारा, इस लिये

[illegible] ऋषिवः — [illegible] समीपके [illegible] [illegible] इस [illegible]

[illegible] मनेवेशातं [illegible]
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible] स्वसरपसे हो [illegible]
[illegible] ॥ ३ ॥

[illegible] चवन- [illegible]

[illegible]

[illegible] किया [illegible]

[illegible]

[illegible] ॥ १ ॥

[illegible] कथा [illegible] जाती है [illegible] —

[illegible] करे सो ।
[illegible] ॥ १ ॥

[illegible] पुत्रकलत्रा- [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

ततस्तस्य पुत्रकलत्रादयः सर्वे विनाऽन्नेनैव मृताः ।स्वयं च प्राण· मात्रावशेषः परामृष्टवान्--

अब इसके सब कुटुम्बगण अन्नके विना कालके ग्रास बन गये और खुदभी कण्ठगतप्राण हो यों परामर्श करने लगाः-

यन्न पुत्रकलत्रेभ्यो दत्तं वित्तं मयाऽर्जितम् ।
तन्निजप्राणरक्षार्थं कथं भोक्ष्ये निराकुलः ॥ ४ ॥

नाहिं कदापि स्वपुत्र कलत्रको निजभुजार्जित अर्थ दिया जब ।
तब स्वप्राण सुरक्षणके लिये रह सुखी उसको हम खायँगे ॥ ४ ॥

ततः स्वप्राणरक्षायामपि न वित्तं विनियुंक्ते । उपवासेन दिनानि गमयन्तं तमतिदुर्बलं दृष्ट्वा तन्नगरवासिनः कारुणिकाः पुरुषाः कतिचित् प्रोचुः । हे कृपण ! किं करिष्यसि तेन धनेन । विद्यमानेऽपि धने निजप्राणान्नश्यतोऽनुमन्यसे । अथ वोचितमेवैतत् । यतः--

ऐसा विचार करके उसने अपना धन अपने प्राणकी रक्षामेंभी न लगाया और अपना समय यापन करता रहा इसकी यह दशा देख नगरके कुछ कारुणिक लोगोंने कहा कि हे कृपण ! बतावो इस धनको रखकर क्या करोगे? जिसकी विद्यमानता रहनेपरभी तुम अपनी आत्माको असहनीय कष्ट सह रहे हो, अथवा तुझे ऐसा करना उचित भी है, क्योंकिः--

अर्जने लभते खेदं गते शोकं च विंदति ।
नाप्नोति कृपणो वित्ते दानभोगभवं सुखम् ॥ ५ ॥

धनके पानेमें सदा खेद पाते क्षतिसे धनकी शोक कजूस पाते ।
क्या ये पृथ्वी पै कदाचित् नृपाल पाते सुखको दान सम्भोग जन्य५॥

अपि च–दीयते न यदुत्साहाद्भुज्यते यन्न कामतः ।
तद्धनं क्षतिदुःखार्थं खेदार्थं वाऽपि चिन्वतः ॥ ६ ॥

औरभी--

जिसका होता खर्च उत्साहसे न भोगाजाता जो न इच्छानुसार ।
क्षतिसे उसकी अर्थका संग्रहीता जगमें नृपते खेद औ दुःख पाता॥६॥

गूढधन उवाच । अये नगरवासिनः पुरुषाः! किमपि कुरुत मया प्राणव्ययेनापि धनव्ययो न स्वीक्रियते । ते ऊचुः । तर्हि राज्ञा वा

चौरेण वा ग्रहीतव्यं त्वयि विपन्ने तव धनम् । गूढधन उवाच । अन्यस्यैव बुद्धिविहीनस्य धनमन्ये गृह्णन्ति । मया स्वकीयं धनं गले बध्वा मर्त्तव्यम् इत्यभिधाय धनपोटलकं गृहीत्वा समुद्रतीरं जगाम । तत्र कंचिन्नाविकं धीवरमुपगम्याह–भ्रातर्नाविक ! अमी दुस्त्यजा मम प्राणास्त्यक्तुकामेनापि मया त्यक्तुं न शक्यन्ते । ततस्त्वं परिवारशोकाकुलं मां समुद्रे मज्जयित्वा मारय । तद्वेतनत्वेन तुभ्यमेकं सुवर्णखंडं दास्यामि । नाविक उवाच । तर्हि देहि मे सुवर्णखंडम् । ततः सुवर्णानि प्रकाश्य दित्सया ददर्श । दृष्ट्वा च पुनरब्रवीत् । भ्रातर्नाविक ! सुवर्णानि दाहविशुद्धानि परस्मै दातुमशक्यानि तत्पुण्यार्थमेव मारय माम् । नाविकस्तानि सुवर्णानि दृष्ट्वा दृष्टधनलोभस्तमुवाच । मा दास्यसि सुवर्णखंडम् । पुण्यार्थमेव मारयिष्यामि इत्यभिधायानन्तरं जले मज्जयित्वा गतप्राणं कृत्वा सुवर्णानि गृहीत्वा नाविकः कृतार्थो बभूव । श्लोकस्तु–

यह सुन गूढ धनने कहा–हे पुरवासियो ! तुम कुछ भी कहो या करो या चाहे मेरे प्राण चले जायँ पर मैं धनका व्यय करना स्वीकार न करूंगा, यह सुन पुरवासीः–तो तेरा धन तेरी मृत्युके पश्चात् स्तेन अथवा राजाको हाथ लग जायगा, यह सुन गूढधनः–आहे ? क्या बकते हो, जो मनुष्य निर्बुद्धि है उसीका धन दूसरे मनुष्यका हाथ लग जाता है, पर विश्वास रक्खो कि मैं अपना धन अपने गलेमें बांधे विना न मरूंगा । यह कह वह कृपण धनकी पोटली लेकर समुद्रके किनारे चला गया और वहां किसी धीवरसे जाकर कहा कि हे भाई नाविक ! मैं चाहता हूँ कि मेरा प्राण मेरे शरीरको त्याग दे पर ऐसा दुस्त्यज है, कि मेरे शरीरसे नहीं निकलते मेरे परिवार भूँखों कालके ग्रास बन गये, मैं उनके मृत्युजन्य शोकसे बड़ा व्याकुल हूँ . सो यदि तू मुझको इस अपारसागरमें डुबाकर मारडालता तो मैं तुझे इस परिश्रमके वेतनरूपमें एक असर्फी देता. यह सुन नाविकने कहा तो देखाओ वह कहां है ? गूढधनने दिदित्सु होकर उस सुवर्ण खण्डको बार बार देखा पर सोनेकी विशुद्धता पर मुग्ध हो बोला–हे भाई नाविक ! ये सोने आगमें तपाये हुए है. देखो ये कैसे लाल दीखते हैं । इसलिये यह मुझसे नहीं दिया जाता तू मुझे वैसाही

मारडाल, तुझे बडा धर्म होगा यह सुन उस नाविकका मनतो लोभसे चंचल होगया. वह उस निबुद्धि कंजूसकी बात पर अपने मनहीं मन हंसता हुआ बोला—अच्छा कोई हर्जकी बात नहीं ले आ तुझे मैं मुफ्त समुद्रमें डुबाकर मारडालता हूँ, बस ऐसा कहकर उस नाविकने उसे समुद्रमें डुबाकर उसका सब सोना ले कृतकृत्य होगया. कहाभी हैः-

जनयति हृदि खेदं मंगलं न प्रसूते
परिहरति यशांसि ग्लानिमाविष्करोति ।
उपकृतिरहितानां सर्वभोगच्युतानां
कृपणकरगतानां संपदां दुर्विपाकः ॥ ७ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां कृपणकथा ॥

कृपणोंके धनका होता है शोचनीय परिणाम
भोग और उपकारहीन जो रहता है बेकाम ।
फिरभी यह दिलमें करता है खेदोत्पात्ति महान
शिव औ यशको दूर भगाके देता ग्लानि महान ॥ ७ ॥

इति कृपणकथा समाप्ता ॥

---

६ अलसकथा.

तद्यथा—

अलस वे कहे गये हैंः--

उद्योगहेतुरुत्साहः प्राणिधर्मो निगद्यते ।
क्रियासु सर्वरूपासु विना तेनालसो भवेत् ॥ १ ॥

उद्योगका कारण है कहा गया उत्साहही जो जननिष्ठ धर्म है ।
कहे गये हैं इसके विना नर सु आलसी ही सब कारजोंमें ॥ १ ॥

आसीन्मिथिलायां वीरेश्वरो नाम मंत्री । स च स्वभावाद्दानशीलः कारुणिकश्च सर्वेभ्यो दुर्गतेभ्यः प्रत्यहमिच्छाभोजनं ददाति । तन्मध्येऽप्यलसेषु वस्त्राद्यपि दापयति । यतः—

मिथिलादेशमें वीरेश्वर नामका एक मंत्री रहता था, वह स्वभावसेही दानी तथा कारुणिक था. इसलिये वह दुर्गत मनुष्योंको प्रतिदिन

उनकी इच्छाके अनुसार अपने राजासे केवल भोजन दिलाया करता था पर अलसोंको तो भोजन तथा आच्छादन दोनों दिलाता था. क्यों कि:--

निर्गतीनां च सर्वेषामलसः प्रथमो मतः ।
किंचिन्न क्रमते कर्तुं जाठरेणापि वह्निना ॥ २ ॥

सकल दुर्गति प्राप्त मनुष्यमें प्रथम है गणना इसकी सदा ।
अति सुपीडितभी जठराग्निसे न करना कुछभी यह चाहता ॥ २ ॥

अथ वा परमसुखस्थानमालस्यम् । यतः--

अथवा आलस्य परम सुखका निकेतन है । क्योंकि:--

कुत्रापि तिष्ठति मनः क्वचिदङ्गकानि
नात्मा चिकीर्षति गिरा श्रममभ्युपैति ।
आलस्यमात्रवशगस्य नरस्य मन्ये
निद्रासुखं हरति जाठर एव वह्निः ॥ ३ ॥

आलसोंका तो कहीं सदाही दिल रहता है
अलसोंका निज देह कहीं भी फिर रहता है ।
आत्मा इनकी नहीं चाहती कुछभी करना
वचन बोलना इनका मानो नृप है मरना ॥
वशीभूत आलस्यके जो मानव नरपाल है
निद्राको उसकी जठरकी हरती जनु आग है ॥ ३ ॥

ततोऽलसपुरुषाणां तत्राश्रमेणेष्टलाभाद्बहवस्तुन्दपरिमृजास्तत्र-वर्तुलीबभूवुः । यतः--

अब अलस शालाका कार्य सुचारु रूपसे चलने लगा. अलस तथा दुर्गतलोग विना किसी परिश्रमके अपना अपना इच्छित भोजन तथा आच्छादन अधिगत करने लगे. यह देख कुछ तुन्द परिमृजजन भी कृत्रिम आलस्य देखाते हुए उस अलस शालामें एकत्रित होगये. क्योंकि:--

स्थितिः सौकर्यमूला हि सर्वेषामपि जायते ।
सजातानां सुखं दृष्ट्वा के न धावन्ति जन्तवः ॥ ४ ॥

विश्राम पाते जन हैं जहांहीं प्रसन्न हो वे रहते तहांही ।
स्वबन्धुको देख सुखी न कौन स्वबन्धुके सन्निधि धावता है ॥ ४ ॥

पश्चादलसानां सुखं दृष्ट्वा धूर्त्ता अपि कृत्रिममालस्यं दर्शयित्वा भोज्यं गृह्णंति। तदनंतरमलसशालायां बहु द्रव्यव्ययं दृष्ट्वा तन्नियोगिपुरुषैः परामृष्टं यदक्षमबुद्ध्या करुणया केवलमलसेभ्यः स्वामी वस्तूनि दापयति कपटेनानलसा अपि गृह्णंतीत्यस्माकं प्रमादः । तदस्मद्दोषेण स्वामिधनं वृथा विनष्टं भवतीत्यतो यथार्थालसान् परीक्षमहीत्यामृश्य प्रच्छन्नमलसशालायां ते नियोगिपुरुषा अग्निं दापयित्वा निरूपयामासुः । ततो गृहलग्नं प्रवृद्धमग्निं दृष्ट्वा धूर्त्ताः सर्वे पलायिताः । पश्चादीषदलसा अपि पलायिताः । चत्वारः पुरुषास्तत्रैव सुप्ताः परस्परमालपंति । एकेन वस्त्रावृतमुखेनोक्तम् अहो कथमयं कोलाहलः। द्वितीयेनोक्तम्—तर्क्यते यदास्मिन् गृहेऽग्निर्लग्नोऽस्ति। तृतीयेनोक्तम्—कोऽपि तथा धार्मिको नास्ति य इदानीं जलार्द्रैर्वासोभिः कटैर्वा प्रावृणोति । चतुर्थेनोक्तम्—अये वाचालाः । कति वचनानि वक्तुं शक्नुथ । तूष्णीं तिष्ठत । ततश्चतुर्णामेव तेषां परस्परालापं श्रुत्वा वह्निं च तेषामुपरि तिष्ठन्तं दृष्ट्वा नियोगिपुरुषैः केशेष्वाकृष्य गृहीत्वा ते बहिष्कृताः । पश्चात्तानवलोक्य पठितम्—

जब कुछ धूर्तोंने देखा कि यहां अलस लोग सुखके साथ अपना २ भोजन तथा आच्छादन प्राप्त कर रहे हैं तो वे भी अपना कृत्रिम आलस्य देखाते हुए अलस शालासे अपना २ भोजन तथा आच्छादन प्राप्त करने लगे. इस प्रकार अलसशालाके व्ययका परिमाण बहुत बढ गया, यह देख अलसशालाके अधिकारियोंने यों परामर्श करना शुरू किया कि, हमारे स्वामीका अक्षम तथा करुणाकी बुद्धिसे इन अलसोंको भोजन तथा आच्छादन देनेके लिये हमको आदेश है पर हम देखते हैं कि जो अलस नहीं हैं वे भी कृत्रिम आलस्यको प्रकट करके इस शालासे लाभान्वित होरहे हैं सो यह हम लोगोंका बडा प्रमाद है. इस लिये हमको उचित है कि हम यथार्थ अलसोंकी परीक्षा करके अपने स्वामीके धनको वृथा विनष्ट न होने दें. ऐसा परामर्श करके उन नियोगी पुरु-

षोंने प्रच्छन्नहो अलस शालामें आग लगादी और उसका दृश्य देखने लगे. अब अग्निदेवने शालाके ऊपर अपना प्रभुत्व जमालिया. इनकी कराल ज्वाला प्रवृद्ध हो शालाके ऊपर लहलहाने लगी, यह देख वे जो धूर्ततासे आलसी बने थे झट वहांसे बाहर निकलकर भाग चले, और वे भी वहांसे झट भाग चले जो कि ईषत् आलसी थे, पर चार पुरुष जो कि यथार्थमें बडे ही आलसी थे वहां ही लेटे हुए परस्पर बातचीत करने लगे, उनमेंसे एक अपने मुखको वस्त्रसे ढांककर बोला–हे भाई ! भला बताओ तो इस कोलाहलका क्या कारण है ? दूसरा–जान पडता कि इस घरमें आग लगी है. यह सुन तीसरा–हे भाई ! यहां ऐसा कोई कारुणिक नहीं है जो कपडेको भिगोकर उससे अथवा किसी एक चटाईसे हमलोगोंको ढाक देता. यह सुन चतुर्थ आलसीने झिडकके उन तीनोंसे कहा–छिः तुम लोग कितना बोलते हो, क्या इतना बोलनेमें तुम लोगोंका मुँह नहीं पिराता ! भला अबभी तो चुपचाप रहो । इस प्रकार वे यथार्थ आलसी बातचीत करही रहे थे कि उनके शरीरके ऊपर अग्निकी कणा गिरने लगी, यह देख झट राजाके अधिकारियोंने चोटी पकडपकडकर उनको बाहर निकाला और उनकी दशा देखकर निम्न लिखित पद्य पढा:–

पतिरेव गतिः स्त्रीणां बालानां जननी गतिः ।
नालसानां गतिः काचिल्लोके कारुणिकं विना ॥ ९ ॥

शरण है पति ही स्व कलत्रका शरण है जननी निज पुत्रका ।
जगतमें करुणायुतक विना अलस मानवकी गति है नहीं ॥ ९ ॥

पश्चात्तेषु चतुर्ष्वलसेषु पूर्वतोऽप्यधिकतरं वस्तु मंत्री दापयामास ॥

इति पुरुषपरीक्षायामलसकथा ॥

इस प्रकार परीक्षा करनेके पश्चात् वे राजाके सचिव उन यथार्थ अलसोंको पहलेसे भी अधिक अमन चैनसे रखने लगे ॥

इति अलस कथा समाप्ता.

---

७ भीरुकथा ।

पुमान् शौर्यविहीनस्तु कातरः कथ्यते बुधैः ।
स प्राणकातरो भीरुः कृपणो धनकातरः ॥ १ ॥

अपदे विपदाशंका स्तोकबुद्धिर्निजे बले ।
अभीमे भीमताबुद्धिर्भीरोः सर्वत्र जायते ॥ २ ॥

जो हीन है मानव शूरतासे उसे कहा कातर है बुधोंने ।
जो भीत होते व्यय मृत्युसे हैं वे भीरु कंजूस कहे गये हैं ॥ १ ॥
भीरु विपदकी शंका रखते जहां विपदका लेश नहीं
अपने बलको लोक समझते यद्यपि वह है स्तोक नहीं ।
भीम बुद्धि रखते फिर उसमें जो मानव हैं भीम नहीं
भीरु जनोंकी प्रकृति अचल है यह चल सकती कभी नहीं ॥२॥

बभूव गंगादक्षिणकूले पारिभद्रो नाम राजा । स च प्रकृत्या भीरुः पितुरुपार्जिते राज्ये मंत्रिभिः क्रियमाणः प्रभुरभूत् । पश्चात्तस्य भीरुतां दृष्ट्वा सन्निकृष्टा राजानस्तद्भूमिसीमानमाचक्रमुः । यथा यथा तस्य सीमामाक्रान्तवन्तस्तथा तथा स भूमिं तत्याज । तथा हि-

गंगाजीके दक्षिण तटपर पारिभद्र नामका एक राजा राज्य करता था, वह स्वभावसे ही बडा डरपोक था, जब कालक्रमसे इसका पिताने स्मरणीयताको प्राप्त किया तब सब सचिवोंने मिलकर इसको राजा बनाया राजा होने पर भी इसकी भीरुता कम न हुई. यह देख इसके राज्यके निकटवर्ती राजाओंने इसके राज्यकी भूमि सीमाके ऊपर चढाई करदी, वे ज्यों ज्यों इसकी राज्य भूमि सीमाको आक्रमण करते गये त्यों त्यों राजा पारिभद्र अपनी नैसर्गिक भीरुताके कारण अपनी भूमिको छोड २ भागता ही गया, जैसा कि कहा गया है:-

यः शान्तप्रकृती राजा शौर्यशक्तिमदर्शयन् ।
विना युद्धेन संतिष्ठेत् सोऽरिभिः परिभूयते ॥ ३ ॥
शत्रवः पिशुना रोगा स्वभावादपकारिणः ।
अप्रातिक्रियमाणास्तु प्रभवन्ति पदे पदे ॥ ४ ॥

जिस राजाकी प्रकृति शान्त है शौर्य शक्ति नहीं दर्शाता
युद्ध विमुख हो शान्त रहे जो वह निज अरिको हर्षाता ।
शत्रु पिशुन औ रोग प्रकृतिसे हानि जन हैं कहे गये
प्राति क्रियासे हीन सदा ये परिभव कारक कहे गये ॥ ३ ॥ ४ ॥

क्रमेण शत्रूणामाक्रमं तस्य राज्ञो भीरुतां च दृष्ट्वा मंत्रिण ऊचुः। देव ! सहिष्णुतया भूमिराक्रान्तैव शत्रुभिः । परिशिष्टरक्षणार्थमपि शक्तिर्दर्शयितव्या भवति। राजोवाच। प्रथमः संधिरेव क्रियताम् पश्चात् कर्त्तव्यमेव युद्धम् । मंत्रिण ऊचुः । युद्धं चेत् कर्त्तव्यं तदिदानीमेव कथं न क्रियते। अवश्यकर्त्तव्ये कर्मण्यलं कालातिपातेन । राजोवाच। युद्धे सति करितुरगपदातयः संदेहे पातयितव्याः । मंत्रिण ऊचुः। यदि युद्धं न कर्त्तव्यं तदा सेनायाः किं प्रयोजनम्। युद्धप्रयोजनैव सेना पतिष्यति युद्धे । राजोवाच। युद्धे न केवलं सैन्यं पतति स्वपातशंकाऽपि विद्यते। यद्युभयबलसंग्रामे वर्तमाने प्रथमः शरो मम हृदि लगति तदा भवाद्भिः स्वामिवत्सलैः किं क्रियते। अत एवोक्तं नीतिशास्त्रे--

जब विपक्षोंका आक्रमण खूब जोरसोरसे बढा और इधर राजाकी भी भीरुता बढती ही गई तब सचिवोंने राजासे यों कहा, महाराज! आपकी सहिष्णुताको देखकर आपके विपक्षोंने आपके बहुतसे भूमि भागोंके ऊपर आक्रमण करके उन्हे ले लिया है, भला जो बच गया है उसके लिये भी तो शक्तिको उपयोगमें लाना उचित है, यह सुन राजा--हे सचिवों! पहले सन्धि करलो फिर पीछे युद्ध करना तो लिखा ही है, मंत्री--महाराज! यदि पीछे युद्ध करना ही महाराजको अभीष्ट है तो अभी ही उसके होनेमें क्या आपत्ति? जो कार्य अवश्य कर्तव्य है उसमें कालका अति यापन करना कदापि उचित नहीं. यह सुन राजा--हे सचिवों! क्या तुम्हे यह ज्ञात नहीं कि जो युद्ध करता है वह मानो अपनी चतुरंगिणी सेनाको जोखिममें डालता है तो क्या मुझे ऐसा करना चाहिये? मंत्री-महाराज! यदि आपको युद्ध करना ही अभीष्ट नहीं तो सेनाकी ही क्या जरूरत? सेनाका मुख्य प्रयोजनतो है युद्ध करना, सो यदि युद्ध करनाही इसका मुख्य प्रयोजन है तो इस युद्धमें विनष्ट होने दीजिये, यह सुन राजाने फिर कहा कि हे मंत्रियों युद्धमें केवल सेनाकीही नहीं किन्तु मेरे भी पातकी शङ्का है जब दोनों सेनाओंके बीच लडाई छिड जायगी तो सबसे पहले मेरा ही हृदय बाणोंसे वेधा जायगा फिर बताओ उस

अवसरके ऊपर तुम क्या कर सकोगे ? इसी लिये तो नीति शास्त्रकारोंने कहा है:-

अपि सर्वं समुत्सृज्य कार्यं समयलंघनम् ।

मंत्रिण ऊचुः--सामर्थ्ये सति कृत्येषु न क्षमेत क्षणं बुधः ॥ ५ ॥

समय लंघन ही सब त्यागके उचित है नरको करना सदा ।

मंत्री– न सहते क्षण भी बुध है यदिपर पराभव कारक शक्ति है ॥५॥

इदानीं भवान्समर्थः यदि शत्रून् न पराभविष्यसि तदा लब्धप्रस्तावाः शत्रव एव भवन्तं पराभविष्यंति । राजोवाच । तर्हि मम प्रतिनिधिः कश्चित् परिपन्थी क्रियताम् । मंत्रिण ऊचुः । राजन् ! हीनबलं हंतुं कंचित् प्रतिनिधीकुरु । समानबलं संग्रामे स्वयमेवोद्धुरोभव । यतः–

महाराज ! इस समय आप अपने विपक्षोंको विनष्ट करनेके लिये पूरी शक्ति रखते हैं इस लिये यदि आप इस समय उन विपक्षोंकी पराभूति करनेके लिये चेष्टा न करेंगे तो समय पाकर वे आपको ही गिरानेके लिये चेष्टा युक्त होजावेंगे. यह सुन राजा–हे सचिवों ! यदि तुम्हारी यही प्रबल इच्छा है कि युद्ध अवश्य हो तो लो यह मैं किसी एक वीरको अपना प्रतिनिधि चुने लेता हूं, यह सुन सचिव--हे देव ! संग्राममें अपनेसे कम बलवालोंको जीतनेके लिये किसी अन्यको प्रतिनिधि बनाना आपको उचित है, परन्तु जो विपक्ष समान बलवान् है उसको रणांगणमें जीतनेके लिये आपको खुद अपने बलको उपयोगमें लाना उचित है, क्यों कि:--

सौभाग्यं परसौन्दर्याद्राज्यं परपराक्रमात् ।

परबुद्धेश्च विज्ञानं न कश्चिदनुमन्यते ॥ ६ ॥

परकी शोभासे परोंका सुभाग्य परके बलसे राज्यका प्राप्ति होना ।

फिरभी परकी बुद्धिका ज्ञान होना जाना जाता है न भू पै किसीसे ६॥

राजोवाच । मंत्रिणः किमपि ब्रूत, न योत्स्ये । तस्य राज्ञस्तद्वचनमाकर्ण्य मंत्रिणः सर्वे तत्स्थानादुत्थाय बहिर्बभूवुः परस्परमुदीरयामासुश्च । यदयं कुमारः पितरि जीवति विचक्षणः कृतिमत्त्वेनोपलक्षितः पितर्युपरते भीरुर्दृश्यते । कथमस्य राज्यं स्थास्यति यतः–

यह सुन राजा-हे मन्त्रियों ! तुम कुछभी कहो या करो मैं कदापि युद्ध करना स्वीकार न करूंगा जब राजाने ऐसा कहा तब उसके सब मन्त्री वहांसे उठकर बाहर निकल आये और परस्पर बातचीत करने लगे कि देखो जब इस कुमारका बाप जीता रहा तब यह बडाही कृतिमान् तथा विचक्षण था पर पिताके मरतेही वही कुमार भीरुताका आश्रय बनगया भला इस हालतमें इसका राज्य कैसे चिरकाल स्थायी रह सकेगा. देखोः-

यावदासीत् परायत्तस्तावद्दृष्टोऽयमुद्भटः।
प्रायः स्वातंत्र्यमासाद्य स्वभावं भजते नरः ॥ ७ ॥

जब नरेश्वर ये परतंत्र थे तब रहीं इनकी अति शूरता।
जगतमें सब लोग स्वतन्त्र हो प्रकृतिके वशमें रहते ध्रुव ॥ ७ ॥

यावदासीत् पितुः क्रोडे तावद्दृष्टः कृतिक्षमः ।
भरे च पतिते मूर्ध्नि स्फुटीभूताऽस्य भीरुता ॥ ८ ॥

औरभीः-

जनकके वशमें जब ये रहे तब अतीव कृतिक्षम ये रहे।
भर पडा इनके शिरपै जब तब हुई इनकी स्फुट भीरुता ॥ ८ ॥

भीरुता च महद्दूषणं पुरुषस्य । यतः-

भीरुता मनुष्यका भारी दूषण है. देखोः-

गिरिकंदरलीनोऽपि सेनाकोटिवृतोऽपि च ।
तीर्णसप्तसमुद्रोऽपि भीरुर्भीतिं न मुंचति ॥ ९ ॥

सुगुप्त हो जो गिरि कन्दरामें तथा सदा वेष्टित हो बलोंसे।
हो पारमें सात समुद्रकेभी न त्यागता भीरु स्वभीरुताको ॥ ९ ॥

एतस्य भीरुतया क्रमेण राज्यमिदं क्षीणमेव भविता । अस्माभिः किं कर्त्तव्यं तच्चिंतनीयं भवति । यतः-

इस भीरु राजाकी भीरुताके कारणसेही इसका सारा राज्य क्षीणताको प्राप्त हो जाता है सो सोचो कि हमको अपने कल्याणार्थ क्या करना उचित है अन्यथा निश्चय रखो कि इस दुष्ट राजाके दोषसे हमाराभी विनाश निश्चितही है. क्योंकिः-

स्वेन दोषेण दुष्टात्मा स्वयं नश्यति केवलम् ।
भूपालस्य तु दोषेण नश्यंति सकलाः प्रजाः ॥ १० ॥

विनष्ट होते खुद दुष्ट लोग स्वदोषसे है जगमें परन्तु ।
विनाश होता सकल प्रजाका स्वदोषसेही क्षितिपालके है ॥ १० ॥

अस्माभिः सपरिवारैः सधनैरत्र स्थातुं न शक्यते । यद्ययमिदानीं परित्यज्यते स्वामी तदा लज्जा पापं च।यदि न त्यज्यते तदा विनाशः, ततः किमत्र विधेयं भवतीति महान् संदेहः । तत्र निर्णयं पश्चाद्विधास्यामः। इदानीं तु करोत्वयं राजा यथेष्टम्,गच्छतु समयः। यतः–

तो यदि यह राजा युद्ध न करेगा तो विपक्षके कारण हम लोगोंको अपने २ धन जनके सहित यहां रहना कठिन है और यदि इस आपत्तिके समय इस भीरु राजाको छोडकर हम लोग कहीं भाग जाते हैं तो लज्जा तथा पाप है. यदि इसे नहीं त्यागे तो विनाशके सिवा इसका दूसरा परिणामही नहीं दीखता तो क्या करना उचित है। अच्छा तो हम निर्णय पीछे करलेंगे इस समय राजाको जैसा करनाहो वैसा वह कर ले जबतक विपत्ति निकटमें नहीं आई है तबतक हमें क्यों डरना चाहिये। कहाभीहैः-

भेतव्यं नापदस्तस्याः क्षणो यामंतरा भवेत् ।
को जानाति क्षणादूर्ध्वं किं विधाता विधास्यति ॥ ११ ॥

विपदसे डरना नहीं चाहिये विपद है जबलौं नाहिं आगयी ।
निकटमें यदि है वह आगई उचित कार्य करे तब मानव ॥ ११ ॥

इति परामृश्य मंत्रिणः सर्वे स्वस्वगृहं जग्मुः। स तु पारिभद्रो राजा स्वकीयभीरुतया क्रमेण शत्रुभिराक्रम्य गृह्यमाणराष्ट्रः शत्रुसैन्यस्य भेरीरवं श्रुत्वा मंत्रिणः पप्रच्छ । अहो भिषजां मते भेरीशब्दोऽपि भेदको भवति कथमन्यथा मम मुहुर्मुहुः प्रवृत्तिरभिवर्द्धते। मंत्रिण ऊचुः । राजन् भेरीशब्दो न भेदको भवति भीरुतैव भेदिका । पश्चादरीणां भेरीरवं श्रुत्वा दूरादेव पारिभद्रः पलायितः–

जब समयक्रमसे विपक्षने राजा पारिभद्रके ऊपर आक्रमण किया और उसका समस्त राष्ट्र अपने हाथमें करलिया तब उसकी सेनामें डंकोंके ऊपर चोट पडी जिसकी ध्वनिको सुनकर राजा पारिभद्रने अपने मन्त्रि-

योंसे कहा कि हे मंत्रियों ! भिषजोंने बताया है कि भेरीकी ध्वनिभी बाणसे कम मनुष्यके हृदयका वेधक नहीं है सो यथार्थभी ज्ञात होता है क्योंकि देखो यह डंकेकी ध्वनि मुझको यहांसे भगानेकेलिये बार २ उत्तेजित कर रही है. यह सुन मंत्रियोंने कहा-हे देव ! आप पक्का विश्वास रक्खें कि यह भेरीका शब्द कदापि भेदक नहीं हो सकता भेदिका है आपकी भीरुता. ऐसा कहे जानेपर राजा पारिभद्र वहां ठहर न सका वह तुरत किसी दूरदेशमें जाकर छिप गया इसीलिये कहाभी हैः -

महत्त्वं गूढमेवास्तु दूरे तिष्ठतु पौरुषम् ।
यत्पितुः संचितं राज्यं भीरुणा तच्च हारितम् ॥ १२ ॥

औरभीः-

तर्कोंको ही सतत करते भीरु हैं व्यग्र होते
होते वे हैं फिर उदधिम शोकके मग्न चित्त ।
ब्रह्माने तो अलग न किया भीरुका पुँस्त्व चिन्ह
हाहा हाहा प्रकट न किया चिह्न, ही नारिकाका ॥ १२ ॥

अपि च-

भीरुं नाश्रयते जनो न कमला भीरोः करे वर्द्धते
भीरुं हंत पराभवंति पिशुना भीरुं हसंति स्त्रियः ।
तर्काभासशताकुलस्य परितः शंकांबुधौ मज्जतो
भीरोः पुंस्त्वमपाकृतं च विधिना स्त्रीत्वं च नोन्मीलितम् ॥१३॥

इति पुरुषपरीक्षायां भीरुकथा ॥

औरभीः-

लक्ष्मी है रहती न भीरुजनके अभ्यासमें सर्वदा
पाती वृद्धि तथा न भीरु करमें भूपै किसी रीतिसे ।
देते कष्ट महान दुष्ट फिरभी है भीरुओंको सदा
हाहा भीरु मनुष्यको सुहँसती हैं नारियाँ भी सदा ॥ १३ ॥

इति भीरुकथा समाप्ता ॥

---

८ चौरकथा ।

दयादानादिभिस्त्यक्तो विवेकप्रभवैस्तु यः ।
शौर्यं चापि भवेत्तस्य कुवृत्तेरेव कारणम् ॥ १ ॥

दया दानका हेतु ज्ञान है यह बुधसे है कहा गया
इनसे हीन सदा जो नर है वही स्तेन है कहा गया।
शौर्य चोरभी दर्शाते हैं इसमें संशय जरा नहीं
पर कुवृत्तिकेही कारणसे है कुछ कारण अन्य नहीं ॥ १ ॥

तद्यथा–

विवेकेन विना शूरः पापमाचरति ध्रुवम् ।
पुण्यकर्मसमर्थोऽपि यथा चौरः सरीसृपः ॥ २ ॥

औरभी:–

है वीर किन्तु यदि हैं नरमें न ज्ञान तो पापनित्य करता वह है महान!
जैसे सरीसृप हुआ अतिपाप चोर जो शक्त था पर झुका न सुकार्य ओर २

आसीदुज्जयिन्यां पुरि विक्रमादित्यो नाम राजा । स चैकदा चौरव्यापारदर्शनकौतूहली रंकवेषं परिगृह्य निजनगराद्बहिर्देवतायतनसान्निधाने तस्थौ । तत्र च तमस्विन्यां रात्रौ महानिशाभागे चत्वारश्चौराः समागत्य मंत्रयामासुः । यदिदं गृहानीतमन्नमत्र भुक्त्वा प्रवृद्धबलाः पुरं प्रविशामः । विक्रमादित्य उवाच । तदुच्छिष्टं मह्यं दास्यथ । चौराः सवितर्कमाहुः । अये कस्त्वम् । राजोवाच । रंकः क्षुधाकुलितो गंतुमसमर्थः पतितस्तिष्ठामि । चौरा ऊचुः । हुम् । नगर पथपरिशोधनसमये दिवाऽस्माभिर्दृष्ट एवायमत्र । रे रंक! कथमिदानी मत्रैव तिष्ठसि । राजोवाच । देवयात्राप्रवृत्तलोकमुद्दिश्य भिक्षार्थमह मागतोऽस्मि। कुत्रान्यत्र यास्यामि । भिक्षामनासाद्य बुभुक्षितः पतितस्तिष्ठामि। चौरा ऊचुः। यदि तुभ्यमुच्छिष्टमन्नं दास्यामस्तदा पुनः किं प्रयोजनं करिष्यसि।राजोवाच । तुंगंतुंगं धनिकगृहं दर्शयिष्यामि चोरितवस्तुभारं च वोढास्मि । चौरा ऊचुः। ततस्तिष्ठ। ग्रहीष्यस्यन्नमुच्छिष्टम् । ततः कृतभोजनैर्दीयमानमुच्छिष्टमन्नं कर्परे कृत्वा वैतालकेनापहारयित्वा च राजोवाच । अद्याहं कृतार्थोऽस्मि युष्मत्प्रसादेन। ततस्तेषां मध्ये सरीसृपनामा मुख्यचौरोऽब्रवीत् । यदहं शाकुनिकशास्त्रे कृतश्रमोऽस्मि ततः शृगालाः किं वदंतीति जानामि। इतर उवाच । जानीहि जानीहि। सरीसृप उवाच । सखायः श्रूयताम्

युष्माभिः। शृगालो वदति-भवतां मध्ये चत्वारश्चौरा एको राजाऽस्तीति। ते ऊचुः ! वयं परस्परं चत्वारोऽपि परिचिता एव पंचमोऽसौ रंको दिवाऽपि दृष्टोऽप्युच्छिष्टग्राही दृश्यते। ततः कुतो राजशंका । सरीसृप उवाच । शृगालभाषितं मिथ्या न भवति । ते ऊचुः । प्रत्यक्षबोधितेऽर्थे का दुश्शंका । ततो वाग्वादं कृत्वा पंचापि पुरुषाः पुरं विविशुः । पुरपतिगृहे संधिं भित्वा बहूनि धनानि चोरयित्वा नगराद्बहिरागत्य गर्ते चिक्षिपुः। चौराश्चत्वारोऽपि सरसि कृतस्नानाः पुनर्नगरमागत्य गृहं प्रविविशुः। राजा च स्वकीयमगारमाजगाम । तदनंतरमास्थानमंडपे सिंहासनोपविष्टो दंडनायकमाहूयादिदेश । राजोवाच । अये पुररक्षक ! त्वं दुर्गपालोऽसि न जानासि किमपि रात्रिचारित्रम् । गच्छ तावदिदानीं चत्वारश्चौराः पिबिडिनाम्नः शौण्डकस्य गृहे मद्यं पिबन्तः सन्ति । तानिह शृंखलाबद्धान् कृत्वा सत्वरमानय । दंडनायकः प्रणम्य तथा कृतवान् । राजोवाच । रे रे मम सखायश्चौराः परिचिनुत माम् । सरीसृप उवाच । तदैव परिचितो भवान्। किंत्वमी सखायः परमदुष्टाः शृगालस्यापि कथितमतथ्यं निर्द्धारितवन्तः किमहं करोमि सखिवचनैर्वंचितोऽस्मि । तथाहि–

उज्जयिनी नामकी राजधानीमें विक्रमादित्य नामका एक राजा राज्य करता था. वह एक रात चोरोंके व्यापारको देखनेके लिये कौतूहली हो रंकके वेषमें महलसे बाहर निकला, और किसी एक देवताके मन्दिरके निकट जाकर बैठ गया, दैवात् उस दिनकी रात बडी तमस्विनी थी. जब महा निशाका भाग उपस्थित हुआ तब चार चोर उसी मन्दिरके निकट आ परस्पर परामर्श करने लगे. हे भाइयो ! वह अन्न ले आओ जिसको कि हम घरसे ले आये हैं उसे खाकर हम सब पहले प्रवृद्ध बल हो लेवें तत्पश्चात् पुरमें प्रवेश करें यह सुन राजा विक्रमादित्यने जो कि वहांही नजदीकमें बैठा था. उन चोरोंसे कहा–भाईसाहब! थोडा मुझको भी अपना जूठा देना, यह सुन उन चोरोंने वितर्कके साथ राजासे पूछा

अरे ! तू कौन है ? विक्रमादित्य–भाईसाहब ! मैं एक भिखारी हूँ देखिये म क्षुधासे इतना पीडित हूँ कि मैं एक कदमभी आगे नहीं चलसकता और भूखके मारे यहां गिरपडा हूं. यह सुन चोर–हांहां जब हम दिनमें मार्गका संशोधन कर रहेथे तब इसे यहांही पडा देखा था रे रंक ! अभीतक यहांही क्यों बैठा है ? यह सुन राजा–भाईसाहब ! यहां बहुतसे मनुष्य तीर्थ यात्राके प्रसंगसे एकत्रित हुए हैं, उनसे भीक्षा मांगकर अपना निर्बाह करनेके लिये मैं यहां आया हूँ फिर यहां न रहूंगा तो कहां जाऊंगा, आजकुछभी भिक्षा न मिली जिस कारण यहां भूँखोंसे पीडित हो यहां पडा हूं. यह सुन चोरोंने कहा अच्छा यहांही पडे रहो तुझे जूंठा मिलेगा ऐसा कहनेके पश्चात् चोरोंने भोजन करके अपना जूठा राजा विक्रमादित्यको देदिया राजानेभी उसे एक खप्परमें रखकर बैतालके द्वारा कहीं फेंकवाकर चोरोंसे अपनी कृतज्ञता प्रगट की, इसके बीच एक शृगाल खूब जोरसे हाउ हाउ करके चिल्लाने लगा जिसको सुनकर एक सरीसृप नामक चोरने कहा कि यदि मैंने शाकुनिक शास्त्रमें परिश्रम किया है तो पहचानताहूँ कि यह शृगाल क्या कहता है. यह सुन दूसरेने कहा हां हां जानो यह क्या बोलता है. पहला चोर जानकर बोला हे भाई ! सुनो यह सियार कह रहा है कि तुममें चार चोर और एक राजा है. यह सुन चारों चोर परस्पर बातचीत करने लगे कि हम चारों तो एक दूसरेसे परिचित हैंही, हां यह पांचवाँ जो भिक्षुक है सो अवश्य अपरिचित है पर इसके विषयमें शंकाही क्या क्योंकि इसे तो दिनमें यहां देखाही था और इसने अभी हमारे समक्ष हमारा जूठा खाया है फिर इसके राजा होनेमें शंकाही कहां ? यह सुन सरीसृपने कहा कुछभी कहो पर सियारका भाषण मिथ्या कदापि न हो सकता यह सुन दूसरे चोरने कहा हे भाई ! जो बात प्रत्यक्ष है उसमें शंका क्यों करना सो मैं विश्वास दिलाता हूं कि यह पाँचवाँ मनुष्य राजा नहीं है इस प्रकार चारों चोर वादविवाद करते पुरमें घुस पडे वहां किसी एक पुरपतिके गृहमें सेंधके द्वारा प्रवेश करके तथा बहुतसी सम्पत्तियाँ चुराकर नगरके बाहर एक गड्ढेमें गाडदी इस प्रकार व्यापार करनेके पश्चात् उन चोरोंको प्रभात होगया और वे किसी एक तालावमें स्नान करके अपने अपने घरको चलेगये. इधर राजा विक्रमादित्यभी अपने महलमें आगया । इसके दूसरे दिन राजाने अपने आस्थान

मण्डपमें आ तथा सिंहासनासीन हो अपने दण्डनायकसे कहाः-रे पुर रक्षक ! तू दुर्गपाल है फिर तुझे ज्ञात है कि गत रातमें तेरे नगरमें क्या हुआ है सो अभी यहांसे जा चार चोर शौण्डकके घरमें मदिरापान कर रहे हैं उनको सकलसे बांधकर यहां शीघ्र ले आ. आज्ञा पातेही दण्डनायकने राजाको प्रणाम किया और उन चोरोंको संकलसे कसके बांधकर राजा विक्रमादित्यके सामने पेस किया उनको देखकर राजा विक्रमादित्यने पूछा-हे भाई चोरों ! क्या तुम मुझे पहचानते हो ? सरीसृप-महाराज ! मैंने तो उसी दम आपको पहचान लिया पर ये मेरे मित्र बडे अबूझ हैं क्योंकि इन्होंने शृगालके भाषितकोभी अतथ्य कर माना अब मैं क्या कर सकता हूँ क्यों कि इन मित्रोंने अपनी सलाहके द्वारा मुझे वंचित कर दिया इसीलिये कहा गया है:-

एक एव सुनीतिज्ञः कर्म कृत्वा सुखी भवेत् ।
बहूनपेक्षमाणस्य स्थानात् प्रच्यवते मतिः ॥ ३ ॥

सुनीति वेत्ता खुद कार्यको यदि करे तभी है रहता सुखी वह ।
सलाह लेता यदि है अनेकसे विमूढ होती मति है अवश्य तो ॥ ३ ॥

अपि च-

ज्ञातसारोऽपि शूरोऽपि पंडितोऽपि क्रियोद्धरः ।
निमज्जति महाराज बहूनां मतिकर्दमे ॥ ४ ॥

औरभीः-

ज्ञाता जो है तत्त्वका शूर जो है कार्योंमें जो शक्त है विज्ञ जो है ।
ऐसा प्राणीभी न क्या मग्न होता धी पंकोंमें भूप ! ज्यादा जनोंके॥४॥

राजोवाच । स्फुट एवायं युष्माकं प्रमादोऽस्ति यद्वीराः समर्था अपि परितश्चौरवृत्तिमाश्रयथ-

चोरका वचन सुनकर राजा- रे चोर ! तेरा प्रमाद तो स्पष्टही है कि तू वीर है सामर्थ्यवान् है फिर चारों ओर चोरी करता फिरता है अरे चोर भला यह बताः--

येनान्ये प्रभवन्ति भूमिवलये लब्धुं दिगंताश्रियः
पुण्यं पंडितमंडलीषु परितः शुद्धं लभन्ते यशः ।

तेनैव स्तुतिसाधकेन महता कार्येण निंदास्पदं
यूयं गच्छत चौरतां भुवि कथं हा दुस्त्यजा दुर्मतिः ॥ ५ ॥
पाते हैं जिस कार्यको कर दिशाका अर्थ भू पै नर
पाते शुद्ध पवित्र कीर्ति विबुधोंकी मण्डलीमें पुनः।
ऐसी जो स्तुति हेतु श्रेष्ठ कृति है हा त्यागके ही उसे
चोरी क्यों करता अहो मनुज धी है दुस्त्यजा ही सदा ॥ ५ ॥

चौरा ऊचुः। देव दुर्मतिरेवात्र कारणम्। राजोवाच। यद्येवं स्वीकुरुथ तदा किं न त्यजथ वा दुर्मतिम्। चौरा ऊचुः। देव! दरिद्रता तत्परित्यागप्रतिबंधिका। यतः-

यह पद्य सुनकर चोर-हे देव! मैं जो चोरी करता हूँ इसका कारण मेरी दुर्मति है. यह सुन राजा-रे चोर! यदि तुझे यह मालूम है कि तेरी चोरीका कारण तेरीही दुर्माति है तो उसे त्यागता क्यों नहीं? चोर-महाराज! मैं तो उसे त्यागना चाहता हूँ पर नहीं त्याग सकता क्योंकि जब मैं इसे त्यागने लगता हूँ तब मेरी दरिद्रता मेरी प्रतिबन्धिका बनकर सामने खडी होजाती है. क्यों कि:-

पापे नियोजयति भोजयतेऽतिदुःखं
स्तेयं च पाठयति शाठ्यमलं प्रशास्ति।
दीनं च याचयति याचयतीह हीनं
किं नैव कारयति हंत दरिद्रता नः ॥ ६ ॥
पाप कर्ममें लीन दरिद्रा करती नरको
दुःख सहा आति चौर्य सिखाती फिरभी नरको।
फिरभी नरको यही धूर्तता सदा सिखाती
हीन दीनको अहो जचाती क्या न कराती ॥ ६ ॥

राजोवाच। चौरा युष्माकं दरिद्रता तदैव गता यदा मया सह सखिभावो जातः। सखिभावस्तुल्यप्रतियोगिक एव संभाव्यते। युष्माकं सख्यमालंब्य क्षणमहं चौरतां गतोऽस्मि। कथं मम सख्येन यूयं राजतां न यास्यथ। तदग्रेऽपि परिहरिष्यथ दुर्मतिमिमाम्। चौरा ऊचुः। कथं न त्यक्ष्यामः? राजोवाच। इदानीं शृंखलाबद्धा यूयं किं किं न स्वीकुरुथ। तथाहि-

यह सुन राजा विक्रमार्कने कहा कि रे चोर! तेरी दरिद्रता तो तभी भाग गई. जब कि मेरे साथ तूने मैत्री की सखिभावका होना तो तुल्य प्रतियोगिकमेंही सम्भव है, देखो तुम्हारे साथ मित्रता करके क्षणभरके लिये मैंभी चोर बना रहा फिर मैं राजा बना रहूं और तुम मेरे मित्र होकरभी चोर बने रहो यह कैसे सम्भव हो सकता. लो मैं तुम्हे राज्य दिये देता हूँ पर याद रक्खो कि मैं इस प्रकार दुर्गत्युत्पादक कार्य फिर कदापि न करूँगा, यह सुन चोर–महाराज! मैं महाराजके समक्ष प्रण करके कहता हूँ कि मैं ऐसा काम फिर कदापि न करूंगा, यह सुनकर राजा--हां इसवक्त तुम संकलसे बद्धहो फिर क्या क्या स्वीकार न करोगे? इसी लिये कहाभी तो है:--

आक्रमे पतिता दुष्टा जिह्वाग्रगतया गिरा।
दूषणं किं न मुंचंति कं न गृह्णंति वा गुणम्॥ ७॥

दुष्टलोग करमें पडते हैं रिपुके जबहीं
रसनासे कहने लगते यह बाणी तबहीं।
मैं अब दूषण पुनः कभी भी नहीं करूँगा
गुणग्रहणके अर्थ सदाही यत्न करूंगा॥ ७॥

अथवा यदीमां कुवृत्तिं करिष्यथ तदा पुनरिमामेव दशां प्राप्स्यथेत्यभिधाय पुनः पुरपतिधनं पुरपतये दापयित्वा स राजा चौरान् मुमोच। तेषां मध्ये सरीसृपनामानं मुख्यचौरं शाल्मलिपुरे राजानं चकार। गजाश्वरत्नकांचनैरदरिद्रीकृत्य करुणया कुतूहलेन च प्रस्थापयामास। ततः कियताऽपि कालेन राज्ञा चिंतितं यत् सरीसृपो मया राजा कृतः स चौरो राजपदवीं प्राप्य किमिदानीमाचरतीति निरूपणीयं भवति। यतः–

सो खबरदार फिर भविष्यमें ऐसी कुवृत्तिके वशीभूत कभी न होना जिससे कि फिरभी ऐसीही दुर्दशामें पतित होना पडे, ऐसा उपदेश दे ..जा विक्रमादित्यने पुरपतिका धन पुरपतिको दिला, चारों चोरोंको धनसे मुक्त कर दिया. और सरीसृपको जो कि चोरोंका मुखिया था ..ल्मलिपुरका आधिपत्य दे तथा बहुतसे हाथी. घोडे और कांचनसे

धनवान् बना वहां भेज दिया. इस प्रकार कुछ दिन बीत गये एक दिन राजाने अपने मनमें यों सोचा कि, मैंने उस कुवृत्त चोरको शाल्मलिपुरका राज्य देकर राजा बनाया वह राजपदवी पाके इस समय क्या करता है इसकी परीक्षा अवश्य करनी चाहिये. क्योंकिः—

> दुर्बलस्य गुरुर्भावो दुष्टाग्नेर्गुरु भोजनम् ।
> राज्यं गुरु च दुर्बुद्धेः परिणामसुखं कुतः ॥ ८ ॥

> दुर्बलको गुरु वस्तु महा ही दुख दाता है
> गुरु भोजन फिर मन्द वह्निको दुख दाता है ।
> बडा राज्यभी दुख देता है उस नरपतिको
> जिसने दिलमें वास दिया है हा दुर्मतिको ॥ ८ ॥

ततः स राजा सुचेतननामानं चरं पुरुषं प्राप्तराज्यस्य चौरस्य चरित्रनिरूपणाय प्रस्थापयामास। चरस्तु तत्र गत्वाऽधिगतसर्ववृत्तांतः पुनराजगाम । राजोवाच । सुचेतन कथय वार्त्ताम् । चर उवाच। देव भवतः पथ्यमपथ्यं वेति न विचारयामि अलीकभाषणं नोचितं चारपुरुषस्य । तथाहि—

इस प्रकार विचार करके राजाने सुचेतन नामक एक चरको बुलाकर उससे कहा कि रे चर ! तू शाल्मलिपुरको जा और वहां जाकर उस चोरका चरित्र देख कि वह इस समय क्या कर रहा है राजाकी आज्ञा पा वह चर वहां गया, और उस चोरके सब वृत्तान्त अधिगत करके राजाके पास फिर लौट आया. उसे देखकर राजाने पूछा-रे चर ! बता उसका क्या हाल ? चर--महाराज ! मैंने वहां जाकर जैसा देखा तथा जैसा सुना उसे सुनकर महाराजको सन्तोष हो या असन्तोष, यह तो परमेश्वर जाने किन्तु चारचक्षुराजाको अलीक भाषणसे बंचित करना चारको उचित नहीं. क्योंकिः-

> काणेन चक्षुषा जंतुर्यथा किंचिन्न पश्यति ।
> न पश्यति तथा राजा चरेणानृतभाषिणा ॥ ९ ॥

> यथैव प्राणी कुछ देखता नहीं संसारमें है निज काण चक्षुसे ।
> तथैव राजा कुछ देखता नहीं मिथ्या प्रवक्ता निज चार है यदि

तदहं यथादृष्टं तच्चरितं पद्यैरुपवर्णयामि । शृणोतु देवः–
इस कारण मैंने जैसा उस चोरका चरित्र निरूपण किया वैसाही निम्न लिखित पद्योंके द्वारा बताये देता हूँ:–

एकस्मै कृपया तस्मै राज्यं दत्त्वा दुरात्मने ।
परानिष्टप्रवीणाय बहूनां विपदः कृताः ॥ १० ॥

परकी हानि सदा करनेमें जो प्रवीण है
आत्मा जिसकी क्रूर सदाही नृप असीम है ।
ऐसे नरको राज्य दिया मायासे तुमने
सबको आफद् किया महाही मानो तुमने ॥ १० ॥

दुष्टवृत्तः पुराऽप्यासीत् समर्थो भवता कृतः ।
दुर्वृत्तश्च समर्थश्च किं नाम न करिष्यति ॥ ११ ॥

प्रथम भी वह दुष्ट रहा अति फिर समर्थ किया तुमने उसे ।
खल समर्थ हुआ वह सम्प्रति न करता नृपते वह क्या नहीं ॥ ११ ॥

कृपास्तिमितचित्तेन भवताऽपि महात्मना ।
दुर्गतिः खंडिता तस्य प्रकृतिस्तु न खंडिता ॥ १२ ॥

कृपाके वशीभूतहो आपने तो किया दुष्टकी दुर्दशाको विनष्ट ।
परन्तु क्षमानाथ क्या आपने है किया दुष्टकी दुष्टधीको विनष्ट ॥ १२॥

यशः पुण्यं सुखं चेति त्रयं राज्यतरोः फलम् ।
तच्च नाप्नुवतस्तस्य किं राज्येन प्रयोजनम् ॥ १३ ॥

सुपुण्य औ सौख्य तथा सुकीर्ति है साम्राज्यरूपी तरुके प्रभो फल ।
उसे यदि स्तेन न भोगता वह तो राज्यसे क्या फिर लाभ है उसे ॥१३॥

साधूनां हरति द्रव्यं हंति मानं मनस्विनाम् ।
निजसौकर्यलोभेन किमु त्यक्तं दुरात्मना ॥ १४ ॥

निजके सुखके लोभसे दुष्ट चोर ले लेता है द्रव्यको साधुओंके ।
सुजनोंके भी मानको तोडता है त्यागा क्या हे भूपते दुष्टने है ॥ १४ ॥

नावसीदति पापेन लज्जते नापकर्मणा ।
न तृप्यति परस्वेन घस्मरस्य कुतो घृणा ॥ १५ ॥

करके पापोंको न जो खिन्न होता करके पापोंको न जो है लजाता ।
परके धनसे तृप्त होता नहीं है अनुकम्पा लेस क्या दस्युमें है ॥ १५ ॥

स्वयं कृतानि कर्माणि स्वयमेव विलुंपति ।
तृष्णोपप्लुतचित्तानां स्थैर्यमात्मकृते कुतः ॥ १६ ॥

करता कृत्योंको स्वयं दुष्ट दस्यु खुदही करता लुप्तभी है उन्हींको ।
तृष्णासे जो भूप है व्याप्त प्राणी मनमें उनके स्थैर्य होता कभी क्या१६

राजोवाच । सुचेतनैभिः पद्यैस्तस्य दुरात्मनश्चरित्रं विदित्वाऽहं खिन्नोऽस्मि । मन्ये ममापि दुष्कीर्त्तिरियम् । चर उवाच । देव दुष्कीर्त्तिः केवलं भवत एव । यतः परितो लोकाः पठंति—

सब सुन राजा विक्रमादित्यने चरसे कहा कि रे सुचेतन! इन पद्योंके द्वारा उस दुष्ट दस्युका चरित्र सुनकर मेरा चित्त बडा दुःखी हो रहा है, मानो कि उस दुरात्माकी दुश्चरित्रता मेरी ही अपकीर्ति हो. चर—हे देव! सचमुच पूछिये तो कलंक आपको ही है, क्यों चारों ओर मनुष्य ऐसी कहा करते हैं:-

साऽवज्ञा साहसांकस्य चौरराजस्य तद्यशः ।
यद्दत्तं दस्यवे राज्यं यच्च दस्युः कुकर्मकृत् ॥ १७ ॥

वह है राजाकी अवज्ञा कि दस्युको राजाने दे दिया एक राज्य ।
यह है जगमें कीर्ति ही दस्युकी जो होके पापी भी हुआ राज्यभागी१७

राजोवाच। ततः किमुचितमिदानीम् । चर उवाच । देव महता-मपयश एव निवारणीयं भवति यदेतत् क्षणपर्यंतमपि नोपेक्षणीय-मास्ते । भुवने लब्धपदा दुष्कीर्त्तिरनपेया भविष्यति । ततो विक्र-मादित्येन प्रच्छन्नवेषधारिणा चौरस्य राज्यं गत्वा चरवचनं परीक्षि-तम् । पश्चाच्चोरो राजपदादवतार्य पूर्वामेव दशां प्रापितो हतश्च । यतः—

यह सुन राजा रे सुचेतन ! तो बता कि इस समय क्या करना उचित है ? चर—हे देव ! जो लोग बडे होते हैं उनको कलंक दूर करनेके लिये हमेशा सचेष्ट रहना समुचित है, यदि कहीं यह एक क्षण भी उपेक्षित हुई तो समझ रखिये कि यह इस संसारमें अपना अटल पद जमा लेती है, और फिर इसको विनष्ट करना कठिनसा हो जाता है- यह सुन राजा विक्रमादित्य अपना वेष बदलकर उस चोरके राज्य- गया, और जब उसे चरका कहना सच्चा ज्ञात हुआ तब उसने

चोरको राज्यसिंहासनसे उतार दिया और मारडाला, ऐसे समय राजा विक्रमादित्यने निम्न लिखित पद्य पढाः-

निश्शंकाऽस्तु पुरी गणश्च विदुषां धत्तां गुणैर्गौरवं
स्वैरं संप्रति संचरंतु वणिजो मार्गे विमुक्तापदः ।
निद्रातु प्रतिमंदिरं पुरजनो जागर्तु धर्मोत्सवः
साधुद्वेषिणि सापराधचरिते चौरे हते भूभुजा ॥ १८ ॥

पावें गौरव विज्ञलोक गुणसे भीके विना हो पुरी
होके मुक्त विपत्तिसे बणिक स्वेच्छासे चलें मार्गमें ।
निद्रा प्राप्त करे मनुष्य पुरके हो धर्मकी जागृति
साधु द्वेषक दस्युको नृपतिने है मार डाला अब ॥ १८ ॥

विवेकेन विना चौरा विना शौर्येण कातरः ।
अलसस्तु विनोत्साहं लोके मर्त्योऽभिजायते ॥ १९ ॥

कविकी उक्तिः-

है स्तेनमें क्या रहता विवेक क्या कातरोंमें रहता सुशौर्य ।
सुना गया है फिर सुस्तमें क्या उत्साह भूमण्डलपै कदापि ॥ १९ ॥

अन्वयव्यतिरेकाभ्यामुक्तं वीरस्य लक्षणम् ।
दृष्टांताश्च तथा प्रोक्ताः कथाद्वारा द्वयोरपि ॥ २० ॥

इति श्रीसमस्तप्रक्रियाविराजमानश्रीरूपनारायणमहाराजाधिराज श्रीमच्छिवसिंहदेवपादानामाज्ञया श्रीविद्यापतिविरचितायां पुरुषपरीक्षायां वीरपरिचायको नाम प्रथमः परिच्छेदः समाप्तिमगमत्॥

औरभीः-

मैंन कहा अन्वयसे सुवीरसुलक्षणोंको व्यतिरेकसे भी ।
दृष्टान्त भी घस्मर वीरके हैं द्वारा कथाके हमने लखा ये ॥ २० ॥

इति चन्द्रकान्त पाठक काव्यतीर्थकृत पुरुषपरीक्षाभाषागद्यपद्ये प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

सुबुद्धिकथाः ।

अथ राजा पारावारः पुनराह । मुने वीरकथा तावदाकर्णिता, सुबुद्धिकथां श्रोतुमिच्छामि । मुनिरुवाच । राजन्नाकर्णय-

राजा पारावारने फिरभी मुनिराज वसूक्तिसे पूछा कि हे मुने ! मैं वीरकी कथा सुन ली अब मैं आपके मुखसे सुबुद्धिकी कथा सुनना चाहता हूं.मुनिने कहा बहुत अच्छा मैं कहता हूँ. ध्यान देकर सुनिये:-

युक्तं जानाति सर्वत्र मार्गं पश्यत्यवीक्षितम् ।
सुबुद्धेस्तु कथां श्रुत्वा मूर्खो भवति पंडितः ॥ १ ॥

अबुध भी बुधकी सुनके कथा सुलखते पथको न जिसे लखा ।
उचित बात सभी फिर जानते सुबुध है बनते फिर शीघ्रही ॥ १ ॥

बुद्धिस्तीक्ष्णतरा यस्य प्रतिभा मेधया सह ।
पृथक् कुबुद्ध्यबुद्धिभ्यां सुबुद्धिरिह कथ्यते ॥ २ ॥

औरभीः-

जगतमें जिसकी मति तीक्ष्ण है स्मरणशक्ति तथा प्रतिभा नृप ।
पृथक है सुकुबुद्धि अबुद्धिसे नर सुबुद्धि उसे कहते नृप ॥ २ ॥

९ मेधाविकथा ।

तद्यथा-

सकृदुक्तं च गृह्णाति न च विस्मरति श्रुतम् ।
धीर्धारणावती यस्य मेधावी स इहोच्यते॥ १ ॥

करते जो अभ्यास श्रवणसे एक बारके
न जो भूलते श्रुतपदार्थको एक बारके ।
रहती जिसकी बुद्धि धारणासे संयुत है
मेधावी है कहा गया वह जो धीयुत है ॥ १ ॥

[illegible]व गौडविषये श्रीहर्षो नाम कविपंडितः । स च नलचरिता[illegible] काव्यं कृत्वा परामृष्टवान् । यतः-

[illegible]देशमें एक बडा कवि होगया है, उसका नाम था श्रीहर्ष, श्रीहर्षने [illegible]रत नामका एक महा काव्य बनाया, बनानेके पश्चा[illegible] एक दिन उसने यों सोचना शुरू कियाः-

[illegible]सवन्मानसग्राहिगुणालंकारसंयुतम् ।
कवीनां यशसे काव्यं हास्यायान्यच्च जायते ॥ २ ॥

जो है रससे युक्त तथा जो मनको मोहे
अलंकार गणसे युत हो जो अतिशय सो है ।

ऐसा ही वर काव्य मनुजको यश देता है
अपर काव्य नरको हास्यास्पद कर देता है ॥ २ ॥

अग्नौ परीक्ष्यते स्वर्णं काव्यं सदसि तद्विदाम् ।
किं कवेस्तेन काव्येन सद्भिर्यन्नानुगृह्यते ॥ ३ ॥

अग्निमें होती परीक्षा स्वर्णकी काव्य विदकी सभामें सत्काव्यकी ।
क्या प्रयोजन है बुधों उस काव्यसे ग्रहण करते बुध न जिसको चित्तसे ३

ततस्तत्काव्यं दर्शयितुं पंडितमंडलीमुद्दिश्य वाराणसीं जगाम । तत्र च कोकनामानं पंडितं श्रावयामास । कोकस्तु संसारसुखविरक्तः प्रतिक्षणं समाधौ तिष्ठति । यदा च मध्याह्नसमये मणिकर्णिकाया स्नानार्थं गच्छति तदा गच्छन्नेवाकर्णयति । श्रीहर्षस्तु तमनुगच्छन् पठति प्रत्यहम् । तदुत्तरं किमपि न प्राप्नोति । एकदा श्रीहर्षेणोक्तम् । आर्य ! महाकाव्ये कृतश्रमोऽहम् । तत्परीक्षार्थं त्वामुद्दिश्य बुद्ध्या स्वदेशीयवात्सल्येन च महतो दूरादागतोऽस्मि । पथि गच्छतो भवतः पुरस्तात् सदसद्विवेकप्रत्याशया पठामि । भवान् न निंदति न चाभिनंदति । तन्मध्ये कर्णमेव नार्पयति । कोक उवाच । आः कथमहं कर्णं नार्पयामि । किंतु संपूर्णं श्रुत्वा शब्दार्थयोरूहापोहेन सन्दर्भशुद्धिं ज्ञात्वा विशेषं वक्ष्यामि । काव्यं तु मया कर्णे कृतं मनसि निर्द्धारितं च । यदि भवान् न प्रत्येति तदा शृणोतु । ततो मासमाकर्णितानि पद्यानि पपाठ । तदाकर्ण्य साश्चर्यः सानंदश्च श्रीहर्षस्तत्पादयोः पपात । श्रीहर्ष उवाच । भोः कोकपंडित ! परितुष्टोऽस्मि तव महत्त्वेन । कोकपंडितस्तस्य काव्यस्य गुणान् प्रस्तुत्य दोषान् समाधाय विशेषानुद्बोध्य तं श्रीहर्षकविराजं हृष्टमनसं कृत्वा गृहं प्रस्थापयामास । तथा हि—

इस प्रकार परामर्श करके श्रीहर्ष अपने काव्यकी समालोचना कराने लिये पण्डितोंको लक्ष्य करके बनारस गया और वहां जाकर कोक नामके एक पण्डितको अपना पूरा काव्य सुनाया, उधर कोकका यह हाल था कि वह संसारिय भोग विलाससे विरक्त होनेके कारण तथा उसमें तल्लीन होनेसे एक क्षण भी समय प्राप्त नहीं करता था कि व

बैठकर श्रीहर्षका महाकाव्य सुने अत एव जब वह प्रतिदिन मध्याह्न समय मणिकर्णिका स्नान करनेके लिये जाता था तब रास्तेमें महाकवि श्रीहर्ष अपना काव्य सुनाया करता था, और कोक सुना करता .. पर श्रीहर्षके काव्यकी उत्तमता या अनुत्तमताके विषयमें वह .. भी उत्तर नहीं देता था, इस प्रकार कुछ दिन बीत गये, एक दि. श्रीहर्षने कोकसे कहा कि हे आर्य ! मैंने महा काव्यमें बडा श्र. किया है, आप मेरे स्वदेशी हैं तथा आपकी विद्वत्ता भी अगाध. इसलिये मैं अपने काव्यकी समालोचना करानेके अभिप्रायसे आ.. निकट आया हूँ और रास्तेमें जाते समय मैं प्रतिदिन अपना काव्य आपको इस आशासे सुनाया करता हूँ कि आप इसकी उत्त.. तथा अनुत्तमताके विषयपर विचार करेंगे, पर आप न तो इसकी निन्दा ही करते और न प्रशंसा ही. जान तो ऐसा पडता कि आप इस ओर ध्यान ही नहीं देते: यह सुन कोकने कहा कि, . श्रीहर्ष ! तुम ऐसा न समझलो कि मैं तुम्हारे काव्यकी ओर ध्यान ही नहीं देता, हां यह बात अवश्य है कि मैं अभी उत्तर न.. देता क्योंकि मैं चाहता हूँ पहले पूरा २ सुनलूँ फिर ऊहापो. साथ संदर्भकी शुद्धि तथा काव्यकी विशेषताके ऊपर विचार क. काव्य तो मैंने सुनलिया और उसे अपनी बुद्धिमें रख भी लिया. यदि मेरी बातपर श्रद्धा न करो तो लो सुनाये देता हूँ. ऐसा कहकर म. विद्वान् कोकने सब सुना दिया. जो उसने श्रीहर्षके मुखसे सुना था सब सुनकर श्रीहर्षको बडा आश्चर्य लगा और उसने महाकवि कोककी अगाध विद्वत्ताकी बार २ प्रशंसा की. इधर कोकने भी श्रीहर्षके काव्यकी प्रशंसा करके इसके दोषोंके ऊपर भी विवेचना की. इस प्रकार सन्तुष्ट मानस करके श्रीहर्षको घर जानेका आदेश दिया । कहा भी है:

वस्तुदोषमनादृत्य गुणांश्चिन्वंति तद्विदः ।
अपि कंटकिनः पुष्पे गंधं जिघ्रन्ति षट्पदाः ॥ ४ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां मेधाविकथा ॥

सकल दूषणको बुध त्यागके ग्रहण हैं करते गुणको सदा ।
भ्रमर कंटकको तजके यथा ग्रहण है करता ध्रुव गंधको ॥ ४ ॥

इति मेधावी कथा समाप्ता ॥

१० सुबुद्धिकथा ।

तद्यथा–

मेधा च प्रतिभा चैव बुद्धिर्यस्य गरीयसी ।
सुबुद्धिरिति विख्यातः संदेहे निर्णयक्षमः ॥ १ ॥

नृपाल ! होती जिन मानवोंकी है बुद्धि मेधा प्रतिभा सुश्रेष्ठ ।
कहे गये वे जन हैं सुबुद्धि सन्देहको ये जनके भगाते ॥१॥

आसीन्मिथिलायां कर्णाटकुलसंभवो हरसिंहदेवो नाम राजा । तस्य सांख्यसिद्धान्तपारगामी दण्डनीतिकुशलो गुणेश्वरो नाम मंत्री बभूव । तस्य च नानाविधां सुबुद्धितां श्रुत्वा देवगिरे रामदेवो राजा मनसाश्चर्यश्चिंतयामास । कथं मर्त्यस्य मर्त्यलोकवासिनोऽपि बृहस्पतेरिव मनीषा श्रूयते । भवतु निरूपयामि तावत् । तदनंतरं स राजा हरसिंदेवेन राज्ञा समं मैत्रीमाचरत् । यतः–

मिथिलादेशमें एक राजा राज्य करता था, उसका नाम था हरिसिंहदेव. उसने अपने जन्मसे कर्णाट कुलको अलंकृत किया था उसके मंत्रीका नाम था गुणेश्वर गुणेश्वर. सांख्य तथा दण्डनीतिमें बडा ही कुशल था उसकी बुद्धिमत्ता भी कम न थी, अगाध थी, जिसको सुनकर देवगिरिका राजा जिसका कि नाम रामदेव था, बडा आश्चर्यित हुआ और यों सोचने लगा कि मैं सुनता हूँ कि गुणेश्वर अगाध बुद्धिमत्ताका समुद्र है तो क्या यह सम्भव है कि मर्त्यलोकवासी मर्त्यमें भी सुराचार्यके समान अकुंठित मनीषा हो ? अच्छा इसकी परीक्षा करनी चाहिये, ऐसा सोचकर रामदेवने राजा हरिसिंहदेवके साथ मैत्री कर ली. कहा भी है:–

सदृशेन समं पुंसः प्रेमोदर्कसुखं भवेत् ।
स्थिरक्रियेण शूरेण कृतज्ञेन महात्मना ॥ २ ॥

सदृशसे स्थिर मानवसे तथा फिर महामन शूर कृतज्ञसे ।
मनुजकी नरपालक ! मित्रता जनक है सुखका परिणाममें ॥ २ ॥

अपि च ।

नष्टे कोशे हते सैन्ये भृत्ये च प्रकृतिं गते ।
कुलीनेन कृता मैत्री पुंसः कल्पलतायते ॥ ३ ॥

और भीः—

जब हुआ प्रतिकूल स्वभृत्य है जब विनष्ट हुए बल कोश भी ।
सुजनसे जनकी तब मित्रता सुफलती नृप ! कल्पलता यथा ॥३॥

तदनंतरमुभयादिगुपचारेण सौहृदे समुत्पन्ने स राजा रामदेवो हरसिंहदेवं लिखितद्वारा ययाचे यन्मह्यं द्वौ पुरुषौ प्रेषयितव्यौ एकः सुधीः द्वितीयो मूर्खश्चेति । तदालोक्य लिखनं पठन् स राजा चिंतयामास । यन्मित्रवचनमपरिहार्यम् कं सुधियं कं च मूर्खं प्रेषयिष्यामीति चिंताव्याकुलितं राजानं दृष्ट्वा मंत्रिराज उवाच । देव ! किमिति चिंता कृताऽस्ति । राजोवाच । मित्रनियोगानिर्वाहः परमलज्जास्थानम् । ततस्तत्र कोवा सुधीः कोवा मूर्खः प्रेषयितव्य इति चिंतयामि । मंत्रिराज उवाच । न कश्चित् प्रेषयितव्यः । आः शांतं पापम् । मित्रप्रार्थनाया भंगो जायते । मंत्रिराजो ब्रूते । मित्राभ्यर्थनायाः सिद्धिरेव भवति । यतो रामदेवो महाराजस्तस्य देवगिरिराज्ये किं वस्तु दुर्लभम् । कति पंडिताः कति मूर्खा वा न संति । तदितः प्रहितेन मूर्खेण पंडितेन वा किं तस्य प्रयोजनम् । ततस्तर्कयामि स राजा परमविदग्धः कुतुकी च तथाविधपुरुषद्वयप्रार्थनाव्याजेन भवतो मंत्रिणं मां परीक्षते । यदहं मूर्खं पंडितं च परिचिनोमि न वेति । राजोवाच । तत् किं विधातुमुचितम् । मंत्री ब्रूते । देवेदमुत्तरं लिखितव्यं यत् सुधीरत्र राज्ये नास्ति न वा भवतोऽपि राज्ये लक्ष्यते स वाराणस्यामन्यत्र वा पुण्यतीर्थे वाऽनुसंधातव्यः । यतो बुद्धेः फलमात्महितं तदस्मिन्निन्द्रजालप्राये बुद्धिमतां किमर्थं स्थातव्यम् ? बुद्धिमान् क्वापि निर्जने गिरिकंदरे वा समाधिस्थो भविता । मूर्खस्तु सर्वत्रापि सुलभः किं तस्यावस्तुनः प्रस्थापनेन । चिह्नं तु तस्यपरिचयार्थं लिख्यत एव । तद्यथा—

इसके उपरान्त दोनों ओरके अच्छे व्यवहारसे क्रमशः दोनोंमें दृढ मित्रत्व हो गया, एक बेर राजा रामदेवने हरसिंहदेवके पास एक पत्र लिखा जिसमें उसने अपने राज्यसे दो पुरुषोंको भेजनेके लिये राजासे

प्रार्थना की थी, इसके साथ २ यह भी लिखा था कि उनमेंसे एक पण्डित और दूसरा मूर्ख होना चाहिये. यह पढकर राजा नरसिंहदेव बडा चिन्ताग्रस्त हुआ कि किस पण्डित तथा किस मूर्खको भेजूं ? इस प्रकार राजाको चिन्तासे ग्रस्त देखकर मंत्रीने उससे चिन्ताका कारण पूछा राजाने उत्तर दिया कि हे मन्त्री ! मेरे मित्र रामदेवने यहांसे एक पण्डित तथा एक मूर्खको भेजनेके लिये विज्ञप्ति की है सो मुझे यह नहीं ज्ञात होता कि मैं किस पण्डित तथा किस मूर्खको भेजूं, मित्रके नियोगका अनिर्वाह बडी लज्जाका स्थान है इसलिये मेरा चित्त चिन्तासे व्याकुल हो रहा है । यह सुनकर मन्त्रीने कहा महाराज ! मेरी तो राय यह है कि आप किसीको वहां न भेजें. यह सुन राजा शान्तं पापं शान्तं पापं फिर ऐसी पापकी चर्चा मेरे सामने कभी मत करना. यदि मैं किसीको नहीं भेजता हूँ तो मित्रकी विज्ञप्तिका भंग होता है यह सुन मन्त्री-हे देव ! ऐसा करनेसे मित्रकी प्रार्थनाका भंग नहीं होता किन्तु उसकी सिद्धि ही होती है क्योंकि रामदेव महाराज हैं फिर भला आपही तो बताइये कि उनके विशाल राज्यमें क्या वस्तु अप्राप्य हो सकती है क्या उनके ही विशाल राज्यमें अनेकानेक पण्डित या मूर्ख नहीं हैं ? फिर उनको यहांसे प्रेषित पण्डित या मूर्खसे क्या मतलब ? सो यहां मेरा तर्क तो यह है कि वे बडे विदग्ध तथा कौतुकी हैं, इसके बहानेसे मेरी परीक्षा करना चाहते हैं कि मुझमें पण्डित तथा मूर्खकी परिचायिका शक्ति है अथवा नहीं ? यह सुन-कर राजा--तो यहां क्या करना उचित है ? मंत्री--महाराज यह लिख दें कि पण्डित न तो मेरे राज्यमें लक्षित होते और न आपके ही राज्यमें. इसलिये इनका अन्वेषण तो काशी या अन्य किसी पुण्यतीर्थमें करलेना चाहिये अन्यत्र नहीं. क्योंकि बुद्धिका फल है आत्महित सो पण्डितोंका, इस इन्द्रजाल प्राय असार संसारमें रहना कब सम्भव है रही मूर्खको बात सो वह मूर्ख तो यहां वहां सब जगह सुलभ है यहांसे ऐसी अवस्तुके भेजनेसे लाभही क्या ? हां इसका चिह्न परिचयके लिये लिखे देताहूं:--

समाने हस्तपादादौ दैवाधीने च वैभवे ।
यो निन्द्रां विंदते लोके स मूर्खः कथ्यते बुधैः ॥ ४ ॥

मनुजसे रखता कर पाद जो फिर सुनिर्भर है निज भाग्य पै ।
भुवन जो बनता सुकलंकका जगतमें वह मानव मूर्ख है ॥ ४ ॥

अपि च—लब्ध्वाऽपि मानुषं जन्म पुण्यं येन न संचितम् ।
नार्जितं च यशः शुद्धं स मूर्ख इति कथ्यते ॥ ५ ॥

औरभीः—

मनुजका जगमें नृप ! जन्म पा नाहिं किया जिसने शुभ पुण्य है।
सुयशका नहिं अर्जन है किया मनुज है वह मूर्ख कहा गया ॥५॥

राजोवाच—तर्हि तथा क्रियताम् । ततो राजमंत्रिभ्यां परामृश्य रामदेवराज्ञि तदुत्तरं लिखितम् । ततस्तदुत्तरं प्राप्य राजा रामदेवः परमपरितुष्टो बभूव । सभासदां मध्ये तं राजानं मंत्रिणं च स्तुतवान् । साधु भूपाल साधु यस्यायं तव राजनीतिसमुद्रकर्णधारो धर्मज्ञो मंत्री विद्यते । तथा च तत्सामयिकः कस्यापि श्लोकः—

मन्त्रीका वचन सुनकर राजाने कहा—अच्छा ऐसाही करो इसके उपरान्त राजा तथा मन्त्री दोनोंने मिलकर राजा रामदेवके पास उत्तर लिखा. राजा रामदेव समुचित उत्तर प्राप्त करके बडा सन्तुष्ट हुआ और अपने सभासदोंके मध्य उस राजा तथा उसके राजनीति समुद्र कर्णधार मन्त्री गुणेश्वरकी बडी प्रशंसा की, ऐसे समय किसी कविने निम्न लिखित दो पद्य पढे—वे ये हैं:—

गुणेश्वरगुणग्रामं गुणिनो गणयंति ये ।
नूनमंभोनिधेरंभः कुंभैराकलयंति ते ॥ ६ ॥

तथाहि—लौकिके वैदिके चैव तस्य कार्ये विनिश्चयः ।
भवत्यन्यादृशस्तस्य कुतश्चंद्रामलं यशः ॥ ७ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां सुबुद्धिकथा ॥

गुण गुणेश्वरके नरपाल ! जो अमित हैं गिनना बुध चाहते ।
उदधिके जलको लघु कुम्भसे उचलना बुध वे ध्रुव चाहते ॥ ६ ॥
लौकिक वैदिक कर्म सकलमें निर्णय करता जो है पलमें ।
इन्दु समान विमल यश इसका हो सकता जगमें है किसका ॥७॥

इति सुबुद्धिकथा समाप्ता ॥

अथ प्रत्युदाहरणकथाः।

११ वंचककथा।

द्वौ कुबुद्धिरबुद्धिश्च सबुद्धेर्व्यतिरेकिणौ।
संक्षेपेण कथाद्वारा कथ्येते सांप्रतं मया ॥ १ ॥

कुबुद्धि है भूप! तथा अबुद्धि है सुबुद्धिसे भिन्न स्वभावका अतः।
कुबुद्धिकी और तथा अबुद्धिकी संक्षेपसे हूँ कहता कथा अब ॥ १ ॥

तयोः प्रथमं कुबुद्धिकथा प्रस्तूयते–

इन दोनोंमेंसे पाहिले कुबुद्धिकी कथा शुरू की जाती है, कुबुद्धि उसे कहते हैं:--

सैव बुद्धिर्भवेद्यस्य तीक्ष्णाऽप्यपथगामिनी।
स कुबुद्धिरिति ख्यातः पापायशसोः पदम् ॥ २ ॥

मति वही अति तीक्ष्ण कुमार्गसे विचरती जिसकी इस लोकमें।
बुध कुबुद्धि सदा कहते उसे अयशका अघका पद है वह ॥ २ ॥

कुबुद्धिः परिचेतव्यः कथाद्वारा पुनः पुनः।
तत्संसर्गपरित्यागः सम्यक्परिचितेः फलम् ॥ ३ ॥

द्वारा कथाके सुकुबुद्धि जाना जाता सदा है बुध मानवोंसे।
है त्यागना ही इसका कुसंग सम्यक् परीक्षा फल है नृपाल ॥ ३ ॥

स च द्विविधः। तदुक्तम्–

वंचकः पिशुनश्चैव कुबुद्धिर्द्विविधो मतः।
द्वावेतौ पापकर्माणौ जायेते मलिने कुले ॥ ४ ॥

वह दो प्रकारका है, कहाभी है:--

द्विविध भूप! कुबुद्धि मनुष्य हैं पिशुन वंचक हैं कहते जिन्हें।
मनुज ये अघ सागर हैं सदा उपजते नर ये खलवंशमें ॥ ४ ॥

तत्र वंचको यथा–

कूटकर्मालयो दक्षो मृदुवाग् दारुणक्रियः।
परवित्तापहर्त्ता च वंचकः स तु कीर्तितः ॥ ५ ॥

उनमें वंचक जैसेः-

अनृत कर्म अगार सुदक्ष जो मधुर बोलत कार्य कठोरही।
काढ़ और हरे परवित्तको कथित वंचक मानव है वही ॥ ५ ॥

आसीद्गोदावरीतीरे विशाला नाम नगरी । तस्यां च समुद्रसेनाभिधानो राजा बभूव । तस्य पुत्रं चंद्रसेननामानं शुद्धहृदयं दृष्ट्वा तन्नगरवासिना वंचकेन निजमतानुसारिणा वणिजा चिंतितम् । यतः-

इसकी कथा इस प्रकारकी हैः--गोदावरी नदीके तटपर विशाला नामकी एक नगरी थी उसमें समुद्रसेन नामका एक राजा राज्य करता था, उसके एकही पुत्र था जिसका नाम था चन्द्रसेन. चन्द्रसेन बडेही सीधे स्वभावका राजकुमार था. ऐसा देखकर एक बनियाँ जो कि बडाही स्वेच्छाचारी तथा वंचकोंका अग्रणी था, मनमें यों बुरा विचार करने लगा. क्योंकिः-

शार्दूलस्य मृगा भक्ष्याः नागा इव गरुत्मतः ।
असाधोः साधवो भक्ष्याः श्येनस्येवेतरे खगाः ॥ ६ ॥

खगेन्द्रके पन्नग भक्ष्य जैसे मृगेन्द्रके हैं मृग भक्ष्य वैसे ।
है बाजके भी खग अन्य जैसे असाधुके भक्ष्य सुसाधु वैसे ॥ ६ ॥

तदयं कुमारः साधुप्रकृतिर्मम निश्चितं सुखग्राह्यधनो भविष्यति। तदेनमपसर्पामीति परामृश्य स तं राजकुमारं सिषेवे । गुंजाफलमाया दुर्जनस्य प्रकृतिः परिणामविरसाप्यापातसुरसा भवति । तथा प्रकृत्या तं कुमारं सेवमानः सेवया वशं नीतवान् । ततो वंचकश्चिंतयामास । यदेनं केनाप्युपायेन देशान्तरं नीत्वाऽस्य द्वारा राजकोशसारभूतानि रत्नानि हरामि । ततश्च विश्रम्भप्रस्तावे कुतूहलप्रस्तावे च देशान्तरकथां श्रवणरमणीयां मुहुर्मुहुः कथयति । तत्कथाश्रवणरसिकं कुमारं विदित्वा वणिगुवाच । कुमार ! राज्ये वर्तमानस्य भवतो नित्यसुलभैरप्युपभुक्तैरेव भोग्यवस्तुभिः कुतः सुखम् ? सुखं तु देशान्तरे संभवति यत्प्रत्यहमदृष्टदर्शनमभुक्तभोजनमनन्नभूतान्नभवश्च जायते ।

कि निःसन्देह यह राजकुमार बडेही सीधे स्वभावका है सो यदि मैं इसको धन ठग विद्याके प्रयोगसे हर लूं तो मुझे जराभी परिश्रम न पडेगा. ऐसा विचारकर वह वंचक वनियाँ उस भोले भाले राजकुमारकी सेवा बनावटी प्रेमके साथ करनेलगा. कहा गया है कि दुर्जनजनोंकी मैत्री घुंघुचीके समान है, परिणाममें विरस होनेपरभी आपात सरस प्रतीत होती है. इसलिये उस वंचकने उस राजकुमारकी ऐसी कृत्रिम प्रीतिके साथ सेवा की कि, वह उस वंचककी सेवासे उसका वशंवद हो गया ऐसा देख उस वंचकने फिर भी यों सोचा यदि मैं किसी भी उपायसे इस कुमारको देशान्तर ले जाता तो इसके राजकोशके सारभूत सब रत्न हर लेनेमें मुझे जराभी श्रम न पडता. ऐसा विचार करके वह वंचक विश्रंभालाप तथा कुतूहलके प्रस्तावके समय ऐसी २ श्रवणरमणीय देश देशान्तरकी कथा करता था कि उस राजकुमारको देशदेशान्तर देखनेकी बडी उत्सुकता हो जाती थी धीरे २ वह कुमार ऐसी कथा सुननेका ऐसा रसिक बनगया कि उसे इसके विना कहीं एकपल भरभी विश्राम नहीं. ऐसा जान एकदिन उस वंचकने एकान्तमें उस कुमारसे कहा कि हे कुमार! आप इतने बडे राजकुमार हैं फिर आप जहां जन्मे वहीं हमेशा रहे रहे देशान्तर न जाय क्या यह किसीको अच्छा लग सकता है? यह आपको ज्ञात है कि यहां आपको वेही २ पदार्थ उपभोग करने पडते हैं जिनका उपभोग आपने एक बार किया है. भला आपही तो बताइये कि वार वार उपभुक्त भोग्य वस्तुओंसे नूतन सुखका होना कब सम्भव है? कदापि संभव नहीं. सुखका होना तो देशान्तरमें संभव है. जहां प्रतिदिन अदृष्ट दृश्योंका दर्शन अनुपभुक्त पदार्थोंका भोजन तथा अननुभूत वस्तुओंका अनुभव हुआ करता है।

चंद्रसेन उवाच । सखे महती ममोत्कंठा वर्त्तते कथं देशांतराणि दृश्यंताम् । वणिगुवाच । कुमार भारलघुना गुरुमूल्येन धनेन निर्वहति देशांतरगमनम् । यदि मनः स्थिरं भवति धनं तु राजकुमारस्य विद्यत एव । तदा मनः परं स्थिरीक्रियतां राजकुमारेण । कुमार उवाच । सखे मनःस्थैर्यं कृतम् । वंचको ब्रूते । यदि कथेयमन्यकर्णपथगामिनी परतर्कविषया च न भवति तदा निर्वहति कार्यम् । कुमार उवाच । न तर्कणीयं केनापि । ततस्तथा देशांतराभिलाषं

कुमारं तथाविधधनसमेतमाखेटकव्याजेन नीत्वा चलितः स वणिक् । कियत्तो दूरात् सैन्यं परावर्त्य बराश्वारूढौ द्वावेतौ कांचिद्दिशमुद्दिश्य जग्मतुः।ततो दूरगमनपरिश्रांतौ क्षुत्पिपासापराभूतौ क्वचिदरण्ये जलाशयसन्निधाने महावृक्षमेकं ददृशतुः । तस्य छायायां द्वावपि तुरंगादवतेरतुः । कुमारस्तु कृतजलपानः परमसुखी छायामासाद्य तृणशय्यायां निद्राणो बभूव। तं निद्राणं दृष्ट्वा वंचकेन चिंतितं यन्मम कृत्यस्यायमेवावसरः । ततः पादसंवाहनं कुर्वाणेन दुरात्मना कुमारस्य निद्रा निरूपिता । तं गाढनिद्रं विदित्वा लताभिर्बबंध। तदनंतरं लताबद्धसर्वगात्रस्य तस्य हृदयमारुह्य शस्त्रीमादाय मनसा विचारयामास । जीववधो न भवेत् हतप्रायो जीवन्मृतकः कथं स्यात् ।तदेनमन्धं विधाय निजप्रयोजनं साधयामीति निश्चित्य चक्षुषी स्फोटयामास। यावत् कुमारः सखे परित्रायस्वेति वदति तावद्दुः कृतकर्मा धनं तुरगौ चादाय पलायितः। कुमारस्तु तत्रारण्ये कृतार्त्तनादो रुरोद । रुदंश्चक्षुर्वेदनया निर्दयानिक्षिप्तहस्तपादस्त्रुटितबंधो बभूव। परिश्रान्तो निस्सहो निष्क्रियश्च भूमौ निपपात । तत्र वृक्षे दयालुर्नाम वृद्धशुकः कश्चिद्वसति । तस्य द्वौ पुत्रौ महाशुकौ संचरणासमर्थस्य प्रत्यहमाहारमानीयानीय पितृभक्त्या प्रयच्छतः। तद् च तौ तं वृद्धशुकं पितरं भोजयित्वा कथयामासतुः । पितरः ! आवाभ्यां नर्मदातीरे महदपूर्वं कष्टस्थानं दृष्टम् । वृद्धशुक उवाच। किं तदपूर्वं किं वा कष्टस्थानं च दृष्टम् ? महाशुकौ कथयतः । यूथिकापुरनाम्नि नगरे नीलरथभूपालस्य एक एव चित्ररथनामधेयः कुमारः स चान्धो वैद्यजनसेव्यमानोऽप्यन्धतां न मुञ्चति । तेन रात्रौ निर्दीपं गृहमिव तद्राज्यं महत्कष्टस्थानं दृष्टमावाभ्याम् वृद्धशुक उवाच। पुत्रौ नष्टचक्षुषश्चक्षुर्बलाय भेषजं वर्त्तते । ते भिषजो न जानंति। तावूचतुः । किं तद्भेषजम् । वृद्धशुकः कथयति एतस्यैव तरोः कुसुमेन शुष्केणार्द्रेण वा यद्यञ्जनं क्रियते तदा नष्टचक्षुश्चक्षुष्मान् भवति । तदाकर्ण्य कुमारश्चिंतयामास । अहं विधिरनुकूलो दृश्यते यद्विहगालापनेऽपि चक्षुर्भेषजप्रस्तावना जाता .

भेषजमपि सुलभमिदानीम्। तदस्य वृक्षस्य पुष्पेण चक्षुरंजनमाचरामि। तावत्कुमारेण तथा कृतम्। ततः प्रथमांजनेन चक्षुर्वेदना शांता। द्वितीयाञ्जनेन भावा जाताः। तृतीयाञ्जनेन प्रकृष्टा दृष्टिर्बभूव। ततः परमहृष्टः कुमारश्चिंतयामास। यदिदानीमसन्मैत्रीजाता विपत्तिस्तीर्णा। अग्रे किं विधेयमस्ति अनया दुर्दशया यदि पुनर्गृहं गम्यते तदाऽन्येषामुपहासस्थानम्। आत्मनश्च कार्पण्यं मरणादपि निंदितम्। ततो गृहं न यास्यामि। वरं चोपलब्धानुभावामिदमेव भेषजं नीत्वा यूथिकापुरं गच्छामि। तं चित्ररथं राजकुमारं सलोचनं करवाणि। तेनैव तस्य पिता नीलरथो मम कामनां पूरयिष्यतीति परामृश्य भेषजमादाय स कुमारः पंथानं पृच्छन् कियताऽपि कालेन यूथिकापुरं जगाम। नीलरथस्य दर्शनं विधाय तत्पुत्रं चित्ररथं चक्षुष्मन्तं चकार। नीलरथस्तु परितुष्टः सर्वं तस्योदन्तं परिपृच्छति स्म। तस्य कथया गुणने शीलेन च तदीयं कुलं ज्ञात्वा चित्ररथकनीयसीं चित्रसेनानाम्नीं स्वदुहितरं विवाहविधिना राज्यचतुर्थभागसमेतां तस्मै ददौ। ततः प्रभृति चंद्रसेनश्चंद्राननया चित्रसेनया प्रियया सह निष्कंटकं राज्यसुखमनुभवति। एकदा कस्मिन्नप्युत्सवसमये स चंद्रसेनो राज्ञो नीलरथस्य श्वशुरस्यागारं गच्छन्नकस्मात्पथि तं वंचकं वणिजमागच्छन्तं ददर्श। दृष्ट्वा च तुरंगादवतीर्य तमालिलिंग। वंचकस्तु तं दृष्ट्वा कथमत्रापि स एव कुमार इति पलायांबभूव। पलायमानं तु पदातिभिरानीय कुमारस्तं वणिजमालिंग्य मित्रलाभपरितुष्टो राजकुलगमनं परिहृत्य तेन वणिजा सह निजगृहमागत्य रहस्युपविष्टः। कुमार उवाच। मित्र कथय वार्त्ताम्। तथालब्धधनोऽपि कथमित्थं दुरवस्थोऽसि? वणिगुवाच। स्वकर्मफलपरिणामेन। कुमार उवाच। मित्र विस्मर तत्। अन्यत् कथय कथं दुर्बलोऽसि। वणिगुवाच। कुमार! वणिगहं स्वभावालुब्धः। तेन भवदीयधनेन वाणिज्यार्थं वहित्रमारुह्य समुद्रपारं गतोऽस्मि। तत्र बहुगुणं वाणिज्यमभूत्। तस्मादागच्छतो मम तटनिकटे

समुद्रे वहित्रं निममज्ज, धनानि नष्टानि । प्राणावशेषोऽहमागतोऽस्मि । तत्प्राणान्मम सापराधस्य गृह्णातु कुमारः । चंद्रसेन उवाच। मित्र न भेतव्यम् । त्वं मम मित्रमसि । यावज्जीवं हि परिपालनीया सतां मैत्री । वित्तं विनष्टमिति तत्राधिकां चिन्तां न करिष्यसि। तदधिकमपरं वित्तं दास्यामि । वणिगुवाच । कुमार ! नेदं प्रत्येति स्वापराधमुषितं मे हृदयम् । यतो मम न कोऽपि त्वयि मित्रानुरूपो व्यवहारः । कथं पुनः प्रसीदति भवान् । चंद्रसेन उवाच । मित्र ममायत्तं मत्कर्म । भवतः कृतरह (?) कः । तथा हि–

यह सुनकर कुमार चन्द्रसेनने कहा कि, हे मित्र ! तुमने बहुत ठीक कहा, मुझेभी देशान्तर देखनेकी बडी उत्सुकता रहती है. यह सुन वह वंचक खुसीके साथ बोला–हे कुमार ! यह बहुत अच्छी बात है कि आपको देशान्तर देखनेकी उत्कंठा है पर विदेश जाने समय एक बातकी ओर अवश्य ध्यान रखना चाहिये, वह यह है द्रव्य, विदेश यात्रा तभी सुखप्रद है जब कि साथमें प्रचुर द्रव्य है. इसके साथ २ वह द्रव्य मूल्यवान्भी अवश्य रहना चाहिये अन्यथा वही विदेश यात्रामें भाट भूत बनकर दुःख प्रद बन जाता है. सो कुमारको मूल्यवान् द्रव्यकी तो कोई परवाह है ही नहीं. क्योंकि द्रव्यतो कोशमें भराही है हां चित्तकी स्थिरता अवश्य चाहिये, इस लिये पहले मनको स्थिर कर लीजिये, यह सुन राजकुमार–अच्छा लो मैंने मनको स्थिर कर लिया. यह सुन बनियाँ फिर बोला, हे कुमार ! यहां एक बात और है वह यह कि यह मंत्रणा जिसको कि हम दोनोंने परस्पर किया है गुप्त रहे जिससे यह अन्य कर्णगामिनी तथा अन्य तर्क विषया न हो. यह सुन कुमार-अच्छा मैं किसीभी दूसरेसे यह वृत्तान्त न बताऊँगा, अब क्या था अबतो उस धूर्तका सारा कपट प्रबन्ध फलित हुआ, वह झट बहुतसे हीरा जवाहिर असर्फी और मोहर इत्यादि अमोल वस्तुओंको उस राजकुमारके पास रखवाकर आखेटके बहानेसे घोडेके ऊपर सवार हो उस राजकुमारके साथ वहांसे निकला. साथमें सेनाभी थी कुछ दूर जानेपर सेनाको लौटा दिया खुद दोनों दो तेज घोडोंके ऊपर सवार हो किसी एक दिशाकी ओर चले जब वे दोनों चलते चलते किसी

एक जीर्ण अरण्यमें पहुँचे तो दोनों बहुत श्रान्त होगये प्याससे गला सूख गया भूखसे पेटमें खलमली मच गयी ऐसी दशामें वे एक जलाशयके निकट किसी एक विशाल वृक्षकी सघन छायाके नीचे घोडोंके ऊपरसे उतर पडे, कुमारके प्राण प्यासके मारे निकलते जाते थे. इस लिये वह झट जलाशयमें गया और उसका स्वच्छ तथा शीत पानी पीकर बडा सन्तुष्ट हुआ, और उसी वृक्षकी छायाके नीचे घास बिछा कर लेट गया और मार्ग गमन जन्य थकावटसे शीघ्रही निद्रा देवीकी गोदमें सो गया,कुमारको निद्राके वशीभूत देख वह वंचक यों सोचने लगा कि इस समय यह राजकुमार गाढ निद्राके वशीभूत हो निश्चेष्ट सोया है सो मेरी कारवाईका ठीक यही सुअवसर है, ऐसा सोच वह झट एक लता ले आया और उससे कुमारको खूब कस कर बांध हाथमें कुमारको मारनेके अभिप्रायसे एक शस्त्री ली. मारते समय उसका विचार बदल गया, उसने सोचा कि इसको इस प्रकार मारना चाहिये कि मैं जीवहत्या जन्य पापसे स्पृष्ट भी न होऊँ और यह हत प्राय भी हो जाय सो वह कौनसा उपाय है जिससे यह जीता हुआ भी मरेके समान बने रहे. अच्छा जान लिया इसकी आँखे फोड देता हूँ, अब क्या था, झट उसने वैसा ही किया उसकी आँखें फोड डालीं, इतनेमें कमारकी निद्रा च्युत होगई, वह बडे ही आर्त नादसे कहने लगा हे मित्र ! मेरी रक्षा करो मेरी रक्षा करो, पर धूर्त राम काहेको कुछ सुनते हैं, वे तो झट सब द्रव्य तथा दोनों घोडोंको लेकर उसी दम गायब होगये. इस प्रकार उस धूर्तके भाग जानेपर वह कुमार उस असहनीय आँखकी वेदनाके कारण खूब जोरसे चिल्लाने लगा और निर्दय होकर अपने अंगोंको पृथ्वीके ऊपर पटकने लगा, जिससे उसके हाथ पैरके बंधन टूट गये. इस प्रकार वह कुमार श्रान्त निःसह तथा निश्चेष्ट होकर पृथ्वीके ऊपर गिर कर पडा रहा, दैवात् दयालुनामक एक तोता घोंसला बनाकर उसी वृक्षके ऊपर रहता था, उसके दो पुत्र थे, वे प्रतिदिन देशान्तरसे आहार ले आकर संचरणासमर्थ अपने वृद्ध पिताको पुनीत भक्तिके साथ दिया करते थे, एक दिन इन दोनोंने पिताको भोजन कराकर स्वस्थ होने पर उनसे कहा कि हे तात ! आज हमने नर्मदा नदीके किनारे एक ऐसा रोमांचोत्पादक दृश्य देखा है कि क्या कहें यह सुन वृद्ध शुक बोला बेटा ! बतावो वह

कौनसा रोमांचोत्पादक दृश्य है ? उन दोनों पुत्रोंने कहना शुरु किया:- यूथिका पुर नामका एक नगर है उसमें नीलरथ नामका एक राजा राज्य करता है, उसे एक ही पुत्र है, जिसका नाम है चित्ररथ. वह अंधा है अनेकानेक भिषजोंने अनेकानेक भेषजोंका उपयोग किया तौ भी उसकी अंधता नहीं जाती, सो जिस प्रकार रात्रिके समय विना दीपका घर अधकारमय प्रतीत होता है उसी प्रकार इस समय नीलरथका सारा राज्य महत्कष्ट स्थान जान पडता है. यह सुन वृद्ध शुकने कहा कि हे पुत्र ! जिसका नेत्र भग्न हो गया है उसके लिये दुनियाँमें भेषज न हो यह तो सर्वथा असम्भव है, भेषज तो अवश्य है पर जान पडता है कि उन चिकित्सकोंको वह भेषज ज्ञात नहीं है. यह सुन दोनों पुत्रोंने पूछा-हे.पिताजी ! वह कौनसा भेषज है ? वृद्धशुक यादि इसी वृक्षके कुसुमका अंजन बना कर लगाया जाय तो अंधा मनुष्य भी तुरंत चक्षुष्मान् हो सकता है यह सब बात वह राजकुमार वृक्षके नीचे बैठे २ सुन रहा था, सुन कर सोचने लगा कि आज सचमुचमें मेरा भाग्य अनुकूल है क्यों कि आज इन विहंगोंके आलापमें भी चक्षुके भेषजकी प्रस्तावना सुनाई पडती है, इस समय उस भेषजकी भी दुर्लभता नहीं क्योंकि वह इसी वृक्षका है, अच्छा तो अब इसके फूलका अंजन बनानेमें जरा भी देर न करनी चाहिये, ऐसा सोच उस कुमारने उस वृक्षके फूलका अजन बना कर आंखमें लगाया, पहिली वारके प्रयोगसे चक्षुकी वेदना समूल नष्ट होगयी. दूसरी वारके प्रयोगसे उसके नेत्रमें भाव उत्पन्न हुआ जब उसने तीसरी बार अंजन लगाया तो उसकी दृष्टिमें प्रकृष्ट दर्शन शक्ति आगयी। इस प्रकार उस राजकुमारके नेत्र चगे होगये, वह बडा सन्तुष्ट होकर विचार करने लगा कि मैंने इस समय भाग्य वश असन्मैत्रीजन्य विपत्ति सागरका तो पार किया पर इसके उपरान्त क्या करना उचित है, यदि ऐसी दुर्दशाको प्राप्त करके देशको लौट जाऊँ तो हास्यास्पदके सिवा और क्या बनूंगा, क्यों दीनता मनुष्यको मृत्युसे भी अधिक कष्ट प्रद बताई गई है, अच्छाई तो इसीमें है कि इस दशाको प्राप्त मैं घरको न जाऊँ किन्तु इसी भेषजसे जिसकी महिमा मैंने खुद प्रत्यक्ष करली है यूथिकापुरके राजकुमार चित्ररथको सलोचन करूँ मुझे तो पूरी आशा है कि राजा नीलरथ मेरी मन

कामनाको अवश्य पूरा करेगा, इस प्रकार परामर्श करके उस राजकुमारने यूथिकापुरके लिये प्रस्थान किया और राह पूछते २ कई एक दिनोंके उपरान्त यूथिकापुरमें जा पहुँचा और वहां राजा नीलरथसे भेंट करके उसी भेषजके द्वारा उसके पुत्र चित्ररथकी आंखें अच्छी कर दीं यह देख राजा नीलरथ उस कुमारके ऊपर बडा प्रसन्न हुआ और उससे सब वृत्तान्त पूछने लगा, जब उसने कुमारकी कथा गुण शील तथा सौजन्यके द्वारा उसकी कुलीनता जानली तब उसने अपनी सुन्दरी कन्या चित्रसेनाके साथ उस राजकुमारका परिणय करके उसको अपने राज्यका चतुर्थांश दे दिया, कुमारभी वडा प्रसन्न हुआ और उस दिनसे उस चन्द्रवदनी चित्रसेना प्रियतमाके साथ निष्कंटक राज्य सुखका अनुभव करने लगा, इस प्रकार कुछ दिन बीत गये, एक दिनका हाल ऐसा हुआ कि चन्द्रसेनके श्वशुरके घरपर कोई उत्सव मनाया जा रहाथा,उसमें यहभी निमंत्रित हुआ,यह श्वशुरके यहां जारहाथा तो देखता क्या है कि वही वचक जिसने उसकी आंखें फोडदी थीं इसी ओर आरहा है, उसको देखते ही कुमार चन्दसेन झट घोडेके ऊपरसे उतरगया और उस प्राचीन वंचक मित्रको आलिंगन करने लगा. यह देख डरसे उस वंचकके प्राण सूख गये वह झट वहांसे भागा, यह देख चन्द्रसेनने अपनी सेनाको उसे पकड लानेका हुक्म दिया सैनिकोंने उसे पकड-कर कुमार चन्द्रसेनके सामने पेस किया. चन्द्रसेन अपने पुराने मित्रको अधिगत करके बडा सन्तुष्ट हुआ और उसको बार बार छातीसे लगाने लगा इसके उपरान्त कुमार चन्द्रसेन श्वशुरके यहां न गया, वह अपने मित्रको साथ लेकर सीधे अपने घरको लौटा जब दोनों मित्र एकान्तमें बैठे तो कुमारने उस वंचक मित्रसे पूछा कि. हे मित्र! कहो तुम्हारा क्या हाल है, उतनी धन राशि प्राप्त करने पर भी तुम्हारी ऐसी दुर्दशा क्यों? यह सुन वंचक--मित्र! यह स्वकृत कर्मका परिणाम है. कुमार-हे मित्र! उसे भूल जाओ अब यह तो बताओ कि तुम्हारी दुर्बलताका क्या कारण है? यह सुन वंचक बनियाँ—हे कुमार! मैं बनियाँ हूँ लुब्धता मेरा नैसर्गिक धर्म है सो मैं आपके द्रव्यसे वाणिज्य करनेके लिये वहित्रके ऊपर चढ कर समुद्रके उस पार गया था वहां वाणिज्यमें भी कम लाभ न हुआ पर जब मैं वहांसे लौटा तब मेरा

जहाज समुद्रके किनारे आकर भी जलमें मग्न हो गया मेरे सब धन तो नष्ट हो ही गये किन्तु खैरियत यही रही कि मेरे प्राण बच गये मैंने कुमारका बडा भारी अपराध किया था इसलिये यह मेरा गला सामने है इसे कुमार तलवारसे उतार लें. यह सुनकर कुमार चन्द्रसेनने कहा हे मित्र ! तुम डरो मत, तुम मेरे मित्र हो सज्जनोंका यह स्वाभाविक धर्म है कि वे एक बार की हुई मैत्रीकी रक्षा यावज्जीवन करते हैं, हे मित्र ! यदि धन विनष्ट होगये तो होने दो उसकी कुछ परवाह नहीं, मैं उससे भी अधिक धन दे दूँगा, यह सुन कर बनियाँ--हे कुमार ! जब मैं अपना अपराध स्मरण करता हूँ तो मेरे हृदयको कुमारके वचनपर विश्वास नहीं होता. क्योंकि मैंने कुमारके साथ मित्रानुरूप कोई व्यवहार न किया फिर कुमारकी प्रसन्नताका क्या कारण है? यह मुझे ज्ञात नहीं होता. यह सुनकर चन्द्रसेनने उत्तर दिया कि हे मित्र ! मैं जो कर्म करूँगा उसका फल मैं ही भोगूंगा तुम्हारे कर्मका मैं कौन ? सुनोः--

भवान् धत्तां किंचिद्भवतु पदवी काऽपि भवतो
मया तु त्वन्मैत्रीप्रवणमनसा किं न विहितम् ।
परित्यक्तं राज्यं स्वजनसहितं हंत विपुलं
स्वकृत्यं स्वायत्तं न खलु परकृत्ये प्रभुरहम् ॥ ८ ॥

समझो कुछ भी तथा चलो तुम किसी मार्गसे ।
पर मैं तो प्रिय ? कभी चलूंगा नाहिं कुमार्गसे ॥
तब मैत्रीके वश हो मैंने किया नहीं क्या ।
विपुल राज्यके सहित बन्धुको त्यागा नहिं क्या ? ॥
प्रभु हूँ केवल मैं सदा अपने ही कृत कृत्यका ।
प्रभु मैं हो सकता नहीं प्यारे ! पर कृतकृत्य का ॥ ८ ॥

एतच्च पद्यं श्रुत्वा लज्जाविदीर्णहृदयो वंचकः पंचत्वं जगाम । कुमारस्तन्मरणदुःखेन सुतरां रुरोद । रुदंतं स्वामिनं दृष्ट्वा चित्रसेना अब्रवीत् । कोऽयं कस्मादागतः कस्मान्मृतः कुतो भवानित्थं करुणाधीनो रोदिति ? चंद्रसेन उवाच । पुराऽनेन महत्युदारता कृता यतो धनापहारकेनापि स्वहस्तपातितोऽपि मूलघातं न हतोऽस्मि ।

चित्रसेनोवाच । नाथ ! सोऽस्य प्रमादो न तु ज्ञानपूर्वको व्यापारः । चंद्रसेन उवाच । तथाऽपि महानेवायम्, यतो लज्जया प्राणान् परितत्याज । तथा हि–

इस पद्यको सुन कर उस वंचकका हृदय लज्जासे फट गया. वह तुरन्त मृत्युको प्राप्त हुआ यह देख कुमार चन्द्रसेन उसके मरणजन्य शोकसे जोर जोरसे विलाप करने लगा। इस प्रकार विलाप करते स्वामीको देख चित्रसेना बोली–हे स्वामी ! यह कौन है, कहांसे आया था और किस कारणसे मृत्युको प्राप्त हुआ ? भला इस विदेशी मृत मनुष्यके लिये आप करुणाके अधीन होकर रोते हैं क्यों ? यह सुन चन्द्रसेन–" प्रिये। तू नहीं जानती पहले इसने मेरे साथ बडी उदारता प्रकट की थी कि इसने इसके हाथमें पडने पर भी मुझको जानसे न मार डाला यह सुन चित्रसेना–हे स्वामी ! वह तो इसका प्रमाद था ज्ञान पूर्वक व्यापार नहीं. चन्द्रसेन–हे प्रिये ! तथापि इसे बडा ही कहना चाहिये क्योंकि इसने लज्जासे भी तो प्राण त्यागा। कहा भी है:–

सलज्जः पुरुषः श्रेष्ठः कापथेऽपि व्रजन्कचित् ।
लज्जा हि जायते पुंसः कुलीनस्य च मानसे ॥ ९ ॥

कुपथमें चलता यदि है कभी तदपि श्रेष्ठ मनुष्य सलज्ज है ।
जगतमें सुकुलीन मनुष्यके हृदयमें रहती ध्रुव है त्रपा ॥ ९ ॥

ततः कुमारस्तस्य वणिजः तत्सजातीयद्वारा संस्कारमौर्ध्वदैहिकं च कारितवान् । वंचकस्तथाऽपि निजव्यापारादैहिकमयशः पारलैकिकञ्च नरकमाससाद ॥

इति पुरुषपरीक्षायां वंचककथा ॥

इसके उपरान्त कुमार चन्द्रसेनने उस वंचक बनियेंके सगोत्रीय मनुष्योंके द्वारा उसका संस्कार तथा औध्र्व दैहिक क्रिया कराई. तथापि वह वंचक इस लोकमें कलंक तथा परलोकमें नरकका ही अधिकारी बना रहा ॥

इति वंचककथा समाप्ता ॥

१२ पिशुनकथा ।

उपकर्त्तुरपि द्वेषी निर्दोषेऽप्यपराधकृत् ।
सापराधोऽपि निर्लज्जः पिशुनो जगदप्रियः ॥ १ ॥

रखता जो है द्रोह सदा उपकारी से भी
दोषारोपण जो करता निर्दोषीमें भी ।
होकरभी जो सापराध लज्जित नहिं होता
पिशुन सदाही सकल लोकका अप्रिय होता ॥ १ ॥

आसीत्कुसुमपुरं नाम नगरम् । तत्र राक्षसेन मंत्रिणा प्रत्यवेक्ष्यमाणश्चंद्रगुप्तो नाम राजा बभूव । तेन राज्ञा राजन्वति राज्ये ब्राह्मणदम्पती प्रत्यूषतुः । तयोरेकः पुत्रो जातः । स च पितर्युपरते पोषणासामर्थ्यान्मात्राऽपि परिहृतः । शिशुरनाथः पथि पतित सहवासिना सोमदत्तेन वणिजा दृष्टः, दृष्ट्वा च करुणयाऽनीय स्वकीयधनेन पोषितः । ब्राह्मणद्वारा संस्कृतः कायस्थद्वारा पाठितश्च । एकदा कायस्थगृहे तं दृष्ट्वा क्षपणकेन पद्यमिदं पठितम्—

कुसुमपुर (पटना) नामक नगरमें चन्द्रगुप्त नामका एक राजा राज्य करता था, उसके मंत्रीका नाम था राक्षस, राक्षस एक बडा नीतिज्ञ मंत्री था जिसके सबबसे राजा चन्द्रगुप्तको राज्य शासनमें जराभी श्रम प्रतीत न होता था. इस राजाके राज्यमें एक ब्राह्मण दंपती बसते थे, उनको एकही पुत्र हुआ. दैवात् इस पुत्रके उत्पन्न होतेही इसका पिता परलोकको सिधारा. यह देख इसकी अबला माताने इसे रास्तेके ऊपर फेंक दिया क्योंकि इसका पालन तथा पोषण इस अनाथ स्त्रीकी शक्तिसे परे था, जब वह बालक अनाथसा रास्ते पर पडा रो रहा था तब एक बनियेंको जिसका नाम था सोमदत्त और जो उसी नगरका निवासी था बडी दया आई उसने झट उसे गोदमें उठा लिया और अपने घर पर ले आकर उसका पालन पोषण करने लगा, कुछ काल बीतने पर जब वह बडा हुआ तब उस बनियेंने ब्राह्मण तथा कायस्थके द्वारा शिक्षा दिला कर उसे बडा चतुर बना दिया, एक दिन वह बालक एक किसी कायस्थके घरमें बैठा था, उसी दम एक क्षप-

णक कहींसे घूमता २ वहां आ पहुँचा और उसे वहां बैठे देख निम्न लिखित पद्य पढा:-

हीनद्विजकुले जातो वणिगन्नेन वर्द्धितः ।
लब्धविद्यश्च कायस्थात् क्षुद्रबुद्धिर्भविष्यति ॥ २ ॥

जन्म ग्रहण है किया नीच द्विज कुलमें इसने
वणिक अन्नसे किया पुष्ट निजको फिर इसने ।
किया प्राप्त विद्याको इसने फिर कायथसे
महाक्षुद्र अत एव मनुज यह होगा मतिसे ॥ २ ॥

तदाऽऽरभ्य सर्वे क्षुद्रबुद्धिरिति तस्य नाम वदन्ति तेन वणिजा तु स ब्राह्मणः प्रत्युपकारवासनया राजसान्निधाने धृतः । यावच्च राजा तेन ब्राह्मणेनाराध्य प्रसादितस्तावत्स वाणिक् स्वकीयधनेन तं पुपोष । पश्चात्प्रत्यासन्ने राजनि लब्धधने च ब्राह्मणे वणिगुदासीनो बभूव । वणिजमुदासीनं दृष्ट्वा क्षुद्रबुद्धिरुवाच । तावत्कथमद्यपर्यंतं मम भरणं कृतं भवता कथमिदानीं न क्रियते । वणिगुवाचः । भद्र ! भवानेवाधुना राजानुग्रहाल्लब्धधनो बहूनां भरणे समर्थः कथं मत्तो वणिग्जनात्स्वकीयभरणमिच्छति । किं तु भवान्मां पोष्टुमर्हति । एवं वाकोवाक्ये निर्वृत्ते श्लोको यथा-

क्षपणककी यह उक्ति पुरवासियोंके कान तक पहुँची वे उस दिनसे उसको क्षुद्र बुद्धिके नामसे पुकारने लगे, अब उस बनियेने प्रत्युपकारकी वासनासे क्षुद्रबुद्धिको राजाके यहां नौकरी लगादी, क्षुद्रबुद्धिने भी उस राजाकी इस प्रकार सेवा की कि वह थोडे ही दिनोंमें उसके ऊपर बडा प्रसन्न हो गया और उसने उस क्षुद्रबुद्धिको बहुतद्रव्य दिये. यह देख अब बनियाँ सोमदत्तने अपनी मूठी बांधली अब न तो उसे कुछ देता और न लेता. इस प्रकार उस बनियेंको उदासीन देख क्षुद्र बुद्धिने कहा- हे भाई ! अब लो आप मेरा पालन तथा पोषण करते आये अव आपने उससे बिलकुल अपना मन मोडलिया है. मेरी समझ तो ऐसी है कि यह बात आपके समान भद्र पुरुषको शोभा नहीं देती. यह सुन सोमदत्तने उत्तर दिया कि हे भद्र ! इस समय

राजाकी कृपासे तुमने प्रचुर धनकी उपार्जना करली है इस समय क्या तुम खुद मेरे समान अनेक मनुष्योंके पालनमें क्षम न हो ? अवश्य हो. फिर मुझ बनियेंसे अब तुम्हें क्या मतलब ? इस समय उचित तो यह है कि तुम्ही मेरा पालन तथा पोषण करो. इस प्रकार दोनों साधु तथा असाधुमें वादविवाद होने लगा. इस अवसरपर कविकी उक्तिः-

वणिक् प्रत्युपकारार्थी विप्रस्तु धनगृध्रकः ।
साध्वसाध्वोर्द्वयोस्तत्र जातं वैरं परस्परम् ॥ ३ ॥

वणिक् था उपकारक विप्रका द्विज रहा अति गृध्रक अर्थका ।
इस प्रकार परस्पर शत्रुता अति हुई नृप ! साधु असाधुमें ॥ ३ ॥

तदनन्तरं क्षुद्रबुद्धिरुवाच। रे वणिगधम! किं दृष्टवानसि यदद्यपर्यंतं मम भरणं कृतमेव भवता तदधुना न करिष्यसि। किमहं तव धनं न जानामि। किं वा राजा मां न पृच्छति। ततो यदि मह्यं न दास्यसि तदा राज्ञे दास्यसि। तेन वचसा परमत्रस्तः स वणिक् क्षुद्रबुद्धेः समाराधनेच्छया किमपि धनं ददानः क्रमेण क्षीणधनो बभूव। तं क्षीणधनं चिन्तापरं च दृष्ट्वा वणिग्वधूरुवाच। नाथ! क्षुद्रबुद्धिर्ब्राह्मणो भवता संवर्द्धितो लब्धवैभवोऽपि भवते किमपि न ददाति। किं च सर्वं भवत एव गृह्णाति। किमर्थमस्मै धनं दीयते। वणिगुवाच। प्रिये दुर्जनोऽयम्। यदस्मै न दातव्यं तदा राजपैशुन्यं करिष्यति। तेन भयेन दीयते। तथा हि-

इसके उपरान्त क्षुद्र बुद्धिने कहा कि, रे अधम बनियाँ ! तूने क्या देखा है कि तूने अबलों मेरा पालन किया पर अब न करेगा. क्या मैं तेरे धनसे परिचित न हूँ ? क्या तू समझता है कि राजा मुझसे तेरे धनके बारेमें कभी पूछताही नहीं, अच्छा. अब मुझे न कुछ देगा तो मत दे, राजाको तो नाकदर कर देनाही पडेगा. यह सुनकर वह वणिक् बहुत भयभीत हुआ क्षुद्र बुद्धिको सन्तुष्ट रखनेके लिये कुछ २ देताही रहा. निरन्तर दान देनेसे बनियाँ सोमदत्त खुद निर्द्धन होगया. यह देख उसकी पत्नीने उससे कहा कि हे नाथ ! आपने इस क्षुद्रबुद्धि द्विजकुमारको अपने अर्थसे पाला तथा शिक्षितभी किया. वह इस समय खुद

बडा समृद्धिशाली होगया है तथापि वह आपको कुछ नहीं देता प्रत्युत आपसेही कुछ २ लिया करता है. तो क्या आपको यह उचित है कि उसे कुछ दें ? यह सुन बनियेंने उत्तर दिया कि हे प्रिये ! वह दुर्जन है. यदि उसे धन न दूं तो वह राजाके निकट पैशुन्य करनेसे कदापि न चूकेगा. इसी भयसे उसे धन देना पडता है, इसी लिये कहाभी हैः-

पिशाचाः पिशुनाः श्वानो लोभान्धाः सुतरां त्रयः ।
किंचिद्दत्त्वा निवार्यन्ते कलया प्राणकाम्यया ॥ ४ ॥

पिशुन कुक्कुर और पिशाच ये सहज हैं अति अन्ध प्रलोभसे ।
स्व असुरक्षण हेतु मनुष्य दे कुछ इन्हें करते ध्रुव शान्त हैं ॥ ४ ॥

वणिग्वधूरुवाच । नाथ ! स क्षुद्रबुद्धिर्ब्राह्मणो यदि पिशुनस्तदा भवता कथं संवर्धितः । वणिगुवाच । प्रथमं न परिचितः । यतः-

यह सुनकर पत्नीने फिर कहा कि हे नाथ ! यदि यह क्षुद्रबुद्धि दुर्जन है तो आपने इसे बढायाही क्यों ? बनियाँ--इसलिये कि मैंने पहले इसे न पहचाना. क्योंकिः-

धातुरेवापराधोऽयं यच्छीलपरिचायिका ।
दुर्जनस्य मुखे लक्ष्मरेखा काचिन्न निर्मिता ॥ ५ ॥

अवशही विधिका यह दोष है कि उसने मुखपै खल लोगके ।
नाहिं किया कुछ लक्षण हे प्रिये ! प्रकट जो करता खल शीलको५॥

अपि च-

गुप्ताकारोऽपकारेण दुर्जनः परिचीयते ।
तदा कृतापकर्माणं परिचित्यापि किं फलम् ॥ ६ ॥

औरभीः--

यद्यपि दुर्जन रूप छुपा जगमें रहता है
अपकृतिसे परको तथापि जाना जाता है ।
दुर्जनको तब जान भला क्या है फल होता
करके परापकार सफल जब है वह होता ॥ ६ ॥

वणिग्वधूरुवाच । नाथ परिचितेः फलं यदधुनाऽपि स प्रतिक्रियते । वणिगुवाच । प्रवृद्धो व्याधिः कथमक्रमेण परिहर्तुं शक्यते ।

तेनास्मै किमपि दत्त्वा कालातिक्रमः क्रियत एव । वणिग्वधूरुवाच । नात्र दानं प्रतिक्रिया । यतः–

यह सुन पत्नी–हे प्रिय ! इसकी परिचितिका फल तो तभी फलित होसकता है यादि आप इसकी प्रति क्रिया करनेके लिये चेष्टा युक्त होंय. यह सुन बनियाँ--हे प्रिये ! जो रोग प्रवृद्ध होगया है उसका नाश एका-एक कैसे होसकता है. इसलिये इसे कुछ देता हुआ कालका अतियापन करता आरहा हूँ. पत्नी--हे नाथ ! दानके द्वारा इस असाध्य व्याधिकी शान्ति हो, यह कदापि सम्भव नहीं. क्योंकिः -

न दानेन न च प्रेम्णा कथंचिदपि तुष्यति ।
प्रसीदति पराभूतः खलः प्रत्यपकारतः ॥ ७ ॥

न प्रेमसे नाथ ! तथा न दानसे सन्तुष्ट होते ध्रुव दुष्ट मानव !
परन्तु होते प्रिय ! तुष्ट हैं तब हैं हारते प्रत्यपकारसे जब ॥ ७ ॥

प्रीत्या जानात्यसामर्थ्यं दानेनायाचते मुहुः ।
खलः प्रत्यपकारेण वशमायाति मित्रवत् ॥ ८ ॥

औरभीः-

जो प्रेमसे कुजनको जन मानता है
सामर्थ्य हीन उसको वह जानता है ।
पाके सुदान फिरभी वह जाचता है
होता सुमित्र निभ केवल हानिसे है ॥ ८ ॥

वणिगुवाच । अहं कुटुंबी लज्जापरतंत्रः । स निस्त्रपः । कथं मम शक्त्या पराभूतो भविष्यति ! कथं तस्य पराभवः । स एवास्मान् पराभवति । वणिग्वधूरुवाच । दानेन कियन्तं कालं तोषणीयः ! तदयमुपायः प्रतिभासते चेतसि यदियं कथा राज्ञे निवेद्यते । यतः–

बनियाँ--हे प्रिये ! मैं कुटुम्बवान् तथा लज्जापरतन्त्र हूं और वह लज्जासे हीन है फिर बताओ शक्तिके द्वारा मैं उसे कैसे हरा सकता हूँ, उसकी पराभूतिकी बात तो एक ओर रहने दो वही मुझको हराता चला आ रहा है. यह सुनकर पत्नी फिर बोली कि, हे स्वामी ! दान देकर उसे

आप कबतक सन्तुष्ट रख सकेंगे, सो यहां मुझे एक अच्छा उपाय सूझता है वह यह है कि, यह वृत्तान्त राजाके कानतक पहुँचा देना चाहिये क्योंकिः--

सेना बलं नरेन्द्राणां कुवृत्तिः कुधियां बलम् ।
दैन्यं बलं दरिद्राणां बलं साधोर्यथार्थता ॥ ९ ॥

नृपतिका बल है बल सर्वदा कुमतिकी प्रिय ! शक्ति कुवृत्ति है ।
अधनका बल है फिर दीनता सुजनका बल नाथ ! यथार्थता ॥ ९ ॥

ततो यथार्थनिवेदनेन राजैवात्र प्रतिक्रियाकर्त्ता भविष्यति । वणिगुवाच । आः शान्तं पापम् । मयाऽपि राजपैशुन्यं कर्त्तव्यम् । तर्हि समतैव स्यात् । स्वव्यापारेणैवायं विनष्टो भविष्यति । यतः संप्रति राजपुरस्कारमासाद्य मंत्रिणः पैशुन्यं कुरुते । वणिग्वधू-रुवाच । किं तत्र निमित्तम् । वणिगुवाच । मुखकंडूमात्रम् । यतः-

सो यदि आप इस खलका सच सच हाल राजासे सूचित करदें तो मुझे पूरा विश्वास है कि खुद राजाही इस खलकी खलताका बदला लिये विना न रहेगा, यह सुनकर बनियाँ बोला-हे प्रिये ! क्या तू पैशुन्य करनेकी बात चला मुझको पाप लगाना चाहती है ! भला बता तो यदि मैं भी उसी खलके समान पैशुन्य करूं तो उसमें ·तथा मुझमें भेद ही क्या रहा ? सो ऐसी पापकी चर्चा फिर कभी न करना, तू विश्वास रख कि वह खल अपने व्यापारसेही विनष्ट हो जायगा, क्योंकि वह इस वक्त राजासे पुरस्कार प्राप्त करके गर्वसे राजाके यहां मंत्रियोंकी चुगली किया करता है. यह सुन पत्नी-हे नाथ । इसमें कारण क्या है कि वह मंत्रियोंका पैशुन्य किया करता है, बनियाँ-हे प्रिये ! इसका कारण है उस खलके मुखका कंड मात्र. क्यों किः-

परेषां प्रीतिमालोक्य खलस्य शिरसि व्यथा ।
स्वेनैवाशयदोषेण द्वेषिणो जगतामपि ॥ १० ॥

परकी लखके प्रीतिको सर्वदाही खलके शिरपै खूब होती व्यथा है ।
निजकी मतिके दोषसेही कुलोक बनते द्वेषी सर्वदा सर्वके हैं ॥ १० ॥

वणिग्वधूरुवाच । किं तत्पैशुन्यम् । वणिगुवाच । राजानं वदति । देव ! मंत्री राक्षसस्तव हितं नेच्छति । ततो राजाऽब्रवीत् ।

विप्र ! मम गुरुराचार्यश्चाणक्यो मदीयं राज्यमिदं मां च मंत्रिराक्षसस्य हस्ते महाप्रणिधानेन समर्पितवान् । यदा च मंत्रितां स्वीकृत्यानेन मम खड्गो गृहीतस्तदाऽऽरभ्याचार्यचाणक्यो मां प्रति निश्चितो बभूव । ततश्चाणक्यबुद्धिपरिच्छिन्नेऽर्थे का व्यभिचारशंका। तथाहि-

यह सुन कर पत्नी -हे स्वामी ! वह उनकी क्या चुगली करता है ? बनियाँ-वह राजा चन्द्रगुप्तसे कहता कि, हे देव ! मंत्री राक्षस आपकी भलाई नहीं चाहता है, यह सुन राजा चन्द्रगुप्तने कहा कि हे विप्र ! यदि मंत्री राक्षस मेरा हित चाहनेवाला न रहता तो मेरे गुरु आचार्य चाणक्य मुझको तथा मेरे सारे राज्यको इसे सुपुर्द न किये होते, मैं देख रहा हूँ कि जबसे मंत्री राक्षसने मेरा खड्ग ग्रहण किया है तबसे आचार्य चाणक्य मेरे प्रति बिल्कुल निश्चिन्तसे हो गये हैं, सो जो बात आचार्य चाणक्यकी निशित बुद्धिसे निश्चिन्त है. फिर उसके बारेमें व्यभिचारकी शंकाही क्या ? देखोः--

नीत्या पर्वतकेश्वरोऽपि निहतो निर्धूय नंदान्नव
ज्ञात्वाऽस्मद्विषकन्यकाप्रभृतयो येनापदो वारिताः ।
राज्यश्रीर्मयि निश्चला च बिहिता तेनाधुना धीमता
चाणक्येन कृतेऽपि कर्मणि कुतः स्याद्विक्रियाया भ्रमः॥११॥

नव नन्दोंको मारके जो थे अति विख्यात ।
पर्वतकेश्वरको किया जिसने नयसे घात ॥
जिसने नयसे घात किया पर्वतकेश्वरको ।
मुक्त किया विष कन्यकादि विपदोंसे मुझको ॥
राज्य अचंचल दिया तथा जिस बुधने मुझको
हो ऐसे चाणक्य कार्यमें त्रुटि भ्रम किसको ॥ ११ ॥

वधूरुवाच । साधु चंद्रगुप्त महाराज साधु । यः कुपुरुषसंसर्गेणाभिजात्यं नातिक्रमते स सत्प्रभुरेवास्ति । सर्वज्ञे स्वामिनि किं कर्णगतेन द्विजिह्वेन । ततः किं कृतं क्षुद्रबुद्धिना । वणिगुवाच । स निस्त्रपस्तथाऽपि तयोरभेद्येऽपि प्रेम्णि भेदनिमित्तं पद्यत्रयं पठितवान् । तद्यथा-

यह सुनकर पत्नी -वाह रे चन्द्रगुप्त राजा वाह, सच मुचमें तू बडा सच्चा प्रभु है. जो इस लोकमें दुर्जनोंकी संसर्ग वागुरामें पडकरभी अपना आभिजात्य नहीं त्यागते वेही सत्प्रभु हैं, ठीक है जब स्वामी सर्वज्ञ है तो वहां कर्णेजपोंकी क्या चल सकती है, अच्छा तो बताइये इसके बाद क्षुद्रबुद्धिने क्या किया ? बनियाँ–उसने क्या किया उसने स्वभावहीसे निर्लज्ज होनेके कारण राजा चन्द्रगुप्तसे धिक्कित होने परभी मंत्री तथा राजाके अभेद्य प्रेममें भेद लगानेके लिये निम्न लिखित तीन पद्य पढेः–

स्वकार्याणि स्वयं राजा यो मोहान्नावलोकते ।
चौरा निद्रां गतस्येव भजन्तेऽस्य धनं परे ॥ १२ ॥

अज्ञानतासे निज कार्यको नहीं जो देखता है खुद भूमि पालक !
है अन्य लेते उस भूपका धन है स्तेन लेता धन सुप्तका यथा ॥ १२ ॥

अपि च–

अस्त्यमात्यसहस्रोऽपि सेनाकोटिवृतोऽपि च ।
एकाकी खलु भूपालः स्वयं स्वहितमिच्छति ॥ १३ ॥

औरभीः–

नृपति है युत मंत्रि सहस्रसे यदि तथा युत है बल कोटिसे ।
तदपि है वह भूपति सोचता स्वहितको खुद संतत एकही ॥ १३ ॥

अन्यच्च–

नित्यं विनयतः सर्वान्सर्वानुत्सृज्य गच्छतः ।
कः सुहृत् सहजो राज्ञः सर्वे कारणबान्धवाः ॥ १४ ॥

औरभीः–

विनय जो करता सबका सदा फिर तथा मरता सब छोडके ।
तदपि भूपतिका हित कौन है सकल हैं बनते हित हेतुसे ॥ १४ ॥

इत्यादिबहुविधं कर्णेजपवचनं वदन् स राज्ञा चद्रगुप्तेनावगतः श्रावितश्च–

क्षुद्र बुद्धि इस प्रकार मंत्रीकी पिशुनता करने लगा. राजा चन्द्रगुप्त इस पिशुनके स्वभावसे परिचित हो गया और उसने उसको सुनाता हुआ निम्न लिखित पद्य पढाः–

कार्यभारं वहेन्मन्त्री राजा राज्यसुखं भजेत् ।
भारं वहति भूपाले सुखभाजनमस्तु कः ॥ १९ ॥

मंत्रीकेही ऊपर रहना चाहिये कार्यभार
राजा तो केवल सतत है राज्य सौख्याधिकारी ।
राजा राजन् ! यदि स्वकृतियोंको करेगा स्वय ही
तो भोगेगा भुवनतलमें सौख्यको कौन प्राणी ॥ १९ ॥

ततस्तत्र भग्नोद्यमो मंत्रिणं राक्षसमुपसृत्याह । मंत्रिराज ! चंद्रगुप्तस्त्वां हितकारिणं न जानाति । वधूरुवाच । ततो मंत्री किमुक्तवान् । वणिगुवाच । तस्य दुर्जनस्य वचसा वृषलराज्ञि क्षणं संदिग्धहृदयो बभूव । वणिग्वधूरुवाच । कुटिलाशया एव मंत्रिणः खलवचसाऽपि संदेहमेवं कुर्वंति। नाथ ! वार्त्तेयं सुगुप्ता न स्थास्यति । मंत्रिणा विदितेऽस्मिन् वृत्तांते क्षुद्रबुद्धिसंवर्द्धकतया भवानप्यभियोज्यो भविता । तदनागतावेक्षां करोतु भवान् । क्षुद्रबुद्धेः प्राप्तं स्वकीयपराभवं मंत्रिणे निवेदयतु । ततो मंत्री क्षुद्रबुद्धिं यथावत् प्रजानातु । इति सकलं परस्परं परामृश्य वणिग्दंपतीभ्यां किंचिदुपायनमुपानीय स्वपराभववार्त्ता मंत्रिराक्षसे निवेदिता । राक्षसस्तु क्षुद्रबुद्धौ जातवितर्क एव वणिग्वार्त्तया परमतुष्टोऽब्रवीत् । रे सोमदत्त ! यथा त्वया क्षुद्रबुद्धेः संवर्धनं कृतं तथा सकलमहं जानामि । यस्तवैव नास्ति स कथमन्यस्य हितो भविता । अत एव मूलहीनं राजदुर्नयं कथयति । ततस्तं वणिजमादाय स मंत्री सकलां वार्त्तां राज्ञे निवेदयामास । राजाऽपि तच्छ्रुत्वा क्षुद्रबुद्धेः प्रथमजल्पितं सर्वं मंत्रिणे कथयामास । ततः सकरतालं तावूचतुः । अहो दुर्जनस्य प्रावीण्यम् यदावयोरपि सौहृदभेदं चिकीर्षति । मंत्री ब्रूते । यः पितृकल्पस्य पोष्टुरप्यनिष्टमाचरति सोमदत्तस्य स किं न कुर्यात्। अनेन व्यापारेण नीचजोऽयमिति लक्ष्यते । तथा हि—

इस प्रकार जब क्षुद्रबुद्धिका उद्यम फलीभूत नहीं हुआ. तब वह मंत्री राक्षसके पास गया. और जाकर कहा कि हे मंत्रीराज ! राजा

चन्द्रगुप्त आपको अपना हितकारी नहीं जानता. यह सुनकर बनियेंकी पत्नीने बनियेंसे पूछा कि हे स्वामी ! इस पर मंत्री राक्षसने क्या जवाब दिया ? बनियाँ--उस दुर्जन क्षुद्रबुद्धिका वचन सुन कर मंत्री राक्षसभी क्षणभरके लिये वृषल राजा चन्द्रगुप्तके विषयमें आपन्नशङ्क हो गया. वणिकूवधू--हे स्वामी ! जो मंत्री कुटिलाशयके होते हैं वे कुटिलोंके इस प्रकारके वचनसेभी ऐसी शंका किया करते हैं सो हे नाथ ! मेरा तर्क तो यहां यह है कि यह वार्ता गुप्त न रह सकेगी. सो यदि कहीं यह हाल मंत्रीको ज्ञातहुआ तो विश्वास रखिये कि आपभी अभियुक्त हुए विना न रहेंगे क्यों कि आप क्षुद्रबुद्धिके पोष्टा हैं, यह सबको ज्ञात है, इस लिये आपको अनागतावेक्षा अवश्य करना चाहिये क्षुद्रबुद्धि कृत स्वपराभव प्रकट करनेका आपने यह अच्छा अवसर प्राप्त किया है इस लिये मेरी राय तो यह है कि यह हाल इसी दम मंत्री राक्षससे कह देना चाहिये. जिससे वह उस पिशुनके स्वभावसे अच्छी तरह परिचित हो जावे। इस प्रकार परस्पर परामर्श करके स्त्री पुरुष दोनोंने साथमें कुछ उपायन लेकर मंत्री राक्षससे भेंट की और सब हाल कह दिया जिस प्रकार कि क्षुद्रबुद्धि उनको पराभव दिया करता था. इधर मंत्री राक्षस तो क्षुद्रबुद्धिके विषयमें सन्देह युक्त था ही. किन्तु जब उसने उस बनियेंका बचन सुना तब बडा प्रसन्न हुआ और उससे कहने लगा कि रे सोमदत्त ! मुझे एक एक बात ज्ञात है जिस प्रकार कि तूने क्षुद्रबुद्धिका सम्वर्द्धन किया है फिर यदि वह नालायक तेरा ही हितकारी न हुआ तो दूसरेका क्या होगा? इसी लिये तो कहागया है कि राजाका दुर्नय विना मूलके ही हुआ करता है। इसके उपरान्त मंत्री राक्षसने उस बनियेंके साथ राजा चन्द्रगुप्तके निकट जाकर उससे सब हाल कह सुनाया, उधर राजा चन्द्रगुप्तने भी क्षुद्र-बुद्धिका सब वृत्तान्त मंत्रीसे कह दिया जिस प्रकार कि उसने मंत्रीकी चुगली की थी. दोनों ताली ठोक २ कर हँसने लगे और परस्पर कहने लगे कि भला देखो तो इस दुर्जनका प्रावीण्य जो कि हम दोनोंके सुदृढ सौहृद्यमें भी भेद लगानेकी चिकीर्षा रखता है मंत्री--हे राजन् जो पितृकल्प पालन कर्ता सोमदत्तकी बुराई करनेमें संलग्न रहा करता है वह क्या अकार्य नहीं कर सकता इस पिशुनके ऐसे व्यापारसे यह जान पडता है कि यह नीचज है. देखियेः--

हीने कुले प्रजातो भवति कुधीः कातरो भवति ।
उपकारिण्यपकर्त्ता न भवति भुवि नीचजादन्यः ॥१६॥

नीच वंशमें जन्म लिया जिस मानवने है
होती कुमति तथा कातरता ध्रुव उसमें है ।
करता वह अपकार सदा उपकारीका है
नीचजसे भी नीच जगतमें मनुज कहां है ॥ १६ ॥

ततो राज्ञा वणिजो धनं वणिजे दापयित्वाऽवशिष्टं स्वयमादाय स क्षुद्रबुद्धिः सागरपारं निस्सारितः । श्लोकः–

इसके उपरान्त राजा चन्द्रगुप्तने बनियेंके धन बनियेंको दिला कर तथा उसक अवशिष्ट धन खद ले उसे समुद्रके उस पार निकाल दिया. यहां कविकी उक्तिः--

भ्रमात्प्रमादादपि दैवयोगान्माभूत्सतां दुष्टजनैः प्रसंगः ।
यदुद्भवानां किलकिल्बिषानां प्राणांतिको विस्मरणप्रकारः १७

इति पुरुषपरीक्षायां पिशुनकथा ॥

दैव योगसे भ्रमसे जगमें प्रमादसे भी
दुष्ट जनोंका संग सुजनको हो न कभी भी ।
जिनकी संगतिसे महान् अघ पैदा होता
प्राण जाय विस्मरण परन्तु न जिसका होता ॥ १७ ॥

इति पिशुनकथा समाप्त ॥

---

१२ जन्मबर्बरकथा ।

सुबुद्धिः पुरुषश्रेष्ठः कुबुद्धिः पुरुषाधमः ।
अबुद्धिः पशुसामान्यो नोत्तमो नाधमश्च सः ॥ १ ॥

पुरुषमें नर श्रेष्ठ सुबुद्धि है अधम है वह जो सु कुबुद्धि है ।
पशु समान अबुद्धि मनुष्य है अधम उत्तम जो नहिं एक भी ॥ १ ॥

तथा हि–क्षुधा निद्रा भयं क्रोधः प्रमादो मैथुनं घृणा ।
पशुसाधारणा धर्माः संभवन्त्यधियामपि ॥ २ ॥

क्योंकि:--

शयन भूँख तथा भय क्रोध ओ रति प्रमाद घृणादिक धर्म हैं ।
अमतिमें रहते नृप ! सर्वदा सकल ये रहते पशुमें यथा ॥ २ ॥

अबुद्धिर्द्विविधः प्रोक्तो जन्मसंसर्गभेदतः ।
तावेव सर्वकर्मज्ञौ लोके बर्बरतां गतौ ॥ ३ ॥

होता कोई जन्मसे ही कुबुद्धि कोई होता संगसे है कुबुद्धि ।
सब कार्योंको जान ये दो कुबुद्धि ही बर्बरताको यहां प्राप्त होते ॥३॥

बर्बरस्य कथां श्रुत्वा हसंतः सकुतूहलम् ।
हेयत्वेनाधिगच्छंति शिशवस्तस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥

सुनके बर्बरकी कथा हो समुत्क हँसने लगते हैं सदा डिंभ वर्ग ।
इच्छासे ही त्यागने की पुनः ये इसकी सुनते हैं कथा सर्वदा ही ॥४॥

तयोः प्रथमं जन्मबर्बरकथा प्रस्तूयते-

जन्मबर्बर तथा संगबर्बरकी कथाओंमें पहले जन्मबर्बरकी कथा शुरू की जाती है:--

आसीत् कौशाम्बी नाम नगरी । तस्यां देवधरनामा गणकः प्रतिवसति । तस्य शान्तिधरो नाम पुत्रो बभूव । स च जन्मबर्बरः पित्रा गुणिना पुत्रमनोरथेन पाठ्यमानः पदार्थं नाधिगच्छति । तथा हि-

कौशांबी नामका एक नगर था, उसमें देवधर नामका एक गणक रहता था, उसको एकही पुत्र था जिसका नाम था शान्तिधर. शान्तिधर जन्मसे ही बर्बर था, इसके गुणी पिताने 'मेरा पुत्र विद्वान् हो' इस मनोरथसे बहुत कुछ प्रयत्न किया किन्तु सब व्यर्थ. क्योंकि शान्तिधरकी बुद्धि ऐसी कुंठित थी कि वह एक भी पदार्थ समझ न सकता था, कहा भी है:--

पिता ददाति पुत्रेभ्यः सर्वस्वं परितोषवान् ।
न तु भाग्यं च बुद्धिश्च दातुं तेनापि शक्यते ॥ ५ ॥

निज सर्वस्वोंको पिता हर्षसे ही दे देते हैं स्वात्मजोंको नृपाल !
पर ये सकते हैं नहीं दे कभी भी निजपुत्रोंको भाग्य औ बुद्धिमत्ता ५॥

तथाऽपि लोकद्वयप्रत्याशांकुरः सकलमनोरथस्थानमेक एव स तस्य पुत्रस्तेनासौ कर्मांतरपराङ्मुखः प्रतिक्षणं तस्येच्छयाऽबहितः पाठयति । ततो महता समयेन महता च पितुः श्रमेण स शुकवदभ्यस्तशास्त्रो बभूव । तमधिगतशास्त्रं कृत्वा गणकश्चिंतयामास यदेनं पुत्रं राज्ञः परिचितगुणं करोमि ।

तथापि इस लोक तथा पर लोकमें आशाका अंकुर तथा सकल मनोरथका स्थान एक ही पुत्र है. ऐसा जान कर देवधर कर्मान्तरसे पराङ्मुख हो गया और अपने प्रिय पुत्रकी इच्छाके अनुसार प्रतिक्षण उसे पढाता रहा, पिताके अनवरत परिश्रमसे शान्तिधरने तोतेके समान शास्त्रको रट लिया ऐसा जान गणकने अपने मनमें सोचा कि यदि मैं इसे राजाके यहां ले जाता तो बहुत अच्छा होता क्योंकि विना गये राजा कैसे जान सकता है की यह कितना बडा विद्वान् है. खैर–

ततः सगणको राज्ञे तं पुत्रमुपनिनाय । तं पुरोवर्त्तिनं दृष्ट्वा राजोवाच । अये देवधर गणक ! किमधीतमनेन पुत्रेण । गणक उवाच । देव गणितशास्त्रमधीतमनेन, प्रश्नं च जानाति । ततोऽद्य देवेन पृष्टो यदि प्रश्नं विज्ञास्यति तदयमध्ययनफलमनुभविता । तदनंतरं सकौतुको राजा सुवर्णांगुलीयकमेकं मुष्टौ कृत्वा तमुवाच । अये गणककुमार ! जानीहि तावत् किं वस्तु मम मुष्टौ वर्त्तते । ततो गणकपुत्रः कठिनीमादाय शास्त्रानुसारेण गणयामास । गणनया च विदित्वाऽब्रवीत् । देव ! न जीवो न मूलम्, किंतु धातुरूपं वस्तु देवस्य मुष्टौ तिष्ठति । राजोवाच । संवादिनी वाक् । गणकपुत्रः पुनरुवाच । मंडलाकृति वस्तु विद्यते । राजोवाच । समुदितं वचः । गणकपुत्रः पुनरब्रवीत् । गुरु द्रव्यं मध्ये शून्यं च भवति । राजोवाच । साधु गणककुमार साधु भद्रं जानासि । कथय कथय । ततो राजप्रशंसया जातरभसः पुलकितबाहुमूलस्त्वरितं कथयामीति गणनामपहाय निजोहेन कथयामास । देव पाषाणघरट्टकमंडलं विद्यते देवस्य मुष्टिगर्भे ।

राजा विहस्योवाच । अये गणक ! तव पुत्रः शास्त्रे कृताभ्यासोऽस्ति किंत्वबुद्धिः । यावद्दूरं शास्त्रानुसारिण्या गणनया कथितं तावत्संवाद एव अन्यच्च स्वकीयोहेन यदुक्तं तत्र विसंवादो वृत्तः । किमधिकम् । अरे जन्मान्ध गणकपुत्र त्वं न जानास्येव घरट्टकमंडलं महत् पाषाणमयं मनुष्यमुष्टिगर्भे संभवति । तत्कथमव्याप्तिमूलक एवायं तर्कस्तव चेतसि पदं लेभे । तस्मादवश्यं बुद्धिहीनोऽसीत्यभिधाय राजा तस्मै किंचिद्वस्तु दत्त्वा तमाज्ञप्तवान् । तथा हि–

ऐसा सोच कर वह शान्तिधरको राजाके यहां ले गया शान्तिधरको देखकर राजाने पूँछा–हे गणक ! तुम्हारे इस पुत्रने क्या पढा है ? गणक– हे देव ! इसने गणित शास्त्रका अध्ययन किया है, यह प्रश्नभी जानता है, सो यदि कहीं इसने देवके प्रश्नका उत्तर किया तो जानूंगा कि इसका अध्ययन सफल है, यह सुनकर राजाने तमासा देखनेके अभिप्रायसे मूठीमें एक सोनेकी मुद्रिका लेकर शान्तिधरसे पूछा कि हे गणक कुमार ! जानो मेरी मूठीमें क्या है ? यह सुन गणक शान्तिधरने हाथमें चाकमिट्टी लेकर शास्त्रानुसार, गणित करना शुरू किया और गणितके द्वारा जान कर कहा कि हे देव ! आपकी मूठीमें न तो कोई जीव है, और न मूल, किन्तु कोई धातुकी बनी हुई वस्तु है, यह सुन राजा– सच है, आगे चलो, यह सुन गणक–अच्छा वह वस्तु मण्डलाकार है यह सुन राजा–बहुत ठीक. आगे बढो, गणकने फिर कहा वह द्रव्य गुरु है, उसके मध्यमें शून्य है, यह सुनकर राजाने कहा वाह गणक कुमार वाह सचमुचमें तुम बडे ही प्रवीणगणक हो, अच्छा कहो कहो, बस अब क्या था प्रशंसा सुनते ही उस गणकको बडा हर्ष हुआ बाहुमूल रोमांचित हो गया, अब प्रश्नका उत्तर जल्दी करूं इस अभिप्रायसे गणना करना त्याग दिया, और यों हीं अपने ऊहसे प्रश्नका उत्तर करने लगा, कुछ देरके तर्क वितर्कके पश्चात् वह गणक कहता है क्या कि हे देव ! अब मुझे अच्छीतरह ज्ञात हो गया जो कि आपकी मूठीके भीतर है, यह सुन राजा–अच्छा बताओ वह क्या है ? गणक–हे देव ! आपकी मूठीमें पत्थरकी चक्की है, यह सुनते ही राजाको बडी हंसी लगी, वह बोला कि हे गणक ! इसमें जराभी सन्देह नहीं, कि तुम्हारे पुत्रने

विद्याका अध्ययन अच्छी तरहसे किया है, किन्तु यह अबुद्धि है, इसने शास्त्रके अनुसार गणना करके जो कुछ कहा सो तो सच हुआ, परन्तु जो अपने ऊहसे कहा वह सच न हुआ, अरे जन्मान्ध गणक पुत्र ! तू यह भी नहीं जानता कि पाषाणमय इतना बडा घरट्टक मंडले मनुष्यकी मूठीमें कैसे समा सकता है, भला बतला तो अव्याप्ति मूलक तर्कने तेरे चित्तमें कैसे स्थान बना लिया, अब इससे जान पडता है कि तू अवश्य बुद्धि हीन है, ऐसा कहकर राजाने उसे कुछ दिया और एक पद्य पढा वह यह है:—

गुरुं निषेवन्नपि जीवनाय
भ्रमन्धरित्र्यामपि यावदंबुधि ।
अधीत्य शास्त्राण्यपि चिन्तयन्मुहु-
र्धिया विहीनो न हि याति धन्यताम् ॥ ६ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां जन्मबर्बरकथा ।

गुरुकी सेवा सदा मनुज कोई करता हो
जीवनार्थ भूपै समुद्रतक फिर फिरता हो ।
पढके शास्त्र सदैव उन्हें चिन्तन भी करता
पर मतिसे हो हीन कृतार्थ न वह है बनता ॥ ६ ॥

इति जन्मबर्बरकथा समाप्त ॥

१४ संसर्गबर्बरकथा ।

हीयते हीनसंसर्गाद्बुद्धिमानपि मानवः ।
गवां संसर्गमात्रेण गोपो भवति बालिशः ॥ १ ॥

अधम मानवके ध्रुव संगसे अधम है बनता मतिमान भी ।
जगतमें कर संगति धेनुकी अबुध क्या बनता नहिं गोप है ? ॥ १ ॥

तद्यथा—आसीत् पुरा गंडकीसन्निधाने प्रचुरतृणाङ्कुरा काऽपि महती स्थली । तस्यां गोरक्षणोपजीविनो बहवो गोपाः सपरिवारा वसंति।तेषामेको गोपः शलभनामा तत्रैव जातः तत्रैव वर्द्धमानोऽदृष्ट-पुरुषव्यवहार एव युवा बभूव । एकदा तस्य मातरं जरतीं गोपीं

रुजा पीडितां दृष्ट्वा गोपवृद्धा ऊचुः। अरे शलभ ! तव माता जरती त्वदेकगतिः कथं दुर्बला। कथमेनां न पुष्णासि। पोषणसाध्यं हि वृद्धानां शरीरधारणम्। तस्याः पोषणं सावधानतया कुरु। शलभस्तु मातृस्नेहपरवशो गोपोषणपदार्थव्युत्पन्नो बालिश एव गोपोषणपरिपाट्या गोपुच्छलोमचित्रितदाम्ना तां जरतीं मातरं गले बध्वा करीषाग्निधूमं बहुलं कुर्वाणो घासकवलप्रदानेन तस्याः पोषणपरायणोबभूव। सा च तन्माता वराकी जरती तथा पराभवमनुभवंती कंठगतप्राणा कृतार्त्तनादा त्रायन्तां मां गोपास्त्रायन्तामित्युच्चैरुवाच। ततः प्रतिवेशिगोपैरागत्य सा बंधनाद्विमुक्ता तत्पुत्रश्च निर्भर्त्सितः। तथा हि—

इसकी कथा इस प्रकार हैः-- गण्डकी नदीके किनारे एक बडा भारी चट्टान था, वह घासों तथा अंकुरोंसे हमेशा हराभरा रहा करता था, वहां बहुतसे गोप गण गो रक्षासे कुटुम्बोंके समेत अपना निर्वाह किया करते थे, उनके मध्य एक शलभ नामक अहीर था, जो कि वहां ही वनमें उत्पन्न हुआ और बढकर युवा भी वहां ही हुआ. यह तो वह जानते ही न था कि पुरुष व्यवहार किस चिडियाका नाम है, खैर एक समय इसकी वृद्धा माता मरणापन्न बीमार पडी, उसकी सेवा नदारत क्योंकि विचारा शलभको सेवा क्या वस्तु है? यह भी ज्ञान न था, जब पुरवासी गोपोंने देखा कि यह माताकी कुछ सेवाही नहीं करता तो उन्हें बडी दया आई, उन्होंने शलभसे कहा कि रे शलभ ! बता तेरी वृद्धा माता जिसकी एक मात्र गति तू ही है दिनों दिन क्षीणताको क्यों प्राप्त होती जाती है, तू इसका पालन क्यों नहीं करता, क्या तुझे यह ज्ञात नहीं कि वृद्धोंका शरीर पोषण साध्य है, सो उसका पोषण सावधानीके साथ कर, यह सुनते ही शलभका हृदय माताके स्नेहसे आर्द्र होगया वह गो पोषण परिपाटीमें तो निपुण थाही, इसलिये वह झट एक रस्सी ले आया जो कि गायकी पूँछके लोमसे चित्रित थी, और जिस प्रकार गायको रस्सीसे बांधते हैं उसी तरह उसने अपनी वृद्धा माताको गलेमें उसी रस्सीसे खूब कसकर बांधदिया और कंडेका धूआँ करके उसके सामने

हरी घास रखदी, मानो यही उसकी सेवार्थी अब घरमें धूआँ भरगया धूआँ लगनेसे विचारी वृद्धाकी आँखें फूटने लगी, बन्धनजन्य पीडा भी कम न थी, अब विचारी वृद्धाके प्राण कठगत हो गये, वह जोर २ से चिल्लाने लगी, उसका आर्तनाद सुनकर उसके प्रतिवेशी वर्ग तुरन्त दौडे और वहां आकर उस विचारी वृद्धाको बन्धनसे मुक्त करके उसके उसे निर्बुद्धि पुत्रको खूब धिक्कारा, और कहा किः-

अन्येषां साहचर्येण पिबत्यश्नाति गच्छति ।
क्वापि तिष्ठति निर्बुद्धिर्जीवनादृष्टजीवितः ॥ २ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां संसर्गबर्बरकथा ॥

इति समस्तप्रक्रियाविराजमानश्रीरूपनारायणमहाराजाधिराजश्रीमच्छिवसिंहदेवपादानामाज्ञया श्रीविद्यापतिविरचितायां पुरुषपरीक्षायां सुबुद्धिपरिचायको नाम द्वितीयः परिच्छेदः संपूर्णः ॥

साहचर्यसे अन्य जनोंके ही खाता है
पीता है निर्बुद्धि तथा जगमें चलता है ।
जहां जहां फिर इस जगतीमें वह जाता है
तहां तहां वह निज अदृष्टसेही जीता है ॥ २ ॥

इति चन्द्रकान्त पाठक काव्यतीर्थकृत पुरुषपरीक्षाभाषागद्यपद्ये द्वितीयःपरिच्छेदः समाप्तः ॥

सविद्यकथाः ।

अथ राजा पारावारः पृच्छति-मुने सुबुद्धिकथा तावदाकर्णिता । संप्रति सविद्यकथां श्रोतुमिच्छामि । मुनिः कथयति । तद्यथा-

इसके उपरान्त राजा पारावारने वसूक्ति नाम ऋषिसे कहा कि, हे मुनिराज ! मैं आपकी कृपासे सुबुद्धिकी कथा सुनचुका, अब सविद्यकी कथा सुननेकी मुझे बडी उत्कण्ठा है, यह सुन मुनिने कहा बहुत अच्छा मैं कहता हूँ. सुनोः-

१९ शस्त्रविद्यकथा ।

सविद्यस्य कथां श्रुत्वा विद्यासूत्कण्ठते मनः ।
विद्याभ्यासपरस्यापि यशः पुण्यं च जायते ॥ १ ॥

सुनता है जो कथा सविद्य मनुजकी सुन्दर
विद्याभ्यास लिये उत्सुक मन होता वह नर ।
विद्यामें संलग्न चित्त रहता फिर जो है
कीर्ति तथा पुण्योंका भागी बनता वह है ॥ १ ॥

सविद्यो विद्यया युक्तस्ताश्च विद्याश्चतुर्दश ।
प्राधान्यं च द्वयोस्तासां विद्यानां शस्त्रशास्त्रयोः ॥ २ ॥

जिनमें है विद्या सविद्य वे कहे गये हैं
इसके चौदह भेद बुधोंसे कहे गये हैं ।
नरपति ! इन चौदह प्रकारकी विद्या वरमें
शस्त्र शास्त्र ये दो प्रधान विद्या हैं जगमें ॥ २ ॥

उत्तमं हि धनं विद्या दीयमानं न हीयते ।
राजदायादचौराद्यैर्ग्रहीतुं नापि शक्यते ॥ ३ ॥

विद्या धनही अखिल धनोंसे उत्तम होता
देनेसेभी कभी नहीं जो कम है होता ।
नरपति औ दायाद तथा चौरादिक नरभी
हर सकते हैं इसे नरेश्वर ! जगमें न कभी ॥ ३ ॥

पुरुषं साहसक्लेशाद्यर्जनायासकारिणम् ।
लक्ष्मीर्विमुंचति क्वापि विद्याऽभ्यस्ता न मुंचति ॥ ४ ॥

कर श्रम साहस क्लेश अरजते नर हैं जिसको
वह लक्ष्मी भी कभी त्याग देती है उसको ।
विद्याका अभ्यास परन्तु किया जिसने है
उसको विद्या कभी नहीं तजती नृपते ! है ॥ ४ ॥

किं तस्य मानुषत्वेन बुद्धिर्यस्य न निर्मला ।
बुद्ध्याऽपि किं फलं तस्य येन विद्या न संचिता ॥ ५ ॥

उस मानुषके जन्मसे लाभ क्या है
नाहिं है जिसकी बुद्धि भूपाल ।
फल है उसकी बुद्धिका भी भला क्या
नाहिं है जिस नरने पढी स्वच्छ विद्या ॥ ५ ॥

सविद्यः पुरुषः श्रेष्ठो यत्र कुत्रापि तिष्ठति ।
तत्रैव भवति श्रीमान् पूजापात्रं च भूभुजाम् ॥ ६ ॥

वे मानव हैं श्रेष्ठ जो हैं सविद्य
यदि ये जाते हैं कहीं भूमिपाल ।
तो हो जाते शीघ्रही युक्त श्रीसे
फिरही जाते पूज्य हैं भूभुजोंके ॥ ६ ॥

आसङ्गो धृतिरभ्यासो देवताशक्तिरेव च ।
चत्वारो मुनिभिः प्रोक्ता विद्योपायाः पुरातनैः ॥ ७ ॥

अभ्याससे संगतिसे बुधोंकी सुधीरतासे बलसे सुरोंके ।
है लब्ध होती नरपाल ! विद्या ऐसा कहा वृद्ध मुनीशने है ॥७॥

पंकिले पामरग्रामे पुरे पिशुनसेविते ।
राष्ट्रे चाविज्ञभूपाले सविद्यस्त्रिषु सीदति ॥ ८ ॥

अविज्ञ पापी जिस ग्राममें है तथा पुरी जो खलसे भरी है ।
विमूढ राजा जिस राजमें है तहां सुधी भी दुख भोगते हैं ॥ ८ ॥

शस्त्रविद्यः शास्त्रविद्यो लोकविद्यस्तथैव च ।
सोपविद्यश्च चत्वारः सविद्याः परिकीर्तिताः ॥ ९ ॥

जो शस्त्र विद्य नर है फिर शास्त्र विद्य-
है लोक विद्य फिर जो नर सोपविद्य ।
संसारमें नरपते ! नरवृन्द वन्द्य !
हैं विज्ञलोग कहते उनको सविद्य ॥ ९ ॥

तत्रादौ शस्त्रविद्यकथा प्रस्तूयते । यतः-
इन चारोंमेंसे पहले शस्त्रविद्यकी कथा शुरू की जाती है. क्योंकिः-

शस्त्रविद्या स्वभावेन सर्वाभ्योऽस्ति महीयसी ।
शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्त्तते ॥ १० ॥

है शस्त्र विद्या सबसे महोत्तम स्वभावसेही जगमें नृपेश्वर ।
सुशस्त्रसे रक्षित राष्ट्र है जब विचारते हैं नर शास्त्रको तब॥१०॥

तद्यथा-

यः समस्तेषु शस्त्रेषु कृताभ्यासश्च तत्त्ववित् ।
शस्त्रविद्यः समाख्यातः सोऽस्त्रव्यापारपारगैः ॥ ११ ॥

शस्त्रविद्य वह हैः-

सकल शस्त्रमें किया परिश्रम जगमें जिसने
सब शास्त्रोंका तत्त्व तथा जाना है जिसने ।
शस्त्रविद्य कहते उस नरको हैं वे पण्डित
अस्त्र चलानेमें नरपालक ! जो हैं पण्डित ॥ ११ ॥

बभूव धारा नाम राजधानी । तत्र विवेकशर्मणः पुत्रो निर्विवेको नाम ब्राह्मणः प्रतिवसति । स च वेदाध्ययनपराङ्मुखः स्वाचारनिरपेक्षो व्याधप्रसंगेन मृगयारसिको बभूव । एकदा मातुरनुनयेन मृगवधार्थमरण्यं न जगाम । गृहांगणे निषण्णः पुरश्च देवालयकोटरे कूजतः पारावतान् दृष्ट्वा चिन्तयामास, यदिदं देवालयमारुह्य पारावतशावकान् पोथयामि ।

धारा नाम एक राजधानी थी. वहां विवेकशर्मा नामका एक विप्र रहता था, उसे एकही पुत्र था, जिसका नाम था निर्विवेकशर्मा. वह अपने भाग्यके दोषसे दुश्चरित्र निकला. वह वेदाध्ययनसे विमुख होनेके कारण अपने आचारसे परिभ्रष्ट हो गयाथा, वह हमेशा व्याधोंकी मण्डलीमें रहा करता था जिससे मृगयाका बडा रसिक बनगया था. एकदिनकी घटना ऐसी हुई वह मृगया खेलनेके लिये वनको चला, पर माताके विशेष अनुनयसे उस दिन वन जानेसे रुक गया, वह अपने गृहांगणमें बैठा था. इतनेमें उसकी दृष्टि एक देवालयके ऊपर पडी वहां बहुतसे कबूतरोंके बच्चे अपने २ कोटरमें कूज रहे थे. यह देख निर्विवेकशर्माके मनमें यह विचार आया कि आज मैं वनको तो गया नहीं. जिससे कुछ शिकार ले आता. खैर, आज ये ही कबूतरके बच्चे शिकार हैं सो यदि मैं इस देव मन्दिरके ऊपर चढूँ तो निःसन्देह ये कबूतरके शावक मुझे हाथ लग जायँगे.

ततः स ब्राह्मणः पारावतशावकार्थी देवालयमारुह्य कोटरे निक्षिप्तहस्तः कोटरस्थं सर्पं फणायां धृत्वा कपोतशावकभ्रमेणाचकर्ष । कोटरादाकृष्टेन तेन सरीसृपेण वेष्टितबाहुः परमत्रस्तश्चिंतयामास । यदहं सर्पमत्यजन्नेकहस्तावलंबेन देवालयादवरोढुं न शक्नोमि । त्यजंश्च सर्पेणैव दष्टव्योऽस्मि । तत्किमिदानीं करवाणि । तदनंतरं

संकटपतित उच्चैरार्त्तस्वरं चकार। त्रायन्तां मां लोका इति च प्रोवाच दुर्बुद्धिः। यतः–

ऐसा परामर्श करके वह विप्रकुमार झट मन्दिरके ऊपर चढ गया और ज्यों ही कोटरमें हाथ रक्खा कि त्यों ही एक विषधर काला सर्प जो कि उसी कोटरमें रहा करता था उसके हाथमें लिपट गया, यह देख वह द्विजकुमार बहुत डर गया और सोचने लगा कि यह तो किसी प्रकार संम्भव नहीं कि इस विषधर सर्पको छोडे विना मैं एक हाथके सहारेसे इस गगनस्पर्शी देव मन्दिरके ऊपरसे उतर सकूं, रही एक बात कि, इसे छोड दूं फिर उतरूँ पर यह भी भीति रहित उपाय नहीं क्योंकि छोडतेही यह काला सर्प विना काटे न रहेगा. ऐसे समय क्या करना उचित है? अब इसे कुछभी प्रयत्न न सूझा, यह निर्बुद्धि जोर जोरसे चिल्ला कर लोगोंसे अपनी रक्षाके लिये प्रार्थना करने लगा. कहा भी है:–

ज्ञातं दोषमनादृत्य व्यसनेषु प्रवर्त्तते।
कुधीः कातरतां याति लब्ध्वा व्यसनजं फलम्॥ १२॥

व्यसनोंमें जो जानके दूषणोंको उनमें फिरभी भूप! होते प्रवृत्त!
व्यसनोंका पा के फलोंको कुधी वे कातरताको प्राप्त होते अवश्य १२॥

तदीयमार्त्तरावमाकर्ण्य लोका वर्तुलीबभूवुः। पश्चात्तां कथां श्रुत्वा राजा भोजदेवोऽपि ब्राह्मणरक्षार्थी तत्राजगाम। तदनन्तरं सर्वैर्विचिन्त्यमानोऽपि ब्राह्मणरक्षाक्षमः शीघ्रतया कश्चिदुपायो न निर्द्धारितः। तस्योच्चतरस्याभ्रंलिहशिरसो देवालयशिखरस्यैकहस्तमात्रावलंबेन स्थितं संदिग्धं ब्राह्मणं दृष्ट्वा करुणार्द्रहृदयो भोजदेवो राजा सर्वानादिदेश। रे रे लोकाः! कश्चिदस्ति युष्माकं मध्ये य एनं ब्राह्मणं त्रायते सुवर्णलक्षं च गृह्णाति यस्य प्रयुक्त्या पराक्रमेण वा ब्राह्मणोऽयं कुशली देवालयादवतरति तस्मै निश्चितमहं लक्षं सुवर्णानि दास्ये। तदा कीर्त्तिसिंहनाम्ना केनापि राजपुत्रेण धनुर्विद्याविचक्षणेनोक्तम्। देव! ब्राह्मणमवतारयामि। ततो ब्राह्मणस्ताव-

इदानीं सर्पवेष्टितं बाहुं स्तब्धं कृत्वा दर्शयतु। तथा कृतवति ब्राह्मणे स राजपुत्रः कोदंडमाकृष्य सन्धानं विधाय नाराचचक्रेण सर्पस्य शरीरं तथा चिच्छेद यथा छिन्नं सर्पस्य कलेवरं भूमौ पपात ब्राह्मणकरे कुशपत्रसमाना लेखा न भूता। पश्चात्करस्थितां सर्पफणां परित्यज्य लब्धस्वान्तस्वास्थ्यो ब्राह्मणो देवालयात्पूर्ववदेवावततार। राजा च तं राजपुत्रं स्वीकृतसुवर्णलक्षं कृत्वा परैश्च वासःप्रभृतिभिर्बहुभिर्वस्तुभिः परितोषयामास। श्लोकस्तु-

इसके उपरान्त उस निर्बुद्धिका आर्तनाद सुनकर वहां बहुतसे मनुष्य एकत्रित होगये, कुछ देरके पश्चात् यह हाल राजा भोजके कान तक पहुँचा, वह तुरन्त उस निर्बुद्धि द्विजकुमारकी रक्षाके निमित्त वहां पहुँच आया. वहां सब लोग उस ब्राह्मणकी रक्षाके क्षम कुछ २ उपाय सोच रहे थे, पर किसीको भी कोई उपाय न सूझा, इधर जब राजा भोजने देखा कि, यह निर्बुद्धि द्विजकुमार जो कि अभ्रंलिह देवमन्दिरके शिखरके ऊपर एक हाथके सहारेसे खडा है. अब किसी प्रकार नहीं बच सकता तो उसका हृदय करुणासे पूर्ण होगया, उसने सब लोगोंसे कहा कि, हे लोगों ! तुम्हारे मध्य ऐसा कोई भी समर्थ है? जो इस निर्बुद्धि द्विजकुमारकी इस विपदसे रक्षा करके मुझसे इसके पारितोषिक रूप लक्ष सुवर्ण मुद्रा ले सके ? सो जिसकी प्रयुक्ति तथा पराक्रमसे यह द्विज-कुमार खुशीके साथ इस देवालयके ऊपरसे उतर जायगा उसे एक लक्ष सुवर्ण मुद्रा दिये विना मैं न रहूँगा. वहां एक कीर्तिसिंह नामका राज-पुत्र जो कि धनुष विद्यामें बडाही प्रवीण था बोला कि हे देव ! मैं इस द्विजकुमारको ऊपरसे उतारता हूँ. पर इससे कह दीजिये कि यह उस बाहुको 'जो कि सर्पसे वेष्टित है' स्तब्ध करके देखावे. कहने पर ब्राह्मणने वैसाही किया. बस अब क्या था, वीर कीर्तिसिंहने झट धनुषके ऊपर बाण चढाया और उसे कान तक खींचकर इस प्रकार बाण चलाया कि उस काले सर्पका कलेवर खण्ड २ होकर पृथ्वीपर गिर पडा. पर उस अग्रजन्माके करमें कुशपत्रके समान भी लकीर न पडी. इसके पश्चात् सर्पकी फणको हाथसे फेंक कर उस द्विज कुमारको होशमें होश आया, वह पहलेके समान खुशीके साथ मन्दिरके ऊपरसे नीचे

उतर आया. इधर राजा भोजने उस राजपुत्रको एक लक्ष सुवर्ण मुद्रा तथा वस्त्र आदि अन्यान्य भी कई एक वस्तु देकर उसे सन्तुष्ट किया। यह विद्याकीही महिमा है कि–

ब्राह्मणस्य कृता रक्षा लक्षं लब्धं च कांचनम् ।
राज्ञा चाभ्यर्चितो बाहुर्विद्यया किं न लभ्यते ॥ १३ ॥
इति पुरुषपरीक्षायां शस्त्रविद्यकथा ॥

उसने रक्षा विप्रकी की तथैव पाई मुद्रा स्वर्णकी लक्ष संख्य ।
नृपने उसकी बाहुकी अर्चना की विद्यासे क्या लब्ध होता नहीं है१३॥
इति शस्त्रविद्य कथा समाप्त ॥

१६ शास्त्रविद्यकथा ।

अधीत्य चार्थं विज्ञाय पारगस्त्वर्कचन्द्रयोः ।
शास्त्रेण विद्यया ख्यातः शास्त्रविद्यः स उच्यते ॥ १ ॥

पढके शास्त्र अर्थको जो है अवगत करता
अर्क चन्द्रके तत्त्वोंको फिर अवगत करता ।
जो फिर जगमें ख्याति शास्त्र विद्यासे पाता
शास्त्रविद्य क्षितिपाल वही मानव कहलाता ॥ १ ॥

आसीदुज्जयिन्यां पुरि विक्रमादित्यो नाम राजा । तत्र एकदा काश्चिदेको ब्राह्मणः शिरोवेदनाग्रस्तस्तस्य द्वारमाजगाम । ब्राह्मण उवाच–

उज्जयनी पुरीमें विक्रमादित्य नामक राजा राज्य करता था. वहां एक दिन एक अग्रजन्मा जो कि तीव्र शिरो वेदनासे पीडित था. राजाके द्वार पर आया और राजासे बोलाः–

अत्याज्यं हि व्रतं राज्ञः प्रजानां परिपालनम् ।
दुर्गतव्याधितार्त्तानां ब्राह्मणानां विशेषतः ॥ २॥

प्रजाजनोंकी रक्षा रूपी व्रतसे तिलभी
उचित पृथक होना नृपालकोंको है न कभी ।
दुर्गत जो हैं तथा दुखी रोगी द्विज जो हैं
इनकी रक्षा खास धर्म इनका नृपते। है ॥ २ ॥

ततो मां दुर्गतं व्याधिपीडितं ब्राह्मणं त्रायतां देवः। राजा तं ब्राह्मणं तथाविधं दृष्ट्वा करुणार्द्रहृदयः किमत्र भविष्यतीति जिज्ञासुर्वराहनामानं ज्योतिश्शास्त्रविदं प्रत्यब्रवीत्। हे वराह! कच्चिदयं ब्राह्मणो जीविष्यति? वराह उवाच। अकृतमद्यपानो न नीरुग् भविष्यति जीविष्यति पुरुषायुषम्। तदाकर्ण्य राजा चिंतयामास। अहो शास्त्रदृष्टिरसौ किं ब्रूते। कथमप्रसक्तं निषेधति। ब्राह्मणस्य कुतो मद्यपानप्रसंगः? भवतु पश्यामि तावत्। ततो राजा हरिश्चंद्रनामानं भिषजमाहूयादिदेश। भोः कोऽस्य व्याधिः का वा चिकित्सा। भिषगुवाच। देव व्याधिर्ब्रह्मकीटः, प्रतिक्रिया काचिन्नास्त्येव। राजोवाच। व्याधेर्भेषजं न कृतं विधिनेत्यसंभाव्यम्। भिषगुवाच। ब्रह्मकीटः शिरोगोऽस्य भवति तेनायं वेदनाविह्वलो विद्यते। स ब्रह्मकीटो नाग्निना दह्यते न लोहेनाभिद्यते न जलेन क्लिद्यते केवलं मद्येन म्रियते। तन्मदिरैवास्य भेषजम्। राजोवाच। शांतं पापम्। ब्राह्मणस्य मदिरा दातव्या? भिषगुवाच। तया विना ब्राह्मणो न जीविष्यतीति निश्चयः।

इसलिये हे राजा! मेरी व्याधि जन्य असहनीय पीडाको देख ऐसा कोई प्रयत्न कीजिये जिससे मुझ ब्राह्मणकी रक्षा हो. यह सुन तथा उस द्विजन्माकी असहनीय वेदनाको देखकर राजा विक्रमादित्यका हृदय करुणासे आर्द्र होगया, और उस रोगीके रोग निदानका जिज्ञासु हो उसने वराह नामक ज्योतिषीसे पूछा कि, हे वराह! बताओ यह द्विजन्मा जीवेगा या नहीं? यह सुनकर वराह बोला–हे देव! मैं सच कहता हूँ यह विना मद्य पानके कदापि नहीं जी सकता, हां यदि यह मद्य पान करले तो रोगसे मुक्त होगा और अपनी पूर्ण आयुका भोगभी कर सकेगा. यह सुनकर राजा सोचने लगा कि यह ज्योतिषी जिसकी शास्त्रही एक मात्र दृष्टि है असंगत बात कह रहा है कि यह विप्र विना मद्य पानके अच्छाही नहीं हो सकता है, पर जो ब्राह्मण है उसके विषयमें मद्य पानका प्रसंगही क्या? खैर, देखता हूँ क्या होता है? ऐसा सोचकर उसने हरिश्चन्द्र नामक वैद्यको बुलवाया और पूछा–कि हे वैद्यराज! बताओ यह विचारा ब्राह्मण किस रोगसे पीडित है और उसकी चिकित्सा क्या

है ? यह सुन चिकित्सक बोला—हे देव ! ब्रह्मकीट इसकी व्याधि है सच पूछिये तो इसकी प्रतिक्रिया कुछभी नहीं है. यह सुनकर राजा आश्चर्यके साथ बोला कि यह तो बडा आश्चर्य है कि विधाताने इस व्याधीका भेषज बनाया ही नहीं, यदि यह रोग है तो इसका भेषज भी कोई अवश्य होगा, यह सुन वैद्य—हे देव ! यह ब्रह्मकीट रोग जिससे यह अग्रजन्मा बडा ही पीडित है, न तो आगमें जल सकता, न किसी अस्त्रसे कट सकता और न पानीसे क्लिन्न ही हो सकता है, हां यदि यह मर सकता है तो केवल मद्यसे ही, यह सुन राजाने कहा छिः छीः क्या पापकी बातें करते हो, भला ब्राह्मणको मदिरा दूँगा ! यह सुन चिकित्सक बोला हे देव ! आप विश्वास रखिये कि इसके विना यह रोगी कदापि नहीं जी-सकता.

राजा परमधार्मिकः परदुःखं प्रतिचिकीर्षुः शबरस्वामिनमाचार्यं धर्मशास्त्रविदमाहूय पृष्टवान्। अयि किमत्र विधेयम्। आचार्य उवाच। अन्यथाऽसाध्ये व्याधिप्रतीकारे मद्यपानैकसाध्यायां ब्राह्मणस्य प्राणरक्षायां यदि वैद्यो निश्चितज्ञानो भवति तदाऽस्य प्राणरक्षार्थिनो ब्राह्मणस्य मद्यपानेनापि न पापं भवति। वैद्य उवाच। यद्ययं मदिरापानं विनोपायान्तरेण जीवति ब्राह्मणस्तदाऽहं पातकी भवामि। ततो राजा तयोरुभयोरपि स्वस्वशास्त्रसिद्धांतदाढर्यं श्रुत्वा ब्राह्मणाय मद्यं पातु-मादिदेश। तत्रोपनीते च मद्ये तदाऽऽकाशवागभूत्। रे शबर ! मा साहसं कार्षीः। तदाकर्ण्य शबरस्वाम्युवाच। पिब रे ब्राह्मण मद्यम्। वाग्देव-तेयं वर्णपदवाक्योपचयमात्रकुशला किं जानाति धर्मस्य निर्णयम् ? तदनंतरं शबरस्वामिनः शिरसि पुष्पवृष्टिर्बभूव। तया पुष्पवृष्ट्या श्रद्धालुः सभासद्भिः सहितो राजा शबरस्वामिनो वचनमादृत्य ब्राह्मणाय मद्यं दापयामास। ब्राह्मणस्य त्वाजन्मनो मद्यास्वादाज्ञ-तया तद्गन्धपराभूत एव ब्रह्मकीटो नासारंध्रेण भूमौ निपपात। निप-तितं कीटं राजा वैद्यवचनपरीक्षाकुतूहली वह्नौ चिक्षेप। ततो वह्निक्षिप्तमदग्धं वारिणि प्रवेशितमक्लिन्नं विदारितमनवदीर्णं मद्य-बिंदुना विलीनं दृष्ट्वा सर्वे साश्चर्या बभूवुः। राजोवाच। भो वैद्य

कीदृशस्ते शास्त्रनिश्चयः । यतस्त्वया मद्यपानमुपन्यस्तम् । व्याधिस्तु मद्यगंधेनैव निराकृतोऽभूत् । वैद्य उवाच । देव ! यदि मद्यगंधग्रहणमेवोपन्यस्तं स्यात्तदा मद्यपात्रं ब्राह्मणः स्वनासातो दूरत एवाधरिष्यत् । एवं च मदिरागंधोऽपि नास्य शिरसि यथावत् प्रविशेत् । ततो मया पानमुपन्यस्तम् । राजोवाच । साधु वैद्य साधु । सभासद ऊचुः । देव ! साधूक्तं हरिश्चंद्रवराहाभ्याम् तत्सर्वं सभ्यसाक्षिकमेव जातम् । शबरस्वामिना च सुरमंडलीविरचितपुष्पवृष्टिसाक्ष्येव साधूक्तम् । ततः स्वस्वशास्त्रसिद्धान्तविद एवामी त्रयोऽपि । तथा हि–

राजा विक्रमादित्य बडा धर्मात्मा राजा था. वह हमेशा दूसरोंके दुःखको दूर करनेमें सचेष्ट रहा करता था. इस कारण उस आर्त विप्रके त्राणार्थ शबर स्वामीको जो कि धर्म शास्त्रका बडा पण्डित था. बुलवाया और इस विषयमें उससे राय ली, आचार्य शबर स्वामीने कहा कि हे देव ! यदि वैद्योंको यह पक्का विश्वास है कि यह रोगी विना मद्य पानके दूसरी औषधिसे अच्छा ही नहीं हो सकता तो मैं भी इसमें सलाह देता हूँ कि यह रोगी अग्रजन्मा मद्यपान कर ले, यह किसी प्रकार पाप भागी नहीं हो सकता. यह सुनकर चिकित्सक बोला. हे देव ! इस ब्राह्मणको मद्यपानके लिये आदेश दे दीजिये, यदि कहीं इससे यह अच्छा न होकर उपायान्तरसे अच्छा हुआ तो मैं आपसे कहे देता हूँ कि इसके पापका भागी मैं हूँ. इसके उपरान्त राजा विक्रमादित्यने दोनोंका शास्त्रदार्ढ्य देखकर ब्राह्मणको मद्यपान करनेके लिये आदेश दे दिया, वहां मद्य लाया गया, अब वह रोगी अग्रजन्मा पीनेके लिये उद्यत हुआ कि इतनेमें आकाशवाणी हुई कि, रे शबरस्वामि ! ऐसा साहस मत कर, इस रोगी विप्रको शराब न दे. यह सुन शबर स्वामी बोला पी रे ब्राह्मण शराब पी, यह वाग् देवी है, यह तो केवल वर्ण, पद तथा वाक्योपचय मात्रमें कुशला है, भला यह धर्मका निर्णय क्या जाने ऐसा कहते ही शबर स्वामीके शिर पर फूलोंकी वृष्टि हुई. पुष्प वृष्टिको देखते ही सभासदोंके सहित राजाको धर्माचार्य शबरस्वामीके वचन पर और भी श्रद्धा बढ गई, उसने शबरस्वामीके वचनानुसार उस ब्राह्मणको मद्य दिलाया. ब्राह्मणका यह हाल था कि वह जन्मसे लेकर मद्य क्या वस्तु है, यह भी न जान था. इस कारण वह ब्रह्मकीट मद्यकी उत्कट गन्धके लगते ही भन्ना, गया वह तुरन्त नासिकाके रन्ध्रके द्वारा जमीनपर गिर पडा-

यह देख राजाने वैद्यके वचनकी परीक्षा करनेके लिये उसे आगमें रख दिया, पर वह न जला, फिर उसे पानीमें रख दिया. वहां भी वह अक्लि-न्नहीं रहा, इसके उपरान्त राजाने उसे अस्त्रसे काटा पर वह ज्योंका त्यों ही बना रहा, अब राजाने उसके ऊपर एक बिन्दु शराब रखदी, शराबकी बिन्दु पडते ही वह ब्रह्मकीट उसी दम लापता होगया, यह देख सब आश्चर्य हुए. राजाने वैद्यसे कहा कि हे वैद्यराज ! तुम्हारा शास्त्र निश्चय कैसा है कि तुमने मद्य पान बतलाया, पर ब्रह्मकीट उसकी गन्ध मात्रसे ही विनष्ट हो गया, यह सुन वैद्य बोला हे देव ! यदि मैं मद्यकी गन्ध बता तो ब्राह्मण मद्य पात्रको अपनी नासिकासे दूर ही रखता, इस प्रकार मदिराकी गन्धभी इसके शिरमें यथावत् प्रवेश न करता, इसलिये मैंने मदिराका पान बताया, यह सुन राजाने धन्य हो वैद्यराज धन्य ऐसा कह-कर वैद्यकी प्रशंसा की. इसके उपरान्त सभासद्गण बोले–कि, हे देव! हरिश्चन्द्र तथा वराहने जो कुछ अच्छा कहा वह सब तो सबके सामने प्रत्यक्ष ही है, रहे धर्माचार्य शबरस्वामी, सो इनकी भी साधु उक्तिमें प्रत्यक्ष प्रमाण देवताओंकी पुष्प वृष्टि ही थी, अब इनकी स्वस्व शास्त्र सिद्धान्त-वेत्तामें जरा भी सन्देह न रह गया, ये तीनों ही अपने अपने शास्त्र सिद्धान्तके ज्ञाता हैं, ऐसा कहकर उन्होंने निम्न लिखित पद्य पढाः-

धन्यस्त्वं नृपतिर्धरा भगवती धन्यैव धन्या वयं
धन्या सर्वगुणान्वितैः सुकृतिभिर्जुष्टा तवेयं सभा ।
रुग्भैषज्यबुधो यथार्थवचनः संदेहनिर्णायको
यत्रायं भिषगस्ति यत्र गणको यत्रैष मीमांसकः ॥ ३ ॥

हे राजा ! तुम धन्य हो भगवती पृथ्वी तथा धन्य है
हम हैं धन्य युता गुणी सुकृतिसे धन्या सभा आपकी ।
ऐसे वैद्य सुज्योतिषी वर जहां हैं और मीमांसक
भैषज्यज्ञ यथार्थ वाक फिर जो हैं भ्रान्तिके वारक ॥ ३ ॥

ततो राज्ञा जाताहङ्कारेण पुलकितेन परमोत्साहचेतसा त्रयोऽपि शास्त्रविदः काञ्चनैः करिभिस्तुरंगैर्वासोभिश्च पूजिताः । तस्य स्वायत्त सिद्धेर्नृपस्योपकरणानि बभूवुः । स च नीरुग् ब्राह्मणोऽपि सुवर्णना-दरिद्रीकृत्य गृहं प्रस्थापितः ॥

इति पुरुषपरीक्षायां शास्त्रविद्यकथा ॥

यह सुनकर राजा विक्रमादित्यको बडी खुशी हुई,खुशीके मारे उसका शरीर रोमांचित हो गया, उसने तीनों शास्त्रज्ञोंको कांचन, हाथी, घोडे तथा वस्त्रोंके द्वारा बडाही सत्कार किया.ये तीनों शास्त्रज्ञ आयत्त सिद्धि राजा विक्रमादित्यकी सभाके अलंकारभूत हो वहां रहने लगे, वह ब्राह्मण भी रोगसे मुक्ति प्राप्त करके तथा राजासे बहुतसे धन पा खुशीके साथ अपने घरको लौट गया ॥

इति शास्त्रविद्यकथा समाप्त ॥

१७ लोकविद्यकथा ।

लोककर्मणि यो दक्षो विद्ययाऽपि विना भवेत् ।
फले सादृश्यवान् लोके लोकविद्यः स उच्यते ॥ १ ॥

सुदक्ष है लौकिक कर्ममें जो विद्या विना भी जगमें मनुष्य ।
कृतार्थ होता फिर प्राज्ञसाही कहा गया है वह लोक विद्य ॥ १ ॥

आसीत् कुसुमपुरे नंदो नाम राजा । तस्य कायस्थः शकटारो नाम मंत्री बभूव । स च केनाप्यपराधेन सर्वस्वं गृहीत्वा सपुत्रकलत्रो राज्ञा कारागृहे निक्षिप्तः । तत्रापि तस्मै सपरिवारायैकशरावपरिमिता एव सक्तवः प्रतिदिनं भक्ष्यत्वेन दीयन्ते । तद्दृष्ट्वा तेन शकटारेण परिवारेष्वभिहितम् । यदयं राजा करालहृदयो विनाऽपराधेनास्मान् दुःखं दत्त्वा पातयति, शरावमात्रैः सक्तुभिः सर्वेषामस्माकमाहार-सिद्धिर्न संभवत्येव । ततः स खादतु सक्तुशरावं योऽस्य प्रत्युद्धारे समर्थो भवति । परिवारैरुक्तम् । आर्य ! यदि भवान् जीवति तदा पर-मेतस्य वैरस्य परिवारसंहारसंवभस्य प्रत्युद्धारः संभवति । ततः सकलपरिवाराणां परामर्शेन शकटार एव तदन्नं खादित्वा स्वकीय-जीवं रक्षितवान् । परिवारस्तस्य मृत एव । एकदा स राजा नंदः प्रस्नावगृहान्मंदास्मितं कुर्वन् बहिर्बभूव । तं हसंतं दृष्ट्वा पानीय-परिचारिका तदानीं तत्रावस्थिता विचक्षणा नाम्नी चेटी जहास ॥

कुसुमपुर (पटना) नामक नगरमें नन्द नामका एक राजा राज्य करता था, एक कायस्थ उसका मंत्री था, जिसका

नाम था शकटार. राजा नन्दने किसी अपराधसे इसका सर्वस्व छीन लिया और पुत्र कलत्रके समेत इसे कारागारमें रख दिया, वहां वह अपने पुत्र कलत्रके समेत एक ही सूखा सत्तूसे जो कि राजाकी तरफसे प्रतिदिन उसे मिला करता था, निर्वाह किया करता था, इस प्रकार दश बीस दिन बीतजाने पर एक दिन शकटारने अपने कुटुम्बोंसे कहा कि देखो इस निर्दयी राजाकी निर्दयता. कि अपराधके विना ही बन्धनमें डाल कर हमको नष्ट करना चाहता है. भला एक सूखामात्र सत्तूसे परिवारोंके समेत मेरा निर्वाह हो यह कब सम्भव है. सो यह सत्तू वही खावे जो इस दुष्ट राजाके वैर निर्यातमें समर्थ हो सके. यह सुन कर परिवारोंने कहा कि, हे आर्य ! यदि आप जीते रहेंगे तो निश्चय है कि आप परिवार संहार जन्य इस वैरका बदला लेनेमें समर्थ हो सकेंगे. इस लिये आप ही इसे खा कर अपने जीवनकी रक्षा करते रहिये. इस प्रकार सब परिवारोंके परामर्शसे शकटारही उस अन्नसे अपनी जीव रक्षा करने लगा और उसके सब परिवार विना अन्नपानीके कालके ग्रास बन गये. एक दिनकी घटना ऐसी हुई कि राजा नन्द प्रस्राव गृहसे कुछ मुसकुराता हुआ बाहर निकल आया. राजाको हँसते देख एक विचक्षणा नामक पानीय परिचारिका जो कि उस समय वहां हीं मुसकुराई खडी थी.

तां हसन्तीं दृष्ट्वा राजोवाच । रे विचक्षणे ! कुतो हससि । विचक्षणोवाच । यतो देवो हसति । राजोवाच—मया कुतो हस्यते । विचक्षणोवाच । तदहं न जानामि । राजोवाच । आः पापे कपटिनि त्वयैवोक्तं यतो देवो हसति ततोऽहमपि हसामि । पुनरिदानीं त्वमेवाभिदधासि यदहं देवस्य हास्यकारणं न जानामि । किमेते परस्पर विरोधिनी वचने कथयसि । यदि स्वहितमिच्छसि तदा कथय मे सत्वरं हासबीजम् । नो चेत् तदा तव शास्ति करिष्यामि । ततो लब्धावधिः सा दासी चिंतयामास । यत्सुबुद्धिपरामर्शपरिच्छेद्यमेतत् । ततः सुबुद्धिं कमपि पृच्छामि । सुबुद्धिषु प्रथमं गणनीयः शकटारः । स चेदानीं महाभागो विधिनिर्देशतः कारागृहे तिष्ठति । ततस्तमेव गत्वा पृच्छामीति परामृश्य तत्र गतवती । तत्र च कारागृहदुःखनिर्बलं शकटारं मिष्टान्नपानैः परितोष्य राजप्रश्नोत्तरमपृच्छत ।

उसको मुसकुराते देख राजाने पूछा-अरे विचक्षणा ! तू काहे मुसकुराती है ? विचक्षणा--जिस कारणसे महाराज हँसते हैं उसी कारणसे मैं भी हूँ. यह सुन राजा-अच्छा बता मैं किस लिये हँसता हूँ ! विचक्षणा--यह तो मैं नहीं जानती. यह सुन राजा नन्द बडा क्रोधित हुआ, उसने क्रोधसे कहा कि, रे कपटी पापी दासी ! तूने अभी कहा है कि, जिस कारणसे महाराज हँसते हैं उसी कारणसे मैं भी. फिर अब कहती है कि देवके हास्यका कारण मैं नहीं जानती, अरे दुष्टे ! इस प्रकार विरुद्ध वचन क्यों बोलती है सो यदि तू अपनी भलाई चाहती है तो तुरन्त मेरे हास्यका कारण बता नहीं तो समझ रख कि तेरी मृत्यु अब निकट है. यह सुन दासीने उत्तर दानार्थ राजासे कुछ दिनकी अवधि लेली और घरमें आकर सोचने लगी कि, राजाका प्रश्न बडा गहन है विना किसी बुद्धिमान् मनुष्यके परामर्शके इस गूढ प्रश्नका उत्तर हो यह कदापि सम्भव नहीं, सो किसी बुद्धिमान्से पूँछना चाहिये तो किस बुद्धिमान्से पूछूँ बुद्धिमानोंमें प्रथम गणना होती है महाभाग शकटारकी, पर विचारे इस समय अपने प्राक्तन कृत्योंके दोषसे कारागारको सुशोभित कर रहे हैं, खैर--जाकर उन्हींसे क्यों न पूँछूँ ऐसा परामर्श करके वह वहां गई और कारागृह वासजन्य क्लेशसे दुर्बल शकटारको मिष्टान्न भोजन करा कर सन्तुष्ट किया. इसके पश्चात् राजाके प्रश्नका उत्तर पूँछने लगी.

शकटार उवाच। विचक्षणे! विना देशकालानुसारिणा प्रकरणज्ञानेन परिच्छेत्तुं न शक्यते राज्ञः स्मितकारणम् । तदवसरं कथय । विचक्षणा चावसरं कथितवती । शकटार उवाच । त्वं कथयसि यन्मूत्रप्रवाहं दृष्ट्वा पश्चादश्वत्थवृक्ष पश्यन् राजा जहास । तर्हि पूर्वदृष्टस्य कस्यापि वस्तुनो न हासनिमित्तत्वम्, हासस्य वस्तुविकृतिजन्यत्वदर्शनात् । तद्विकृतं दृष्टं राज्ञा । आः ज्ञातम् । मूत्रप्रवाहे वहदश्वत्थबीजं क्षुद्रतरं दृष्ट्वा तदुद्भूतं महापरिमाणं वृक्षं पश्यन् परामृष्टवान्, राजा यदहो वैकृत्यं विधातुः प्रपंचस्य । क्व बीजं क्वायं तरुस्तत्संभव एवेति हासितं भूपालेन । पुनः पुनः परामृश्य शकटारस्तदेव

निर्द्धारितवान् अब्रवीच्च । विचक्षणया तदेव वचनं गत्वा राज्ञः पुरस्तादुक्तम् । राजोवाच । विचक्षणे सत्यं कथय, शकटारो जीवन् वर्त्तते । विचक्षणोवाच । अथ किम् । राजोवाच । कोऽन्यः शकटारादिदं निर्द्धारयितुमलंभवति । अहो तर्कः शकटारस्य । ततस्तर्कपरितुष्टेन राज्ञा शकटारः पुनरानीय सम्मानपात्रं कृत्वा राजचर्यायां मंत्रिराक्षसमुपमंत्रिणं कृत्वा मुख्यमंत्री कृतः । शकटारस्तु तां पदवीमासाद्य चिंतयामास । अहो दुर्नीतिरस्य राज्ञः । सकलपरिवारं मम हत्वा मामेव मंत्रिपदव्यां स्थापयति मूलमुच्छिद्य दले जलं ददाति । तथा हि–

सब वृत्तान्त सुनकर शकटारने कहा कि, हे विचक्षणे ! विना देश, काल तथा प्रकरण ज्ञानके राजा नन्दके हास्यका कारण जानना किसी प्रकार सम्भव नहीं, इस लिये पहले यह बता कि यह किस समयकी बात है ? यह सुन विचक्षणाने घटनाका अवसर बता दिया; तब शकटार बोला--हा ! तू कहती है कि जब राजाने मूत्रप्रवाहको देखकर पीछेके तरफ ताका और एक विशाल पीपल वृक्षको देखा तो उसे हँसी लगी, अच्छा तो अब मैंने जान लिय राजाने कोई विकृत पदार्थको देखा होगा क्योंकि हास्यका कारण है विकृत पदार्थका दर्शन ही है और कुछ नहीं; अब मैंने सब कुछ जान लिया राजा नन्दने मूत्र प्रवाहके साथ वहते एक क्षुद्रतर अश्वत्थके बीजको देख कर विशाल अश्वत्थ वृक्षकी ओर दृष्टि डाली और उसकी विशालता देखकर आश्चर्यित हो विचार करने लगा कि देखो त विधाताकी सृष्टिकी विचित्रता, कि कहां तो यह छोटासा बीज और कहां यह तत्संभव गगनस्पर्शी विशाल अश्वत्थका वृक्ष! बस राजा इसरे कारणसे हंसा बार बार सोचने पर भी शकटारने इसी बातको निश्चय किया, विचक्षणाने भी जाकर राजासे हास्यका कारण बता दिया, सुनकर राजा बडा प्रसन्न हुआ और विचक्षणासे पूछा--रे विचक्षणे ! सच बता मंत्री शकटार जीता है ? विचक्षणा--हां वह अभी तक जीवित है. राजा बोला--वस अब जान लिया यह बुद्धिमान् शकटारकी ही बुद्धिमत्ता है भला शकटारके अतिरिक्त ऐसा कौन बुद्धिमान् हो सकता है ?

जो ऐसे गहन विषयका निर्द्धारण कर सके, धन्य है शकटारके तर्कको। इस प्रकार राजा नन्द शकटारके तर्कसे बडा प्रसन्न हुआ. उसने कारागारसे उसे बुलवाकर उसका बडा सत्कार किया और पूर्ववत् उसे प्रधान मंत्रीके पद पर नियुक्त करके राक्षसको उपमंत्रीका पद दिया. शकटार भी प्रधान मंत्रीका पद अधिगत करके सोचने लगा कि, देखो इस अन्यायी राजाकी दुर्नीति, कि मेरे सब परिवारोंको मारकर मुझको ही मंत्रीकी पदवीपर नियुक्त करता है. मानो यह मूलको काट कर पल्लवके ऊपर पानी छिडकता है, क्या मेरे साथ फिरसे मित्रता करना इसे उचित है? कदापि नहीं। क्यों किः-

यः पूर्वं वैरमुत्पाद्य पुनः सौहृदमिच्छति।
यमपत्तनयात्रायाः स पंथानमपेक्षते॥ २॥

करके पाहिले शत्रुता जो मनुष्य फिरभी करना चाहते मित्रता है।
मानो प्राणी भूप! संसारमें वे यमके पुरकी राहको देखते हैं॥ २॥

कथं वा ममापि मनः प्रत्येति दुष्टाशयेऽस्मिन्। यतः-

भला, अब मेरा मन इस दुष्टाशयके ऊपर कैसे विश्वास रख सकता है? क्योंकिः-

दृष्टा वैरक्रिया यस्य परा पर्यन्तपातिनी।
तस्मिन् विश्वासमायांतं मृत्युर्जिघ्रति मस्तके॥ ३॥

जिसकी देखी नृपवर! गई शत्रुताकी क्रिया है
ध्रुव जो नरको भुवनतलमें अन्तमें है नशाती।
ऐसे नर पै मनुज रखता मूर्ख विश्वास जो है
उसके शिरको शमन ध्रुवही सूंघना चाहता है॥ ३॥

तादिदानीं किमुचितम्। पुरातनमस्य वैरमिदानीन्तनं च सौहृदं चिन्तयन् संदिग्धचित्तोऽस्मि। अथवा वैरोद्धारार्थमेव मया जीवनं स्वीकृतम् यदनेन दुरात्मना कुस्वामिना पश्यतो मम पुत्रादयो हताः। तद्यथा-

अच्छा तो अब मुझे क्या करना उचित है इसकी पुरातन शत्रुताको याद कर और इस समय इसका सौहृद देख मेरा चित्त डामाडोल

हो रहा है, अथवा चित्तको डामाडोलही क्यों करना ? क्योंकि यह तो निश्चय है कि, मैंने वैर निर्यातनके लिये ही अपना जीवन रखना स्वीकार किया है तो अब मैं इस कुस्वामी दुरात्मानन्द (जिसने कि मेरे जीते जी मेरे पुत्र कलत्र आदिको मार डाला) के वैरका बदला लिये विना थोडाभी विश्राम न करूंगा, न करूंगा । देखोः-

सर्वस्वं गतमेव गच्छतु ततो म्लानिर्न वै मादृशां
लक्ष्मीश्चञ्चलताभृतैव सुधियः शोचन्ति के तां गताम् ।
ते पुत्राः सदसि प्रगल्भवचसस्ताः सानुरागाः स्त्रियो
नप्तारः किल ते च ते च शिशवश्चेतो न मुञ्चन्ति मे ॥ ४ ॥

नष्ट हुआ सर्वस्व नष्ट होने दो उसको
नहि होता कुछ खेद अर्थ इसके है मुझको ॥
चञ्चलतासे युक्त सदा लक्ष्मी है जगमें
कौन सोचते सुधी गई इसको निज मनमें ॥
पर वे सभा प्रगल्भ सुत नारी सहानुराग वे
हा ! नाती शिशु हैं नहीं करते दिलको त्याग वे ॥ ४ ॥

तद्वैरमुद्धरणीयम् । तथाऽप्ययशो विनिवार्यते वैरमप्युद्ध्रियते तदत्युचितं भवति तेनाधमपुरुषपदवी न प्राप्यते । तथा हि-

अच्छा अब मैंने पक्का कर लिया कि इस दुष्टात्मा राजाके वैरका बदला लिये विना मैं न रहूँगा, ऐसा करनेसे दो लाभ होते हैं, एक तो अयशका प्रक्षालन, दूसरा अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके कारण अधम पुरुषकी पदवीको न प्राप्त करना. देखोः-

पापात् त्रस्यति यः स एव पुरुषः स्यादुत्तमो भूतले
पापात्मा च बिभेति योऽपयशसः स ज्ञायते मध्यमः ।
त्रासो यस्य न पातकादपि न वा लज्जापवादादपि
प्रज्ञावद्भिरुदाहृतोऽयमधमः सर्वत्र निन्दास्पदम् ॥ ५ ॥

अघसे डरता जो जगमें वह नर उत्तम है
जो पापी डरता कलंकसे वह मध्यम है ।

अघसे डरता न जो त्रपा निन्दासे डरता
बुध हैं कहते उसे अधम निन्दित वह बनता ॥ ९ ॥

इति चिंतयन्नेव स मंत्री कदाचिदारामदर्शनकौतुकेन तुरंगमारूढो भ्रमन्पुराद्बहिः कियत्यपि दूरे कुशानुत्पाट्य कुशमूले तक्रं ददानं ब्राह्मणं ददर्श । तं दृष्ट्वा शकटार उवाच । बटो ! कस्त्वं किमत्र कुरुषे । ब्राह्मण उवाच । चाणक्यशर्मा ब्राह्मणोऽहम् । सांगं वेदमधीत्यानेन पथा विवाहार्थितया गच्छतो मम कुशांकुरेण पादे क्षतं कृतम् । तेन क्षतेन विवाहभंगामार्षितः प्रतिज्ञातवानास्मि,यदस्याः स्थल्याः कुशं निर्मूलं करिष्ये । ततो वृक्षायुर्वेदाधिगमादयमुपायसुकरो निर्द्धारितः यत्तक्रेण कुशा विनश्यंतीति–तथा समाचरन् पूर्णप्रतिज्ञो भविष्यामि । शकटार उवाच । दिष्ट्या भवता वृक्षायुर्वेदाधिगमः कृतो नो चेत्प्रतिज्ञापूरणं कथं स्यात् । चाणक्य उवाच । यद्ययमुपायो न स्यात्तदाभिचारिककर्मणि प्रवीणोऽस्मि, कुशविनाशकामनया होममेवाकारिष्यम् । तदाकर्ण्य शकटारश्चिंतयामास अहो अस्य ब्राह्मणस्यामर्षातिशयः । अहो उपायप्रवीणता । यद्ययं मम वैरिणो बैरी भवति तदाऽहं वैरोद्धारं करवाणि, विनायासेनैव कृतार्थो भवामि । ततः शकटारः स्वकीयसाहाय्येन तत्समीहितं कुशोन्मूलनं कारयित्वा तं ब्राह्मणं स्वकीयमगारमानीतवान्, पश्चात् पुरोधसा संप्रधार्य राज्ञः पितृक्षयाहश्राद्धे तं पात्रत्वेनोपनीतवान्, परामृष्टवांश्च–यदयं ब्राह्मणोऽकृतविवाहः कपिलः श्यावनखदन्तश्च पात्रानर्ह एव ममाधिकारविरोधिना मंत्रिराक्षसेन मयोपन्यस्तोऽयमिति निश्चितमपमानयितव्यः । पश्चात्तथैव नंद राज्ञि श्राद्धं कर्तुमुद्यते चाणक्ये च पात्रासनानिषण्णे मंत्रिराक्षस उवाच । देव ! नायं ब्राह्मणः पात्रयोग्यः इत्याभिधाय तत्साधकानि स्मृतिवाक्यानि पठितवान् । शकटारः शूद्रोऽयं वैदिकमपीदं कार्यमनुसंधाय राज्ञो धर्मबाधां कुरुते इति चोक्तवान् । तच्च मंत्रिराक्षसस्य वचनं श्रुत्वा जातामर्षेण नंदेन राज्ञा दुर्दैवादेशितेन पात्रासनादवतार्य साधि-

क्षेपं ब्राह्मणश्चाणक्यो बहिर्निस्सारितः । ततश्च तं चाणक्यं तथाविधानात् क्रुद्धं नंदवधे कृतप्रतिज्ञं विज्ञाय शकटारो मंत्री कृतकृत्यो देहत्यागं कर्तुं काशीं जगाम । तथा हि–

इस प्रकार मन्त्री शकटार 'इस दुराश राजाके वैरका बदला कैसे लूँ' इसी चिन्तामें हमेशा मग्न रहा करता था. एक दिनकी घटना ऐसी हुई कि वह एक विशाल घोडेपर सवार हो सैर करनेके अभिप्रायसे बगेचेके तरफ चला, जब वह नगरके बाहर गया तो देखता है क्या कि एक काला ब्राह्मण बहुतसे कुशोंको उखाडकर उनकी जडमें तक्र दे रहा है, इस दृश्यको देखकर शकटार बडा चकित हुआ और उस ब्रह्मचारीसे पूछा कि हे वटो ! तुम कौन हो और यहां क्या कर रहे हो ? ब्राह्मण–मैं एक ब्राह्मण हूं, मेरा नाम चाणक्य है, देखो मैं अंगोंके समेत सब वेदोंका अध्ययन करके विवाहार्थ इस मार्गसे जा रहा था, यहां मेरे चरणमें एक कुशका अंकुर गड गया, इस कारण विवाह भंगजन्य अमर्षसे आमर्षित हो मैंने प्रण किया है कि इस स्थलीको कुश हीन किये विना मैं न रहूँगा, मैंने वनस्पति शास्त्रका अध्यन किया है, उसमें लिखा है कि तक्रसे कुश नष्ट हो जाते हैं इस लिये मैं इनके मूलमें तक्र दे रहा हूं. ऐसा करके मैं अपनी प्रतिज्ञाको पूरा करूँगा. यह सुनकर शकटार–यह बडाही हर्षका विषय है. कि आपने वनस्पति शास्त्रका अध्ययन किया है, अन्यथा आपकी यह प्रतिज्ञा पूरी कैसे होती. यह सुन चाणक्य ऐसा मत कहो क्यों कि यदि यह उपाय न रहता तो मैं कुश विनाशकी कामनासे होमही कर डालता क्योंकि आभिचारिक कर्ममें भी मेरी कम प्रवीणता नहीं है, यह सुनकर शकटार सोचने लगा कि सचमुचमें यह ब्राह्मण बडाही अमर्षी जान पडता है, इसमें उपाय प्रवीणताभी कम नहीं जान पडती. सो यदि ऐसा जिद्दी ब्राह्मण मेरे वैरीका वैरी बने तो निःसन्देह मैं वैरका बदला ले सकता हू और विना किसी परिश्रमकेही मुझे सफलता भी प्राप्त हो सकती है ऐसा परामर्श करके शकटारने कुशोत्पाटनमें चाणक्यको साहाय्य दिया, और तत्पश्चात् उसे अपने यहां ले आया, एक दिन राजा नन्दके यहां पितृक्षयाह श्राद्ध था. जिसमें पुरोहितसे कहकर शकटारने चाण-

क्यको निमंत्रण दिलाया. उसने सोचा कि, इस ब्राह्मणने अभी विवाह नहीं किया है, देखनेमेंभी काला है इसके नख दन्तभी काले काले हैं, इस लिये यह किसी प्रकारके योग्य नहीं है, मुझे तो पक्का विश्वास है कि, मंत्री राक्षस ' जो कि मेरे अधिकारका कट्टर विरोधी है' मैंने इसे निमंत्रण दिया है, यह जान कर इस काले ब्राह्मणका अनादर कराये विना न रहेगा. इसके पश्चात् राजा नन्द श्राद्ध करने लगा. वहां ब्रह्मचारी चाणक्य जाकर एक आसनपर बैठ गया, यह देख मंत्री राक्षस बोला हे देव ! यह विप्र पात्रके योग्य नहीं है, देखिये स्मृति क्या कहती है, ऐसा कहकर स्मृतिके कुछ ऐसे वचन पढे जो कि उसके मतके समर्थक थे, इसके साथ २ यहभी कहा कि ' यह शूद्र है' ऐसा जानकरभी शकटारने महाराजके वैदिक कर्ममें बाधा डालनेके लिये ही इसे निमंत्रण दिलाया है, मंत्री राक्षसका ऐसा वचन सुनकर राजा नन्दको बडा क्रोध हुआ, उसने दुर्दैवसे आवेशित हो अधिक्षेपके साथ चाणक्यको पात्रासनसे उठाकर बाहर निकाल दिया, ऐसा देख ब्रह्मचारी चाणक्यभी क्रोधसे आग होगया, उसने राजा नन्दको मारनेके लिये प्रण कर लिया, यह देख मंत्री शकटार अपनेको कृतकृत्य जान देहको त्याग करनेके लिये काशीको चला गया. यह एक बुद्धिकी ही महिमा है कि:-

विचक्षणा परित्राता चाणक्यश्च परीक्षितः ।
बुद्ध्यैव शकटारेण वैरमुद्धृतमन्नता ॥ ६ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां लोकविद्यकथा ।

विचक्षणाकी निज मतिसे ही रक्षा करके
तथा परीक्षा मौर्य विज्ञवरकी नृप करके ।
नहीं स्वयं शकटार सचिवने बध कर रिपुका
बदला लिया अहा अपने रिपुकी रिपुताका ॥ ६ ॥

॥ इति लोकविद्यकथा समाप्त ॥

---

१८ उभयविद्यकथा ।

वेदमभ्यस्यतो यस्य मतिर्लोके न हीयते ।
वेदे लोके च यो दक्षः स स्यादुभयपण्डितः ॥ १ ॥

निगमको पढता नर जो तथा न जिसकी मति कुंठित लोकमें ।
कुशल है फिर लोक सुवेदमें उभय पण्डित हैं कहते उसे ॥ १ ॥

तद्यथा–आसीत् कुसुमपुरे नन्दो नाम राजा । तेन पितृक्षयाहवासरे श्राद्धं करिष्यमाणेन सचिवदोषाच्चाणक्यशर्मा ब्राह्मणः पात्रत्वेनाहूय प्रकोपितः ।

इसकी कथा इस प्रकार है:–कुसुमपुर (पटना) नामक नगरमें नन्द नामका राजा राज्य करता था उसने पितृक्षयाह श्राद्धमें चाणक्य शर्मा नामक एक ब्राह्मणको निमंत्रित किया किन्तु जब वह वहां आया तो मंत्री राक्षसके कहनेसे वहांसे उसे निकलवा दिया जिस कारण चाणक्यशर्मा बडा क्रुद्ध हुआ ।

वृथैव नन्दभूपेन चाणक्यः शात्रवीकृतः ।
आहूय ज्ञानदौर्बल्यात् कालसर्पः प्रकोपितः ॥ २ ॥

करके रिपुता विप्र चाणक्यसे हा नन्द क्ष्मापतिने किया व्यर्थ काम ।
मानो मतिकी न्यूनतासे बुलाके काले अहिको ही किया कोपयुक्त॥२॥

क्रुद्धस्तु चाणक्यः प्रतिज्ञातवान् । तद्यथा–

इसके उपरान्त चाणक्यशर्माने क्रोधित होकर क्या प्रतिज्ञा की सो सुन लीजियेः–

यावन्न प्रहिणोमि नन्दमवनीनाथं यमस्यालयं
यावन्नात्र नृपं करोमि वृषलं तस्यैव सिंहासने ।
यावच्चास्य च मंत्रिराक्षसमहं नामात्यतामानये
मुक्तां मूर्ध्नि शिखां न तावदशमो बध्नामि चैतां पुनः ॥ ३ ॥

भेजूँगा नाहिं भूप नन्दको यम गृह जब तक
तथा बनाऊँगा शूद्रकको नृप नाहिं जब तक ।
इसका राक्षस नहीं बनेगा मंत्री जब तक
मुक्त शिखाको बाँधूँगा नहिं ध्रुव मैं तब तक ॥ ३ ॥

एवं कृतप्रतिज्ञश्चाणक्यश्चन्द्रगुप्तनामानं राजवृषलं दृष्ट्वाऽवोचत् । रे वृषल यद्यस्मिन् राज्ये राजा भवितुमिच्छसि तदा मामनुगच्छ । वृषलस्तथाविधाऽदृष्टप्रेरितस्तमनुजगाम । चणाक्यस्तु तेन वृषलेनाऽ-

नुगम्यमानस्तपोवनं गत्वाऽभिचारिकेण होमेन नवापि नन्दान् यमनिकेतनं नीतवान् । ततोऽभिचारप्रयोगप्रभावेण नन्देषु विनष्टेषु चाणक्यश्चिन्तयामास । यदेका मम प्रतिज्ञा पूर्णा तदिदानीं चन्द्रगुप्तं वृषलं नन्दसिंहासने राजानं कृत्वा द्वितीयां पूरयामि । राजा च विना सेनया न संभवति । सेना च विना धनं न संभवति । मम हस्ते धनं नास्ति । किं करवाणि । ततः परामृश्य पर्वतकेश्वरं राजानमुपसर्प्योवाच । राजन् पर्वतकेश्वर कुमारोऽयं चंद्रगुप्तो मया कुसुमपुरे राजा कर्त्तव्यः । ततो भवानेनं स्वबलैरुपष्टभ्यार्द्धराज्यं गृह्णातु । पर्वतकेश्वरस्तु नन्दवधे दृष्टानुभावस्य चाणक्यस्योद्यमे फलसिद्धौ जातप्रत्ययः सकलबलसहितश्चन्द्रवृषलं नन्दपदे कुसुमपुरं गत्वा राजानं चकार । लब्धराज्ये चंद्रगुप्ते राक्षसनियुक्तेन पुरुषेणोपायनीकृतां सुन्दरीं चन्द्रगुप्तस्य पुरतो नृत्यन्तीं तदीयश्रमजलपानघूर्णमानाभिर्मक्षिकाभिर्विषकन्येयमिति चाणक्यः परीक्ष्य चिन्तयामास । यदियं विषकन्या चंद्रगुप्तवधाय राक्षसेन मंत्रिणा परद्वारा प्रहिताऽस्ति तदनयैवार्द्धराज्यहरस्य पर्वतकेश्वरस्य वधो भवतु । तदनन्तरं तां विषकन्यां तस्यैव पुरुषद्वारा पर्वतकेश्वराय दापितवान् । तस्याश्च भोगसंलुब्धे तपस्विनि पर्वतकेश्वरे मृते चन्द्रगुप्तस्य निष्कण्टकं राज्यं ज्ञात्वा चाणक्यः पुनश्चिन्तयामास । यदियं द्वितीया मम प्रतिज्ञा पूर्णा तदिदानीं मलयकेतोर्भूपालस्य राज्याद्राक्षसमानीय चंद्रगुप्तस्य मंत्रितां ग्राहयित्वा पूर्णप्रतिज्ञो भवामि । उपायस्त्वयं यद्राक्षसस्य प्रियमित्रं चन्दनदासोऽस्मिन्नगरे वसति । तस्य स्थाने राक्षसस्य गृहजनाः सन्त्येव । तस्माच्च धर्मपटधारिणा पुरुषेण राक्षसनामाङ्किता मुद्रा समानीय मह्यं दत्ता । सा प्राग् राक्षसहस्तांगुलीगतैव । तया मुद्रयाङ्कितं शकटदासलिपिभूषितं पत्रं मलयकेतुं सेवमानस्य मम सहाध्यायिमित्रस्य भागुरायणस्य हस्ते प्रविष्टं यथा स्यात् तथा कर्त्तव्यम् । शकटदासोऽपि सकपटं मया निस्सारितो राक्षसमनुवर्त्तत एव ।

भद्रवटुप्रभृतयश्च शूराः परमाप्ताः समयकृत्यकुशला मयाऽर्थेन परिपोषिताः कृत्रिमविरोधं कृत्वेतः पलायितास्तत्र संप्रति मलयकेतोर्विश्वासपात्राण्येव विद्यंते अवश्यं तेन लिखितेन तैः पुरुषैरस्मिन्नवसरे राक्षसमलयकेत्वोः सौहृदभेदकारिभिर्भवितव्यम्। तदेवं संपन्ने कारणकलापे कार्यसिद्धिरपि संपन्नप्राया स्यात्। यतः—

इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेके पश्चात् एक दिन चाणक्यशर्माको चन्द्रगुप्तसे भेंट हुई। उसने उससे कहा कि, रे वृषल ! यदि तू इस विशाल राज्यका अधिकारी बनना चाहता है तो ले आ मेरे पास और जसा मैं कहता हूँ वैसाकर। यह सुनकर चन्द्रगुप्त बडा प्रसन्न हुआ, उसने उसकी आज्ञाके अनुसार चलना स्वीकार कर लिया। मानो कि, वह अपने अदृष्टसे वैसा करनेके लिये प्रेरित हुआ. इसके उपरान्त चाणक्य शर्माने चन्द्रगुप्तको साथ लेकर वनमें जा आभिचारिक होम किया और उसीके प्रभावसे नव नन्दोंको कालके हवाले कर दिया. इस प्रकार जब अभिचारके प्रयोगके द्वारा नवों नन्द विनष्ट होगये तब चाणक्य शर्मा अपने चित्तमें फिर यों सोचने लगा कि, एक मेरी प्रतिज्ञा तो पूर्ण हुई,अब वृषल चन्द्रगुप्तको नन्दके सिंहासन पर समासीन करके मैं दूसरी प्रतिज्ञाको क्यों न पूरा कर लूं ? पर एक बात है वह यह कि मेरे पास सेना नहीं है, सेनाके विना राजाका होना भी सम्भव नहीं. यदि मैं सेनाको रखकर चन्द्रगुप्तको राजा बनाऊँ तो मेरे पास धन भी नहीं. विना धनके सेनाका होना भी कब सम्भव है, तो मैं क्या करूं ? इस प्रकार परामर्श करके वह राजा पर्वतकेश्वरके निकट गया और वहां जाकर उससे कहा कि हे राजन् ! मैं वृषल चन्द्रगुप्तको कुसुमपुरक राजा बनाना चाहता हूँ सो आप इसे कुछ अपनी सेना देकर मुझे अनुगृहीत कीजिये आप विश्वास रखिये कि, इस उपकारका प्रतिफल चन्द्रगुप्तका आधा राज्य आपके हाथमें ही है, यह सुन कर राजा पर्वतकेश्वरको चाणक्यशर्माके उद्योगकी फलसिद्धिमें पूरा विश्वास होगया. कारण कि उसने नन्दके वधमें चाणक्यका अनुभाव देखा था, उसने झट बहुतसी सेनायें साथमें कर लीं और कुसुमपुरमें जा बडे समारोहके साथ चन्द्रगुप्तको कुसुमपुरका राजा बनाया. इस प्रकार वृषल

चन्द्रगुप्त राजा नन्दकी गद्दीपर समासीन हो राज्य शासन करने लगा. एक दिन ऐसी घटना हुई कि राजा चन्द्रगुप्त राज सिंहासनपर बैठा था सभासदगण भी अपने २ उचित स्थान पर बैठे थे इसी समय एक सुन्दरी 'जिसको कि नन्दके वधसे अमर्षित मंत्री राक्षसने एक गुप्तचरके द्वारा राजा चन्द्रगुप्तके पास उपहारमें भेजा था' वहां नृत्य करने लगी. नृत्य करनेके समय जब कभी उसके शरीरपर दो अथवा चार मक्खियाँ बैठती थीं. वे उस सुन्दरी स्त्रीके श्रमजन्य स्वेदसे घूर्णित हो पृथ्वीपर गिर कर उसी दम मर जाती थीं. यह तमासा. देख बुद्धिमान् चाणक्य चट ताड गया कि हो न हो यह विषकन्या है, तो यदि यह विष कन्या है और यदि इसे राजा नन्दके वधसे अमर्षित राक्षसने परद्वारा वृषल चन्द्रगुप्तके वधार्थ भेजा है. तो इसीके द्वारा राजा पर्वतकेश्वरको क्यों न मार डालूँ. जिससे कि, मुझे उसे आधा राज्य न देना पडे. ऐसा सोचकर चाणक्य शर्माने उसी चरके द्वारा उस विषकन्याको राजा पर्वतकेश्वरके निकट भेज दिया. राजा पर्वतकेश्वर भी उस विषकन्याको देख मोहित होगया. उसने कामान्ध हो झट उसके साथ संभोग किया. संभोग करते ही विचारा पर्वतकेश्वर कालका ग्रास बन गया, यह देख चाणक्यशर्मा फिर सोचने लगा कि, अच्छा अब मेरी दूसरी प्रतिज्ञा भी पूरी होगई. अब एक और बच गई है. वह यहै कि, अब मुझे एक ऐसा उद्योग करना चाहिये जिससे कि मंत्री राक्षस 'जो इस समय राजा मलयकेतुके राज्यमें रहता है, यहां आजाय और राजा चन्द्रगुप्तकी मंत्रिता स्वीकार कर ले तो यहां कौनसा उपाय करना चाहिये. अच्छा जान लिया चन्दनदास 'जो कि राक्षसका प्रिय मित्र है' इस कुसुमपुरमें बसता है उसके यहां राक्षसने अपने कुटम्बोंको रख दिया है. उसके पास एक मुद्रा थी. जो कि राक्षसके नामसे अङ्कित है जिसको कि धर्म पटधारी एक पुरुषने ले आकर मुझको दिया है, पहले राक्षस उसे खुद पहिनता था, इस लिये यहां ऐसा करना चाहिये। मैं शकटदाससे एक पत्र लिखाकर उसे राक्षसकी मुद्रासे मुद्रित किये देता हूँ. इसके उपरान्त उस पत्रको मैं मेरे सहाध्यायी भागुरायण (जो कि कपटसे राजा मलयकेतुके आश्रयमें पड़ा है) के पास भेजे देता हूँ.

मैंने शकटदासको कपटसे राक्षसके निकट पहलेसे निकाल ही दिया है. वह इस समय सेवाके अनुभावसे राक्षसका विश्वास पात्र बन गया है और भद्र वटुप्रभृति जो शूर हैं जो कि, कार्यमें बडे कुशल हैं तथा जो समय पर बडे कामके हैं वे मेरे साथ कृत्रिम विरोध करके यहांसे भाग-गये हैं, और इस समय सेवाके प्रभावसे मलयकेतुके बडे ही कृपा पात्र बन गये हैं, मुझे तो पक्का विश्वास है कि, वे ऐसे समय इस पत्रके द्वारा राक्षस तथा मलयकेतुके सौहृदमें भेद लगानेके लिये प्रयत्न किये विना न रह सकेंगे, इस प्रकार यदि मेरे पास इतने कारण कलाप वर्तमान हैं तो कार्यकी सिद्धिमें सन्देह ही क्या ! क्यों कि:-

संपन्ने कारणव्राते कार्यं संपद्यते परम् ।
प्रतिबंधाय धाताऽपि न स्याद्दुर्लक्ष्यचेष्टितः ॥ ४ ॥

यदि कारणका व्रात है विद्यमान
तो ध्रुव ही है कार्य उत्पन्न होता ।
ब्रह्मा भी क्या रोक सकता उसे है
जिसकी लीला जानता है न कोई ॥ ४ ॥

धाताऽपि संप्रत्यनुकूल एव लक्ष्यते । यतः-
इस समय विधाताकी भी अनुकूलता ही लक्षित होती है.' क्योंकि:-
नन्दा हता राज्यमिदं गृहीतमवारि राज्यार्द्धहरो विपक्षः ।
स्तोकावशेषां किल मे प्रतिज्ञां मन्ये क्रमात्पूरयितैव धाता ॥५॥

नव नन्दोंको मार राज्यको पाया मैंने
अर्द्ध राज्य भागी विपक्षको मारा मैंने ।
किंचित ही रहगई प्रतिज्ञा अब है मेरी
पूर्ण करेगी शीघ्र उसे भी ध्रुव विधि मेरी ॥ ५ ॥

अथवा विधातुश्चरित्रे काऽन्या गतिः । कस्यचिन्निस्तीर्णपारावारस्यापि तटांतमागत्य नौर्निमज्जति तदनायत्तम् । ततो न प्रमाद्यामीति परामृश्य स्वचिंतितं लेखप्रेषणादि सर्वं कृत्वा तत्परिपाकावसरे शार्ङ्गरवनामानं शिष्यमाहूयापृच्छत् । वत्स! चंद्रगुप्तमभियोक्तुं कृतप्रयाणस्य मलयकेतोः का वार्त्ता । शिष्य उवाच । तस्मादागतेन

जीवसिद्धिना कथितं यत्सकलबलसहितो मलयकेतुरंतिकमेवागतः किंतु मंत्रिराक्षसस्य निस्सारणप्रसंगेन द्वित्राणि दिनानि पथि विलंबितोऽस्ति स राजा । चाणक्य उवाच । आः कथं राक्षसस्यापि निकारः किं तत्र निमित्तम् । शिष्य उवाच । गहनं खलु राजचरित्रम् । क्वचिन्निमित्तनिरपेक्षाऽपि क्रिया संभाव्यते राक्षसनिस्सारणनिमित्तं त्विदं श्रूयते । यच्छकटदासलिपिभूषितं राक्षसमुद्रांकितं राक्षसानुजीविना विपक्षस्थानं नीयमानं पत्रं वर्त्मनि प्राप्तम् । चाणक्य उवाच । तदिदं स्थानमेव निकारस्य। राजापथ्यकारिणो ध्रुवं निकारमनुभवंति । सनिकारं निस्सारितो राक्षसः कुत्रेदानीं श्रूयते । शिष्य उवाच । न ज्ञायते । चाणक्य उवाच । चन्दनदासं शूलाग्रे नीत्वा तं ब्रूहि यद्राक्षसः स्वकीयगृहजनांस्तव मन्दिरे न्यासीकृत्य कुसुमपुरग्रहणसमये पलायितः तानानीय देहि नोचेद्भवन्तं शूलमारोपयिष्यामः । शिष्यस्तथा कृत्वा पुनरागत्य प्रणम्योवाच । आर्य ! चंदनदासो मित्रवत्सलो मरणमङ्गीकुरुते । न राक्षसगृहजनं ददाति । राक्षस एव तां वार्त्तामाकर्ण्य चंदनदासवणिजः प्राणरक्षानुरोधेन वधस्थानमागत्य वदन्नास्ति यदाचार्यचाणक्यो मां यत् कुरुते तत् कुरुतां चन्दनदासवणिजं निरपराधं मदर्थे प्राणानुपेक्षितुमिच्छंतं मा घातयतु । तदाकर्ण्य किंचिद्विहस्याचार्यचाणक्यः शिष्यमवादीत् । गच्छ वद राक्षसमिति भवान् श्रीचंद्रगुप्तस्य राज्ञो मंत्रितामंगीकृत्य खड्गं गृह्णात्विति। शिष्यउवाच । आर्य किं करोतु राक्षसो वराकः संप्रति चंदनदाससंरक्षणानुरोधेन पराधीन एवांगीकारिष्यति । दुरतिक्रमणीयो हि कार्यधारापातबन्धः ।

अथवा विधाता अनुकूल है. ऐसा न कहना चाहिये क्योंकि उसका चरित्र बडा गहन है. उसको जानना कठिन है, इसके यहां मनुष्यकी कुछ नहीं चलती, देखा जाता है कि, किसीकी नौका अपार समुद्रको पार करजाती है, पर जब वह तटपर आजाती तो अकस्मात् जल मग्न हो

रसातलको पहुँच जाती. इसलिये भाग्यके ऊपर निर्भर रहकर प्रमाद करना हमारे समान मनुष्यको उचित नहीं, ऐसा परामर्श करके चाणक्य शर्मा लेख प्रेषण आदि सब कार्य बडी चतुरताके साथ शीघ्र कर डाला और कपट प्रबन्धके परिपाकके अवसरमें शार्ङ्गधर नामक शिष्यको बुला कर पूछा कि, रे वत्स शार्ङ्गधर! यदि तुझे कुछ ज्ञात है तो बता मलय-केतुका (जिसने राजा चन्द्रगुप्तको अभियुक्त करनेके लिये प्रयाणकिया है) क्या हाल है? यह सुन शिष्य–हां गुरुजी! मुझे ज्ञात है. जीवसिद्धि अभी वहांसे आया है, वह कहता है कि–मलयकेतु चन्द्रगुप्तके ऊपर आक्रमण करनेके लिये अपने दलबलके समेत कुसुमपुर अब तक पहुंचगया होता. किन्तु राक्षसको निकालनेमें उसे दो अथवा तीन दिन राहमें विलम्ब होगया, यह सुनकर चाणक्य–अरे यह क्या राक्षसका भी निकार? अच्छा कहो कहो राक्षसके निकारका कारण क्या है, यह सुन शिष्य बोला–गुरुजी!राजाका चरित्र बडा ही गहन होता है, कभी कभी इसकी क्रिया निमित्त निरपेक्ष भी हुआ करती है, परन्तु मंत्री राक्षसके निस्सा-रणका यह कारण सुनाई देता है कि, राक्षसका एक अनुजीवी शकटदासके लिखे हुये पत्रको (जो कि मंत्री राक्षसकी मुद्रासे मुद्रित था.) लेकर विपक्षके यहां जा रहा था. वह पत्र राजा मलयकेतुको मार्गमें प्राप्त हो गया, यह सुनकर चाणक्य बोला हां तूँ सच कहता है. राक्षसके निका-रका कारण यही होगा, जो राजाका अपथ्यकारी है उसका यही हाल होता है. अच्छा यह तो बताओ कि राक्षस इस प्रकार निकारके साथ निकाला गया इस समय कहां है, यह सुनकर शिष्य बोला–न मालूम वह इस समय कहां है? चाणक्य–अच्छा तू अभी जा, चन्दन दासको शूलीके निकट ले जाकर उससे कह कि, राक्षसने कुसुमपुरसे भागते समय अपने परिवारोंको तेरे यहां रख छोडा था. उनको राजा चन्द्रगुप्तके सामने पेस कर नहीं तो इसी तीक्ष्ण शूलको देख, इसीके ऊपर तेरे प्राण जाँयगे. आज्ञा पाते ही वह शिष्य वहां गया और गुरुके आदेशानुसार सब कार्य करके फिर लौट आया और गुरुको प्रणाम करके बोला कि, हे आर्य! चन्दनदास बडाही मित्र वत्सल है वह कहता है कि चाहे मेरे प्राण चले जाँय पर मैं राक्षसके परिजनोंका देना कदापि

स्वीकार न करूंगा. यह वृत्तान्त सुनकर राक्षस चन्दनदासकी प्राण रक्षाके अनुरोधसे खुद वध स्थान पर आ गया है, और कहता है कि आर्य चाणक्य! मुझको जो चाहें सो करलें क्यों कि अपराधी मैं हूँ पर चन्दनदासको जो कि निरपराधी है और जो मेरे लिये अपना प्राण तक देनेके लिये उद्यत है, न मारें. यह सुनकर चाणक्य शर्मा कुछ मुसकुराकर बोला कि रे शिष्य! तू जाकर राक्षससे कह दे कि वह राजा चन्द्रगुप्तकी मंत्रिता स्वीकार करके खड्ग ग्रहण कर ले, शिष्य बोला-हे आर्य! विचारा राक्षस क्या करे वह इस समय चन्दनदासकी संरक्षाके अनुरोधसे परतंत्र है, इसलिये वह क्या क्या स्वीकार न करेगा! क्योंकि कार्य धारापात बंध बडा ही दुरतिक्रमणीय होता है, देखिये कार्य धाराके वशीभूत होनेसे ही:-

अंगीचकार किल वामनतां मुरारी
रामोऽप्युवास वनमब्धिरुवाह बन्धम् ।
दंतावला अपि सृणिव्यवसायरुद्धाः
किं नाचरंत्यहह कार्यवशात् पुमांसः ॥ ६ ॥

कृष्णचन्द्रने वामनताको ग्रहण किया था
राम बसे वन मध्य उदधिमें बन्ध हुआ था।
गजको सृणिसे रुद्ध सदा ही नर हैं करते
मनुज कार्यके वशी भूत हो क्या नाहिं करते ॥ ६ ॥

ततश्चाणक्यप्रेषितस्य शिष्यस्य वचनमाकर्ण्य मंत्रिराक्षसश्चंद्रगुप्तस्य साचिव्यमनभिमतमप्यंगीकृत्य खड्गं जग्राह। चाणक्यस्तु चंद्रगुप्तं राजानं प्रति निश्चितो बभूव ।

इसके उपरान्त उस शिष्यने जाकर राक्षससे सब वृत्तान्त कह सुनाया, विचारा राक्षस अब क्या करे उसे जबरदस्ती राजा चन्द्रगुप्तका साचिव्य स्वीकार करना ही पडा, इधर चाणक्यशर्मा भी अपनी प्रतिज्ञाको पूरा करके राजा चन्द्रगुप्तके प्रति निश्चिन्त हो गया.

तदेवं वेदाध्ययनसामर्थ्यान्नन्दं हत्वा लौकिककार्यदक्षतया चंद्रगुप्तं नृपं राक्षसं च तन्मंत्रिणं कृत्वा पूर्णप्रतिज्ञः शिखां बध्वा सोत्साहः स्वाभिमतस्थानं जगाम । तथा हि-

इस प्रकार वेदाध्ययनके सामर्थ्यसे नन्दको मार तथा लौकिक कार्यमें दक्ष होनेके कारण चन्द्रगुप्तको राजा और राक्षसको उसका मंत्री बनाकर चाणक्य शर्माने अपनी शिखा बांधी· तत्पश्चात् वह वहांसे स्वस्थानको चलागया, देखोः-

रोषो यस्य कृतांतपत्तनमितो नन्दान् नव प्राहिणो-
न्निर्विघ्नं वृषलाय नूनमभवत्तोषस्तु राज्यप्रदः।
स ख्यातः किल विद्यया च सकले बुद्ध्या च भूमंडले
चाणक्यश्चतुराननप्रतिनिधिः केषां न वाग्गोचरः ॥ ७ ॥

इति पुरुषपरीक्षायामुभयविद्यकथा ॥

भेजा नव नन्दोंको यमपुर क्रोधी जिसने
राज्य दिया फिर हो प्रसन्न शूद्रकको जिसने ।
विद्यामतिसे हुआ प्रसिद्ध महा जो जगमें
विधि निभ वह चाणक्य किसे है ज्ञात न जगमें ॥ ७ ॥

इति उभयविद्यकथा समाप्त ॥

१९ चित्रविद्यकथा ।

तद्यथा-

विद्याश्चतुर्दशैवोक्ता वेदाद्यास्तत्त्वदर्शिभिः ।
चित्रेन्द्रजालनृत्याद्या उपविद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥

वेद आदि चौदह विद्या केवल हैं जगमें
कही गई उनसे सुतत्त्वदर्शी जो जगमें ।
इन्द्रजाल फिर चित्र नृत्य विद्याको नृपवर
उपविद्या कहते तत्त्वोंके दर्शी बुधवर ॥ १ ॥

पूर्वमुपविद्यनागरौ शशिदेव-मूलदेव-नामानौ सखायौ बभूवतुः । तौ च गुणगर्विणौ देशान्तरदर्शनकौतूहलिनौ धरित्रीमंडलं भ्रमंतावेकदा कोशलायां पुरि कौमुदीनाम्नीं रूपयौवनवतीमेकां राजकुमारीं सदनादागच्छंतीं ददृशतुः । तां दृष्ट्वा मूलदेवः कामज्वरकातरो बभूव । तं तथाविधं दृष्ट्वा शशिदेवश्चिन्तयामास । यतः—

प्राचीन कालमें शशिदेव और मूलदेव नामके दो मित्र थे वे उपाविद्यामें बडेही निपुण थे. इसके साथ २ उनको अपने गुणकाभी गर्व कम न था, उन दोनोंने परस्पर देशान्तर देखनेकी लालसा प्रकट की और अपने नगरसे चले वे धरित्री मण्डलपर भ्रमण करते करते एक समय कोशला नामक नगरमें पहुँचे । वहां उन्होंने एक कौमुदीनामक रूप यौवनसे पूर्ण सुन्दरी राजकुमारीको देखा. जो कि, उसी समय अपने महलसे निकल रही थी उसे देखतेही मूलदेव कामज्वरसे बडा पीडित हो गया. यह देख शशिदेव सोचने लगाः--

सख्यं हि मनसोरैक्यं देहमात्रविभिन्नयोः ।
यः सख्युः सुखदुःखाभ्यां नाप्यते स कुतः सखा ॥ २ ॥

दो मानवोंके मनकी सु एकता है मित्रता यद्यपि देह भिन्न है ।
जो मित्रके दुःख सु सौख्यसे न दुःखी सुखी है वह मित्र क्या है॥२॥

ततो मम प्राणसमः सखा मूलदेवो राजकुमारीरूपेण मोहितः संदिग्धजीवनो वृत्तोऽस्ति । तदस्य रक्षार्थं प्रकारं करोमीति परामृश्य तन्नगरवासिनीं तत्रस्थां मालाकारवधूमपृच्छत् । अयि मालिनि ! केयं युवतिः किमर्थं योगिनीमंडपे यात्यायाति च । मालिन्युवाच । इयं राजकुमारी, राज्ञा विवाहविधिना योग्याय वराय दातुमाकाङ्क्षिताऽपि कमपि वरं न स्वीकरोति । किंच योगिनीमुपसर्पति योगमभ्यस्यति पुरुषं निंदति । न ज्ञायते कोऽत्र हेतुः । शशिदेव उवाच । मालिनी इयं नारी युवतिः । पुरुषं नाकाङ्क्षतीति महदाश्चर्यम् । ततो भवती मां स्त्रीवेषधारिणं तस्याः कुमारिकायाः सेवां कारयतु । तदनंतरं मालिनीगृहे मूलदेवमवस्थाप्य स्त्रीवेषधारिणा सर्वकलाकुशलेन शशिलेखेति नाम परिगृह्य शशिदेवेन तस्याः परिजनताऽवलंबिता । कियताऽपि कालेन जातायां प्रत्यासत्तौ[1] कुमारीमपृच्छत् । भर्तृदारिके ! कुतोऽस्मिन् प्राप्ते तारुण्ये भवत्याः संसारसुखोपेक्षा । राजकुमारी ब्रूते । सखि शशिलेखे कथामिमां न प्रष्टव्याऽस्म्यहं भवत्या । शशिलेखोवाच । मया संविधानपरिचारिकया कथं न प्रष्टव्या भवति । यतः--

१ अतिनिकटस्थितौ ।

इसालिये मुझे मेरे प्राण प्रियतम मूलदेव जो कि राजकुमारीके सौन्द-र्यसे मोहित हो सन्दिग्ध जीवनसा हो गया है. कैसे बचे ? इसके लिये कुछ प्रयत्न अवश्य करना चाहिये. ऐसा परामर्श करके शशिदेवने एक मालाकारकी वधूसे पूछा. जो कि उस समय वहांही खडी थी. रे मालिनी ! बता यह युवती कौन है;? यह जो बारबार योगिनीके मण्डपमें जाती है इसका क्या कारण है ? यह सुनकर मालाकार वधू बोली कि, हे सज्जन ! यह राजकुमारी है, राजा चाहता है कि, इसका परि-णय किसी योग्य राजकुमारके साथ कर दूं. पर यह ऐसी हठशीला है कि, इसे किसीकेभी साथ विवाह करना नहीं रुचता. यह हमेशा योगिनीके मण्डपमें जाकर योगका अभ्यास किया करती है, पुरुषका तो मानो कट्टर वैरीही है, कौन जाने इसका क्या सबब है. यह सुनकर शशिदेव फिर बोला कि, रे मालिनी ! यह स्त्री युवती है फिर पुरुषसे घृणा रखा करती है यह तो बडाही आश्चर्यका विषय है सो तू कोई ऐसा प्रयत्न कर जिससे मैं प्रमदाके वेषमें रहकर इस राजकुमारिकाकी सेवा टहलमें लग जाऊँ. ऐसा कहकर शशिदेवने मित्र मूलदेवको उसी मालाकारकी वधूके घरपर रख दिया और खुद स्त्रीका वेश धारण करलिया और अपना नाम 'शशिलेखा' रखकर उस राजकुमारीकी परिजनताको स्वीकार कर लिया. इस प्रकार कुछ दिन बीत गये. दोनोंमें प्रत्यासत्तिभी खूब बढ गई. ऐसा देख एक दिन शशिदेवने एकान्तमें कुमारीसे पूछा कि, हे भर्तृदारिके ! मैं एक बात पूँछती हूँ उसका उत्तर ठीक देना. देखो छिपाईयो मत. भला यह तो बताओ कि, तू युवती है फिर इस तरुण अवस्थामें तेरी इस सरस संसा-रीय सुखोंकी उपेक्षा देख मेरे दिलमें बडा दुःख होता है. सो हे सखी ! इस वैराग्यका कारण मुझको अवश्य बता. यह सुनकर राजकुमारी बोली कि, हे सखि शशिलेखे ! ऐसी कथा हमसे कदापि न पूछना. यह सुन शशिलेखा बोली-हे सखि ! भला तू ऐसा क्यों कहती है, मैं तेरी सम्बिधान परिचारिका हूँ, फिर मैं तुझसे न पूछूँ, यह कैसे हो सकता है. देखः--

पिता स्नेहार्द्रस्ते प्रभवति कथंचिन्न हृदये
निरुत्साहा माता क्षणमपि न खेदं विसृजति ।

इमां योगाभ्यासव्रतपरिवृढां वीक्ष्य भवती-
मपत्यप्रारंभे ध्रुवमनुचिते ताम्यति न कः ॥ ३ ॥

संरक्ता लखके तुझे नृपसुते ! अभ्यासमें योगके
होते हैं तव तात शून्य मनहीं जो स्नेहसे आर्द्र हैं।
चिन्तासे जननी न हीन क्षणभी होती निरुत्साह ही
जो कर्ता अनभीष्ट कर्म सुत है तो कौन दुःखी न है ॥ ३ ॥

ततः किम्मूलकोऽयं तव प्रारंभस्तत् कथय। यदि प्रतिकरणीयं भवति प्रतिक्रियते। न ह्यज्ञाते व्याधौ चिकित्साऽवतरति। यदि वाऽप्रतिक्रियमेवं दुःखं तदा मिलित्वा सह्यते। तथाहि-

तो सखि! बता कि, तेरे इस प्रारंभका मूल क्या है! यदि कहीं तेरी व्याधि प्रतिकार साध्य हुई तो विश्वास रख कि, उसका प्रतीकार विना किये न रहूँगी. हे सखि! यह जाने रह कि, जब तक व्याधि अज्ञात है तबतक उसकी चिकित्साका होना सम्भव नहीं और यदि वह ज्ञात होगई और चिकित्सा करनेपर भी साध्य नहीं होती जान पडती तो सब मिलकर उस व्याधि जनितक्लेशको सहलेते हैं, देखोः-

एकेनाङ्गीकृतो वोढुं दुःखभारो गुरुर्भवेत्।
तस्मादेनं लघूकर्त्तुं सुहृद्भ्यो विनिवेदयेत् ॥ ४ ॥

वह गुरु होता दुःखका भार भूप! सहता जिसको एकही है मनुष्य।
तस्मात् कहना चाहिये बन्धुओंसे लघु करनेके हेतुसे स्वीय दुःख ॥ ४॥

तत्सुखिनि कथय मे पुरुषापरिग्रहनिमित्तम्। कुमारिकोवाच। सखि शशिलेखे त्वं मम द्वितीयं हृदयमिव सहस्नेहला सखी भवसि। ततस्ते किं न कथयामि। शृणु तावन्मम पुरुषापरिग्रहे निमित्तम्। पूर्वजन्मन्यहं प्रचुरनवदर्भांकुरायां भूमौ चरन्ती स्थिताऽस्मि। स्वामी मम कृष्णसारो मयि सानुरागो मत्सन्निधाने तत्रैवासीत्। पश्चात्सा स्थली मृगवधरसिकैरागत्य जालेन वेष्टिता। तदाऽहं पूर्णगर्भा संचरितुमसमर्था स्वामिनमवादिषम्। रे मृग! त्वमुत्काल-

१ स्वकार्यजननायकृतारम्भः।

समर्थोऽसि जालमुल्लंघ्य गच्छ क्वापि जीव । ममानुरागबद्धो मन्निमित्तं प्राणान्न दास्यसि । न च प्रतीकारसाध्या संप्रति मम जीवरक्षा । स दुरात्मा पलायनसमर्थोऽपि न पलायितः । ममानुरागबद्धः केवलं व्याधैर्व्यापादितः । मरणसमये मय्यर्पितदृष्टिः पद्यमिदं पाठितवान् । तद्यथा--

इसलिये हे सखि ! बता तेरे पुरुषके अपरिग्रहका क्या कारण है? यह सुन राजकुमारी बोली कि, हे सखि शशिलेखे ! तू मेरा दूसरा हृदय है तथा मेरी प्यारी सखी लगती है तो फिर मैं अपना रहस्य तुझसे न बताऊँ यह कब सम्भव है, ले सुन मैं पुरुषके अपरिग्रहका कारण बताये देती हूँ ? मैं पूर्वजन्ममें एक मृगी थी. एक दिन मैं प्रचुर अंकुरोंसे युक्त एक विशाल मैदानमें चररही थी. मेरा स्वामी कृष्णसारभी मुझमें आसक्त होनेके कारण वहांहि चर रहा था. इतनेमें कुछ बहेलियोंने आकर वहां जाल लगाया. जिसमें हम दोनों फँस गये, उस समय मैं पूर्णगर्भा थी. इस कारण मुझमें इतनीभी ताकत न थी कि मैं एक कदमभी चल-सकूँ. यह देख मैंने अपने स्वामी कृष्णसारसे कहा कि, रे मृग ! तू तो इस फन्देको तोडकर बाहर भागनेमें समर्थ है. इसलिये इस जालको तोडकर बाहर निकल जा और कहीं जीता जागता बने रह. मेरे कारण अपना प्राण मत दे, अब मेरी प्राण रक्षा प्रतीकार साध्य नहीं है. हे सखि शशिलेखा ! ऐसा कहेजानेपरभी वह दुरात्मा मेरा स्वामी समर्थ होनेपरभी अनुरागमें बद्ध होनेके कारण वहांसे न हटसका और व्याधसे मारा गया मरते समय एक तक दृष्टिसे मुझको देखता तथा निम्नलिखित पद्य पढता कथावशेष हो गया, पद्य यह है:--

तौ सौहार्दव्यसनरसिकौ तौ कलानां विदग्धौ
सप्रेमाणौ सपदि शिवयोस्तौ तुलामाप्नवन्तौ ।
जातौ वंशे महति किल तौ धर्मशृंगारिणौ तौ
प्राणांतेऽपि त्रुटति न ययोर्गवयोः प्रेमतन्तुः ॥ ९ ॥

प्रेमजन्य सुखके थे दो हम रसिक विदग्ध कलामें थे
गिरिजा शिवके सम हम दोनों संयुत तथा प्रेमसे थे ।

धर्म शृंगारी थे हम दोनों लेंगे जन्म बडे कुलमें
प्रेम तन्तु जिन हम दोनोंका फटा न मृतिकेभी दिनमें ॥ ९ ॥

तत्परोक्षे त्वहं व्याधशरैरभिन्नैव स्वामिशोकविदीर्णहृदया मृताऽस्मि। तेन स्वामिभक्तिजन्मना पुण्येन जातिस्मरत्वं प्राप्ता राजकुमारी वृत्ताऽस्मि। तदस्मिन् जन्मनि तैस्तैर्गुणैस्तस्य स्मरंती यत्नादपि तमनाप्नुवती पुरुषान्तरं वीक्षितुमपि नोत्सहे किं पुनर्वरीतुम्। शशिलेखोवाच। भर्तृदारिके स इदानीं क्वास्तीति जानाति भवती। कुमारिकोवाच। जातिस्मरत्वेनाहं पूर्वजन्मवृत्तान्तं स्मरामि। न तु स मम प्राणेश्वरो यत्रास्ति तदपि जानामि। स इदानीं जन्मान्तरे कृतदेहान्तरपरिग्रहः कथं मया परिचेतव्य इत्यभिधाय रुरोद। शशिलेखोवाच। भर्तृदारिके समाश्वसिहि समाश्वसिहि। दैवाधीनोऽत्र प्रतीकारः। ततस्तेन स्त्रीवेषधारिणा शशिदेवेन सा कथा मूलदेवाय कथिता। स्वयं पुनरागत्य कुमारीसंनिधानमलञ्चक्रे। मूलदेवस्तु चित्रविद्यायां साभ्यासस्तत्कथानुसारेण सकलं हरिणविवर्त्तं चित्रपटस्यैकदेशे लिखित्वा द्वितीयप्रदेशे तां राजकुमारीमात्मानं च लिलेख। पश्चात्तं चित्रपटं राजकुलमागत्य कुमार्यै दर्शयामास। कुमारी तं दृष्ट्वा पूर्वजन्मवृत्तान्तं स्मृत्वा रोदिति स्म। तां च रुदतीं दृष्ट्वा शशिलेखोवाच। कुमारि भवत्या किमिति रुद्यते। रे पाप चित्रपटधारक धूर्त किं दर्शितवानसि येन मम स्वामिन्याश्चेतसि कष्टमुत्पद्यते। कुमारिकोवाच। सखि न वक्तव्या परुषा वागस्मै। नायं पापो न वा धूर्तः। किं तु मम प्राणनाथोऽयमेवेति जानीहि। शशिलेखोवाच। कथं परिचेतव्यः। कुमारिकाऽब्रवीत्। परिचित एवानेन चित्रपटविवर्तेन। शशिलेखोवाच। चित्रं धूर्तः किं दर्शयितुं न क्षमते। कुमारिकोवाच। क्षमते यदि जानाति। मम जन्मान्तरकथां धूर्तः कथं जानीयात्। शशिलेखोवाच। यदि भवत्या क्वापि प्रकाशिता स्यात्तदा जानाति। कुमारिकोवाच। मया त्वय्येव प्रकाशितम्। शशिलेखोवाच। तत्सुहृदि प्रकाशितं गोप्यम-

प्रकाशितकल्पमेव । यदि मदन्यः कोऽपि न जानाति तदिदानीमय-मेव भवत्याः स्वामीति निर्णीयते । तदनंतरं मूलदेवस्तया वृतः । पश्चात्तत्सर्वं राज्ञे निवेद्य तया कन्यया सह तौर्यत्रिकपुरस्सरं मूल-देवस्य विवाहं कारयामास । चित्रविद्ययैव मूलदेवो लब्धमनोरथो बभूव । तथा हि--

इस प्रकार मेरे स्वामीका परोक्ष होगया. उसके शोकसे मेरा हृदय फट गया, मैं व्याधके बाणके लगे विनाही मरगयी. सो हे सखि ! उस स्वामिभक्तिजन्य पुण्यसे मैं इस जन्ममें राजकुमारी हुई हूँ ! और यह उसी भक्तिका प्रभाव है कि इस जन्ममेंभी मेरी जातिस्मरता नहीं गई है, हे सखि शशिलेखे ! जब मैं स्वामीके उन गुणोंको याद करती हूँ तो मेरा जी पुरुषान्तरके तरफ ताकनाभी नहीं चाहता, शादी करनेकी तो बातही क्या ? यह सुन शशिलेखा बोली कि, हे भर्तृदारिके ! क्या तू यह जानती है कि, तेरे प्राणेश्वर इस समय कहां है ? यह सुन राजकुमारी बोली कि, हे सखि ! मैं सिर्फ इतनाही कह सकती हूँ कि, मैं पूर्व जन्ममें कौन थी और मेरे साथ कौन कौनसी घटना हुई थी पर यह नहीं जानती कि मेरे प्राणनाथ इस समय कहां हैं. भला मैं उनको इस जन्ममें कैसे पहँचान सकती हूँ क्योंकि उन्होंने तो दूसराही शरीर धारण किया होगा. बस ऐसा कहकर वह राजकुमारी खूब जोरसे रोने लगी. यह देख शशि-लेखा बोली कि, हे भर्तृदारिके ! इस असाध्य व्याधिका प्रतीकार दैवा-धीन है ऐसा जानकर धीरज धरो, ऐसा कहकर स्त्री वेशधारी शशिदेवने जाकर यह वृत्तान्त मूलदेवसे कह सुनाया, और पहलेके समान आकर राजकुमारीकी सेवा टहलमें लग गया. मूलदेव चित्रविद्यामें बडा प्रवीण था, इसलिये हरिणका सारा विवर्त्त चित्रपटके एक भागमें लिखकर चित्रपटके दूसरे भागमें उस राजकुमारीके समेत अपना चित्र खींचडाला. इसके पश्चात् वह उस चित्रपटको लेकर राजाके द्वारपर गया, और उसी राजकुमारीको देखाने लगा. उस चित्रको देखतेही राजकुमारीको पूर्व जन्मके सब वृत्तान्त उसी दम याद आगये और वह खूब जोरसे विलाप करने लगी, यह देख शशिलेखाने पूछा कि, रे पापी चित्रपटधारक ! बता तूने मेरी स्वामिनीको क्या देखाया है ? जिससे कि इसके हृदयमें बडा कष्ट उत्पन्न हुआ है, यह सुनकर राजकुमारी बोली कि हे सखि ! ऐसा ...ेर

वचन फिर कभी इससे मत कहियो, यह न तो धूर्त है न पापी. किन्तु जानो कि, यही मेरा प्राणनाथ है. यह सुन शशिलेखा बोली कि, हे सखि ! तूने यह कैसे जाना ? राजकुमारी-मैंने इस चित्रपटके विषर्तसे जाना कि यही मेरा स्वामी है, यह सुन शशिलेखा बोली-धूर्त क्या ऐसा चित्र बनाकर देखा नहीं सकते ? यह सुन राजकुमारी-हां समर्थ हो सकता है. यदि वह जानता हो. पर विचारा धूर्त मेरे जन्मान्तरकी कथा भला क्या जाने, यह सुनकर शशिलेखा-शायद यह हाल तूने किसीसे कहा हो. यह सुन राजकुमारी नहीं नहीं मैंने तेरे सिवाय यह हाल किसीसे भी नहीं बताया. यह सुन शशिलेखा बोली-तो मित्रसे कही गई गुप्तबात प्रकाशित हो जाय यह कब सम्भव है. सो हे सखि ! यदि तूने मेरे सिवाय दूसरेसे यह हाल नहीं कहा है तो मेरा पक्का निर्णय है कि, यही तेरा प्राणपति है. यह सुनकर उस राजकुमारीने मूलदेवके साथ विवाह करनेका प्रण करलिया, धीरे धीरे यह वृत्तान्त राजाके कानतक पहुँचा. उसने बड़ी धूम धामके साथ अपनी कन्याका परिणय मूलदेवके साथ कर दिया, मूलदेव भी चित्रविद्याके प्रभावसे लब्ध मनोरथ होकर सुखसे वहां ही रहने लगा. कहा गया है कि:-

जायते न भुवि विद्ययाऽपि या वेदशास्त्रविदुषां महेश्वरात् ।
चित्रगीतकविताकलाविदां सापि सिद्धिरुपविद्यया भवेत् ॥७॥

इति पुरुषपरीक्षयां चित्रविद्यकथा ॥

वे नर भी जो वेदशास्त्रके हैं पण्डित वर
विद्यासे जो सिद्धि प्राप्त करते नाहिं नृपवर ।
पर करते वे सिद्धि प्राप्त उपविद्यासे हैं
जो बुध गायन चित्रकला कविताओंमें हैं ॥ ६ ॥

इति चित्रविद्यकथा समाप्त ॥

---

२० गीतविद्यकथा ।

तद्यथा--गीतेन विद्यया यस्तु प्रमोदयति जीविनः ।
गीतार्जितयशोराशिर्गीतविद्यः स उच्यते ॥ १ ॥

गीत विद्य वह है:-

मनुज जो करता निज गीतसे मुदित मानवको इस लोकमें ।
फिर लहा जिसने यश राशि है नरपते ! वह गायनविद्य है ॥ १ ॥

बभूव गोरक्षपुरराजधान्यामुदयसिंहो नाम राजा । स च सर्वगुणानामनुरागी विशेषज्ञो वदान्यश्च। तेन गुणिनस्तमाश्रयंति। एकदा तु कलानिधिनामा गायकस्तीरभुक्तिराष्ट्रात्तत्राजगाम । राज्ञे देवार्चनकाले गायन्स सर्वैः सभास्तारैः स्तुतो राज्ञा कांचनैः पूजितश्च । तस्य स्तवमाकर्ण्य पूजां च दृष्ट्वा तद्देशीयगायकाः सामर्षा बभूवुः । तेन समं बद्धस्पर्द्धास्तस्य निन्दां चक्रुः । राज्ञे च निवेदयामासुः। देव गायकोऽसौ विदेशी नाममात्रेण कलानिधिरस्ति । गीतकलां कामपि न जानाति । देव! कथमेनं पुरस्करोषि-

गोरक्षपुर (गोरखपुर) राजधानीमें एक उदयसिंह नामका राजा राज्य करता था, वह बडाही गुणानुरागी विशेषज्ञ तथा वदान्य राजा था. जिस कारण बहुतस विपश्चित उसके आश्रयमें रहा करते थे, एक समय एक गायक जिसका नाम कलानिधि था. मिथिलादेशसे इसके यहां आया. और इसके पूजनके समय गान करने लगा जिसको सुनकर सभास्तारोंने उसकी बडी प्रशंसा की, राजाने भी बहुतसे सुवर्ण देकर उसका सम्मान किया. यह देखकर उस देशके गायकोंको बडी ईर्षा हुई. वे मारे ईर्षाके जलने लगे, और स्पर्द्धाके साथ २ उस विचारे परदेशी, गायककी बडी निन्दा करने लगे और राजासे कहा कि हे देव ! यह एक परदेशी गायक है, आप विश्वास रखिये कि यह नाम मात्रके लिये ही कलानिधि है, कला क्या वस्तु है यह तो इसे अणु मात्र भी ज्ञान नहीं तथापि देव इसे पुरस्कार दे रहे हैं: यह देख हमको खेद होता है, हे देव ! देखियेः-

अविज्ञत्वं यथा राज्ञो गुणिनामपरिग्रहात् ।
परिग्रहाच्च मूर्खाणां तथा लोकेषु जायते ॥ २ ॥

ध्रुव अनादरसे बुधके यथा अधिक सूचित है नृप मूर्खता ।
अबुधके नृप ! आदरसे तथा प्रकट है जगमें नृप मूर्खता ॥ २ ॥

राजोवाच । अरे गायकाः ! एतस्य गीतेन मम हृदयममृतस्नातमिव भवति । तेनाहमेनं पुरस्करोमि । यूयमनुभवविरुद्धं किं वदथ

यदयं गुणी नास्तीति । गायका ऊचुः । तर्हि मध्येसभं तस्यास्माकं च गीतकलां विचारयतु देवः । राजोवाच । कलानिधे देहि त्वमेतेषामुत्तरम् । कलानिधिरुवाच-

यह सुनकर राजा बोला कि, रे गायकों ! इस विदेशी गायकका गान सुनकर मुझे तो ऐसा जान पडा कि, मेरा हृदय सुधाह्रदमें मग्न है और इसी कारणसे मैंने इसे पुरस्कार भी दिया है. फिर यह गुणी नहीं है यह तुम लोगोंकी अनुभव विरुद्ध बातें सुनकर मुझे बडा आश्चर्य जान पडता है, सो कहो इस अनुभव विरुद्ध वचनका कारण क्या है ? यह सुन गायकोंने कहा कि, हे देव ! यदि देवकी ऐसी धारणा है कि. यह विदेशी कलानिधि हम गायकोंसे गीतविद्यामें अधिक है तो देव विलम्ब न करें. देव इस पण्डितसभामें खुद परीक्षा करलें कि, हम अच्छे हैं कि, कलानिधि. यह सुन कर राजाने कहा कि, हे कलानिधि ! अब तुमही इनको उत्तर दो. यह सुन कलानिधि बोला हे देव ! सुनियेः-

श्रोता यदासीद्धरसिंहदेवो गाताऽहमासं नृपते तदैव ।
मया समानं मधुरस्वरेण न पञ्चमं गायति कोकिलोऽपि॥३॥

जब नरपति हरिसिंहदेव श्रोता होते तो
क्षितिपालक ! हम तथा गान करते होते तो ।
मम स्वर सम मधुर स्वरसे कोकिल पक्षी भी
कर सकता है गान स्व पंचमका न कभी भी ॥ ३ ॥

अपि च-

यः कर्णपातव्यसुधारसेन श्रोतारमाराधयति स्वरेण ।
दिव्येक एवास्ति स वै सुरर्षिर्भूमावहं गायक एक एव ॥ ४ ॥

और भीः-

कर्णोंको जो अमृत समान प्रमद देता है
निज स्वरसे श्रोताको जो फिर खुश करता है ।
है वह एक सुरर्षि, स्वर्गमें जो है बसता
भूपे गायक श्रेष्ठ एक मैं हीं हूँ बसता ॥ ४ ॥

गायका ऊचुः । देव महानस्य मदस्तद्विचारयतु भवान् ।

राजोवाच । अहो तीरभुक्तीयाः स्वभावाद्गुणगर्विण एव भवंति । कलानिधिरुवाच । देव नाहं गर्वी किंतु यथार्थं निवेदयामि । मया गातव्यं भवदीयगायकैश्च गातव्यं तदुभयगीतविशेषः केन विचारणीयः । यतः—

यह सुनकर गायकोंने कहा कि, हे देव ! देखिये यह कैसा घमंडी है. यह सुन राजा बोला सचमुचमें तिरहुतके निवासी मनुष्य अपने गुणोंके बडे ही गर्वी होते हैं. यह सुनकर कलानिधि बोला कि, हे देव ! मैं गर्वी नहीं हूँ. किन्तु मैं सच कहता हूं यदि मैं यहां गाऊँ और आपके गायक भी गावें परन्तु यहां यह कौन निर्णय करेगा कि, विशेषता किसके गीतमें हुई. क्योंकिः—

हरो वा हरसिंहो वा गीतविद्याविदो स्थितौ ।
हरसिंहे गते स्वर्गं गीतवित् केवलं हरः ॥ ९ ॥

जगतमें हर या हरसिंह ही नृपति ! गायन विद्य प्रसिद्ध थे ।
सुरपुरी हरसिंह गये अब गिरिश केवल गायन विद्य हैं ॥९॥

यदि स परमेश्वरः साक्षादागत्य विचारयति तदाऽहं परस्पर्द्धया गायामि । गायका ऊचुः । देव परमेश्वरो भगवान् दुर्लभ एव । अन्यमध्यस्थमयं न स्वीकुरुते ततो मध्यस्थापरिग्रहः कलानिधेः पराजयलक्षणं दृश्यते । कलानिधिरुवाच । एवं चेत्तर्हि युष्माभिरेव स्वीक्रियतां मध्यस्थः । तस्यैवाग्रे गास्यामि । गायका ऊचुः । एतद्देशीयो मध्यस्थोऽस्मत्पक्षपाती ज्ञातव्यः । ततो गीतविदो हरिणा एव भवंति । ते पशवः कस्यापि पक्षपातिनो नो भविष्यंति । तेषामग्रे गायामः । कलानिधिरुवाच । हरिणाः पशवोऽपि गीतरसलंपटा येन केनापि गीतेनाहृता भविष्यंति । यदि पशव एव मध्यस्थास्तदा गावोऽपि मध्यस्थाः कृताः । राजा च कौतूहली बभूव । व्यवस्था चेयं यद्गावस्तृषार्त्ताः पानीयमुद्दिश्य गच्छंतो यस्य गीतेन पानं परिहृत्य जलाशयनिकटाद्गीतरसलोभेन निवर्तन्ते स एव गायकः पूज्यो भवति । पश्चात्तथा क्रियमाणे विचारे कलानिधिना जितं राजपूजा च लब्धा—

सो हे देव ! यदि वह भवानी नन्दन भगवान् भव स्वयं आकर मध्यस्थ बने तो मैं परकी स्पर्द्धासे गान अवश्य करूँगा, यह सुनकर गायक बोले कि, हे देव ! वह पार्वतीपति भगवान् चन्द्रमौलि इस संसारमें आकर मध्यस्थ बने यह तो किसी प्रकार सम्भव है ही नहीं. रहे मनुष्य, उनमेंसे तो यह किसीको मध्यस्थ मानताही नहीं बस मध्यस्थका न स्वीकार करनाही कलानिधिके पराजयका लक्षण है, यह सुनकर कलानिधिको क्रोध हो आया, वह क्रोधमें आकर बोला कि, यदि ऐसी बात है तो लो तुम्हीं किसीको मध्यस्थ मान लो. मैं उसीके आगे गाऊँगा, यह सुन गायक बोले कि, यदि हम इस देश वासियोंमेंसे किसीको मध्यस्थ मान ले तो वह हमारा पक्षपातीही जाना जायगा, इसलिये हरिण ' जो कि गीतके बडेही रसिक होते हैं ' मध्यस्थ बनाये जांय, वे पशु हैं वे किसीके पक्षपाती न होंगे, इसलिये हम उनके आगे गान करें. यह सुन कलानिधिने कहा कि, नहीं हरिण पशु होने परभी गीत रसके लंपट होते हैं वे तो जिसी किसी भी गीतसे संमुग्ध हो सकते हैं, सो यदि पशुही मध्यस्थ बनाये गये तो उनमें गायभी आ ही गई. क्योंकि वहभी एक प्रकारका पशुही है इसलिये यहां वही मध्यस्थ बनाई जांय, यह सुनकर राजाकी उत्सुकता बढ गई. इधर व्यवस्था यह हुई कि, गायें तृषासे पीडित हो पानी पीनेके लिये जलाशयकी ओर जाती हो, इसके मध्य हम दोनों गान करें, जिसका गान सुनकर वे जलाशयके निकट जाकरभी गीतरसके लोभके कारण वहांसे लौट आवें वही गायक पूजाका पात्र है, इसके पश्चात् वैसाही किये जाने पर गायक कलानिधिने विजय प्राप्त करके राजासे बडा सत्कार प्राप्त किया. कविकी उक्तिः-

श्रवणहृदयवन्तं प्राणिनं जीवलोके
पशुमपि परितुष्टं गीतविद्यः करोति ।
पशुजनपरितोषे यस्य विद्या समर्था
प्रभवति परितोषस्तद्विदां किं न तस्मात् ॥ ६ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां गीतविद्यकथा ॥

श्रवण हृदयसे युक्त न केवल प्राणीको पर
गीत विद्य करते प्रसन्न पशुको भी नृपवर ।
जिसकी विद्या शक्त तुष्ट करनेमें पशुको
है वह क्या नाहिं शक्त तुष्ट करनेमें बुधको ॥ ६ ॥

इति गीतविद्यकथा समाप्त ॥

---

२१ नृत्यविद्यकथा ।

गेयाभिनेयकाव्यानां विद्यानां तालगर्भिणाम् ।
रसनामाश्रयो नृत्यं तेन तुष्यति शंकरः ॥ १ ॥

गेय तथा अभिनेय काव्य विद्याका आश्रय
जो है तथा रसोंका तालोंका भी आश्रय ।
उसे नृत्य कहते जगमें नृपते ! बुधवर हैं
उससे महा प्रसन्न सदा होते शंकर हैं ॥ १ ॥

भरतस्तु—

इहानुश्रूयते ब्रह्मा शक्रेणाभ्यर्थितः पुरा ।
चकाराकृष्य वेदेभ्यो नाट्यवेदं तु पंचमम् ॥ २ ॥
ऋग्भ्यो नाट्यमभूद्गीतं सामभ्यः समपद्यत ।
यजुर्भ्योऽभिनया जाता रसाश्चाथर्वणाः स्मृताः ॥ ३ ॥

भरतका वाक्यः—

सुना गया है पहले हरिने ब्रह्मासे आवेदन किया
विधिने वेदोंसे निकालकर पंचम नाटक वेद किया ।
ऋग्वेदोंसे नाट्य हुये उत्पन्न सामसे गीत हुये
रस अथर्वसे हुये यजुर्वेदोंसे अभिनय तथा हुये ॥ २ ॥ ३ ॥

तच्च नृत्यं द्विविधम् । तथा च भरतः—

स्त्रीनृत्यमुच्यते लास्यं पुन्नृत्यं ताण्डवं तथा ।
गौरी तुष्यति लास्येन तांडवेन महेश्वरः ॥ ४ ॥

वह नृत्य दो प्रकारका है, यथा भरतः—

स्त्री नृत्य 'लास्य' नरपाल कहा गया है
पुंनृत्य 'ताण्डव' तथैव कहा गया है ।

होती प्रसन्न गिरिजा द्रुत लास्यसे है
होते प्रसन्न फिर ताण्डवसे गिरीश ॥ ४ ॥

तथा च–
देखिये:–

न तच्छास्त्रं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
न तज्ज्ञानं न वा योगो नाटके यन्न विद्यते ॥ ५ ॥

ऐसा न कोई नरपाल ! शास्त्र है कोई न विद्या न कला न शिल्प है ।
है ज्ञान कोई न तथा न योग है जो भूमिपै नाटक शास्त्रमें न है ॥ ५ ॥

ततः शंकरप्रीतिहेतुत्वाददृष्टफलं द्रष्टुः प्रीतिहेतुत्वाद्दृष्टफलं चेति दृष्टादृष्टसुखदं नाट्यम् । भरतोऽपि तथैवाऽह । तद्यथा–

कहा गया है कि, नाटक शास्त्र अदृष्ट तथा दृष्ट दो प्रकारके सुखोंका दाता है. यह शंकरकी प्रीतिका कारण है. उनकी प्रीतिसे उत्पन्न जो सुख है वह अदृष्ट है. क्योंकि वह सुख परलोकमें ही प्राप्त होता है और यह द्रष्टाओंकी भी प्रीतिका हेतु है क्योंकि द्रष्टागण इसे देखतेही आनन्दमें मग्न होजाते हैं इसलिये इसे दृष्ट सुखभी कहते हैं क्योंकि इस सुखका अनुभव इसी लोकमें किया जाता है, नाटकाचार्य भरतनेभी ऐसाही कहा है:–

लीलेयं धनिनां धृतिस्तु सुखिनां शिक्षा प्रमत्तात्मनां
संसारस्थितिरीदृशीति विरतिर्नानाविधा योगिनाम् ।
प्रीतिः काव्यरसाशिनां नवनवा कीर्त्तिः कवीनामियं
विद्या नाटकसंज्ञिका भगवती विश्वोपकारक्षमा ॥ ६ ॥

नाटकको धनवान मनुज हैं खेल समझते
देख इसे सुखयुक्त मनुज धीरज हैं धरते ।
प्रमत्तजन पाते शिक्षा हैं फिरभी इससे
जगको ऐसा जान विरत होते मुनि इससे ॥
देता है फिर कीर्ति प्रीति नव नव कविओंको
अनुभव जो करते सदैव हैं काव्य रसोंको ।
नाटक नामक यह विद्या जगती प्रतिपालक
सकल विश्वका है अतिही जगमें उपकारक ॥ ६ ॥

बभूव गौडदेशे लक्ष्मणसेनो नाम राजा । तस्योमापतिधरो नाम मंत्री गंधर्वनामा नटश्चासीत् । एकदा राज्ञः सभावसरे स नटः कृतस्नानश्चंदनबिंदुभूषितललाटस्तत्राजगाम । तं दृष्ट्वा मंत्रिणा कौतुकेनोक्तम् । अये गंधर्व सबिंदुमौलिर्दृश्यते । तत्किन्नटं नाम । गंधर्व उवाच। उमापतिधर पश्य मे कंठे चंदनबिंदुम्,तस्मान्नटोऽस्मि। [एतेन त्वमुमापतिधरोनाम वृषापरपर्यायः अहं तु नटोऽर्थाच्छंकरोऽस्मि त्वदारोहणकर्त्तेति सूचितम्] तच्छ्रुत्वा राजा स्मेराननो बभूव। मंत्र्युमापतिधरश्चुकोपोवाच च । अरे नटाधम चारण जायाजीव कथमेतादृशं प्रगल्भं वदसि । तव वचनेनाहमुमापतिधरस्तत्किमनड्वान् भवामि । नट उवाच । भवताऽप्युक्तं यथा ककारः शिरोबिंदुना कं भवति तथा त्वमपि नटमिति । नटं तु कुपठितं मूर्खं क्लीवं चाभिधत्ते ? तदुत्तरं मया कृतं यदहं बिन्दुद्वयात्मकेन विसर्जनीयेनालंकृतः क इव नटः सर्वज्ञो भवामि । [नट इति सर्वज्ञ इति च शंकरस्य नामनी] उमापतिधर उवाच । सर्वज्ञोऽसि तर्हि नाटय भवभूतिकविकृतस्योत्तररामचरितनाटकस्य छायाभिधानमङ्कमाश्रित्य रामचेष्टितम् । नट उवाच । नाटयिष्यामीति । राजा सकौतुकस्तस्मै नटाय तथा कर्त्तुमाज्ञां ददौ । पश्चाद्वृत्ते रंगावसरे रामभूमिकां परिगृह्य नटो नृत्यमारेभे । नृत्यंश्च सीतास्पर्शार्थी स्पर्शमनासाद्य भूमौ निपतितो रामतादात्म्यात्तनुं त्यक्त्वा मुक्तो बभूव । श्लोकस्तु—

गौडदेशमें लक्ष्मणसेन नामका एक राजा राज्य करता था, उसके यहां उमापतिधर नामक एक मंत्री और गंधर्व नामका एक नट रहा करता था, एक दिन वह नट स्नान करके तथा अपने विशाल भालमें चन्दनका बिन्दु लगाकर राजाकी सभामें आकर बैठ गया. यह देख राजमंत्री उमापतिधरने उसकी दिल्लगी उडाई. उसने कहा कि रे गन्धर्व ! तू आज सबिन्दु मौलि दीखता है तो क्या तू नटं है ? यह सुन गन्धर्व झट ताड गया कि यह दिल्लगी कर रहा है तो उसने उत्तर दिया नहीं साहब देखिये मेरे कंठमें चन्दन बिन्दु है सो मैं नटं नहीं हूँ किन्तु

नटः हूँ, (अर्थात् तुम उमापतिधर अर्थात् बैल हो और मैं नटः अर्थात् शंकर तेरे ऊपर आरोहण कर्ता हूँ) यह सुनकर राजा लक्ष्मणसेनसे रहा न गया, वह खिल खिला कर हंसने लगा. यह देख मंत्री उमापतिधर मारे क्रोधके आग होगया और बोला कि, रे नराधम. जायाजीव गन्धर्व तूने इतनी बडी ढिठाई कहां सीखी है, क्या मैं तेरे कहनेसे बैल बनूंगा यह सुन नटने कहा कि हे मंत्रिराज ! आपने भी तो कहा है कि जिस प्रकार ककार शिरोबिन्दुसे युक्त हो कं हो जाता है उसी प्रकार शिरोबिन्दुसे युक्त तू नटं है, 'नटं' तो जो कुपठित या नपुंसक है उसे कहते है, मैने भी उसका उत्तर दिया कि मैं विसर्जनीयसे अलंकृत कः अर्थात् ब्रह्माके समान नटः अर्थात् सर्वज्ञ हूँ। (नट और सर्वज्ञ श्रीशंकरके नाम हैं) यह सुनकर उमापतिधरने कहा कि, रे नट ! यदि तू सर्वज्ञ है तो ले भवभूति कवि प्रणीत उत्तररामचरित नामक नाटकके छायाभिधान अंकके आधारपर रामका दृश्य दिखा .नटने उत्तर दिया. बहुत अच्छा दिखाता हूँ. देखिये यह सुनकर दृश्य देखनेके लिये भारी उत्सुकताने राजाके हृदयमें स्थान बना लिया और उसने उस नटको दृश्य देखानेकी आज्ञा देदी, जब नाटक देखानेका अवसर प्राप्त हुआ तब उस नटने रामकी भूमिकाके आधारपर नृत्य करना शुरू किया, नृत्य करते समय वह सीताका स्पर्शाभिलाषी हुआ पर स्पर्शको न प्राप्त करके बेहोस हो पृथ्वीके ऊपर गिर पडा और खुदको राम स्वरूप समझनेके कारण शरीरको त्यागकर मुक्तिको प्राप्त होगया. कविकी उक्तिः—

साऽरण्यानी स वटविटपी हन्त सैव स्थलीयं
सीता नैव स्पृशति हृदयं सोऽहमेवास्मि रामः ।
एवं कान्ताविरहविचलद्रामतादात्म्यदिग्धो
नृत्यावेशान्मुनिरिव नटो विष्णुसायुज्यमाप ॥ ७ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां नृत्यविद्यकथा ॥

हाहा हाहा ! वन वट वही है स्थलीभी वही है
सीता छूती नाहिं हृदयको रामभी मैं वही हूँ ।
निजको सीता विरह विमना राम ही जान नृत्य-
करके मुनिसा उस सुनटने विष्णु सायुज्य पाया ॥ ७ ॥

इति नृत्यविद्यकथा समाप्त ॥

२२ इन्द्रजालविद्यकथा ।

तद्यथा–वस्तुन्यप्यतथाभूते तथाभावप्रदर्शनम् ।
इन्द्रजालमिति प्राहुस्तद्विज्ञास्त्वैन्द्रजालिकाः ॥ १ ॥

इन्द्रजालविद्य वह हैः–
असत्य वस्तुमें यथार्थ वस्तुकी प्रतीतिको
कहा सुविज्ञ लोकने नृपाल ! इन्द्रजाल है ।
इन्द्रजाल शास्त्रके मनुष्य जो अभिज्ञ है
पुकारते उन्हें विदग्ध वर्ग इन्द्रजालिक ॥ १ ॥

आसीत् संवलिवने पक्षधरपंडितो नाम ब्राह्मणः । स च सर्वेन्द्रजालविद्याविज्ञः कुतूहलावसरे राजानं परितोषयति साश्चर्यं च कुरुते।एकदा कस्मिन्नप्युत्सवे राजदेवनाम्नस्तस्य राज्ञो जामाता राजस्वभावात्सुखी क्षुधाऽसहिष्णुः पाकावेक्षानिरपेक्ष एव तुरगमारुह्य दिवा प्रथमप्रहरे भोजनार्थी श्वशुरगृहं प्रचलितः । तदवगत्य राजदेवश्चिंतयामास । यदयं जामाता राजा परममान्यो भोक्तमायाति । मम गृहे पाकः संपन्न एव नास्ति । तत्किं करवाणि । तं तथा चिंताव्याकुलितं दृष्ट्वा पक्षधरपंडित उवाच । भो राजदेव ! त्वया न भेतव्यम् । न भविष्यति तव लघुत्वम्।राजानमानेतुमहं गच्छामि ततस्तथा तथा कौतुकं दर्शयितव्यो मया वर्त्मनि राजा यथा पाके संपन्ने तव गृहमागमिष्यति । पश्चात्तथोपाये पक्षधरपण्डितेन क्रियमाणे राज्ञा पथि द्वौ मेषौ युद्धं कुर्वाणौ दृष्टौ। तयोर्युद्धे विश्रान्ते द्वौ मल्लौ परस्परं स्पर्द्धमानौ युद्ध्यमानौ च दृष्टौ । ततः कवलविगलितशफरीकदंबकोद्वर्तितचमत्कारी नद्यां बको दृष्टः । पश्चात्सारमेयैरनुगम्यमानः कुरंगो दृष्टः । तद्दर्शनकौतुकेन तावत्कालस्तस्य महीपतेर्वर्त्मन्येवातीतो यावद्राजदेवगृहे सव्यंजनमन्नं सिद्धमभूत्। तदनंतरं तेनाहूयमानो राजा भोजनं चकार । मेषयुद्धादिकं मृषैव मया दृष्टमिति ज्ञात्वा साश्चर्यो रत्नैस्तमिन्द्रजालविद्याविज्ञं पक्षधरपंडितं पूजयामास । श्लोकस्तु–

संवलिवन नामक नगरमें एक ब्राह्मण रहता था, उसका नाम था पक्षधरपंडित. पक्षधर पडित इन्द्रजाल विद्याका बडा विद्वान् था. वह इस विद्यामें ऐसा प्रवीण था कि, अपनी विद्याके प्रभावसे हमेशा राजाको सन्तुष्ट तथा साश्चर्य किया करता था. एक दिन राजाका जामाता जिसका नाम राजदेव था. किसी एक उत्सवमें अपने श्वसुरसे निमंत्रित हुआ, वह उस उत्सवके दिन घोडेके ऊपर सवार हो भोजन करनेके लिये अपने श्वसुरके यहां चला. उस समय एक पहरभी दिन चढा न था और राजदेव निकट पहुँच गया. यह देख राजा अपने मनमें यों सोचने लगा कि, यह मेरा जामाता 'जो कि मेरा परम मान्य है' भोजनार्थ आ पहुंचा, पर मैं देखताहूँ कि, मेरे यहां अभीतक पाकसंपन्नही नहीं हुआ है, तो यहां क्या करना उचित है, इस प्रकार चिन्तासे राजाको व्याकुलित देखकर पक्षधर पण्डितने कहा कि; हे देव! आप डरिये मत आप विश्वास रखिये कि आपकी कदापि लघुता न होगी. आप देखते रहिये मैं ऐसा प्रबन्ध करूंगा कि, पाक सम्पन्न होने परही आपके जमाता यहां पहुँचेंगे, देखिये यह मैं चला. ऐसा कहकर पण्डित पक्षधर वहांसे चला और रास्तेमें इन्द्रजाल देखाने लगा. कुछ दूर जाकर राजा राजदेव देखता क्या है कि दो मेष परस्पर रास्ते पर लड रहे हैं, जब इन दोनोंका युद्ध विश्रान्त हो गया तब राजाने घोडेको आगे बढाया, कुछ दूर जाने पर फिर क्या देखता है कि, दो मल्ल परस्पर कुस्ती खेल रहे हैं, इस दृश्यको भी देखकर राजा आगे बढा, वहां भी इसने एक बडा ही आश्चर्य जनक दृश्य देखा वह यह कि एक नदीमें एक चमत्कारी बकुला जिसके मुखसे कवली सफरीका कदंब गिर पडा था, पानीके ऊपर लोट रहा है, और कुछ आगे बढनेसे राजाने एक और दृश्य देखा कि एक मृग भागता जा रहा है और एक कुत्ता जी जानसे उसे खदेडता जा रहा है, इन दृश्योंको देखते देखते राजा राजदेवको मार्गमें बहुत समय व्यतीत होगया, इधर उतनेहीं समयमें यहां पाक भी सम्पन्न होगया, इसके पश्चात् राजाने आकर अपने श्वसुरके यहां भोजन किया, और जब उसको यह ज्ञात हुआ कि मैंने जो मेषादिकोंके युद्ध आदि दृश्योंको देखा है वे सब मृषाही थे तो वह बडा आश्चर्यित हुआ और उस पक्षधर पण्डितका जो कि इन्द्रजाल विद्याका बडा विद्वान् था, रत्नके द्वारा बडा सत्कार किया. यहां कविकी उक्तिः—

राजा ददाति रत्नानि बुधाः पश्यंति विस्मिताः ।
ऐन्द्रजालिकविद्याभिः के भवंति न मोहिताः ॥ २ ॥
इति पुरुषपरीक्षायामिन्द्रजालविद्यकथा ॥

राजा रत्न सुविज्ञ पक्षधरको देते हैं
सकल विज्ञ आश्चर्यित होकर देख रहे हैं।
इन्द्रजालके अभिज्ञकी विद्यासे नृपवर
जगमें होते कौन मोहके वशमें नहिं नर ॥ २ ॥
इति इन्द्रजालविद्यकथा समाप्त ॥

---

२३ हासविद्यकथा ।

तद्यथा--हासेन विद्यया यस्तु प्रभोर्भवति वल्लभः ।
विकृतांगवचःकृत्यैर्हासविद्यः स उच्यते ॥ १ ॥

हासविद्य वह है:--
वचनको कृतिको फिर अंगको विकृत जो करके नर हाससे ।
स्वप्रभुका बनता प्रिय है महा नरपते वह हास सु विद्य है ॥ १ ॥

बभूव कांचीनाम राजधानी । तस्यां सुप्रतापो नाम राजा। तत्रैकदा कस्यापि धनिकस्य धनं चोरयन्तश्चत्वारश्चौरा संधिद्वारि प्रशास्तृपुरुषैः प्राप्ताः शृंखलेन बध्वा राज्ञे निवेदिताश्च । राजा च घातकपुरुषानादिदेश । रे रे घातकपुरुषाश्चतुरोऽपि चौरानेतान्नगराद्बहिर्नीत्वा शूलमारोप्य मारयत । तथा हि–

कांची नामकी एक राजधानी थी, उसमें सुप्रताप नामका राजा राज्य करता था, एक समय चार चोर उस नगरके किसी एक धनवान् मनुष्यके घरमें धन चोरानेके अभिप्रायसे घुसे, जब वे पर्याप्त धन चोराकर घरसे बाहर निकल रहे थे कि, इतनेमें राजाके प्रशास्तृ पुरुषोंने उनको सेंधके द्वार पर ही पकड लिया, और उनको शंकलसे कसकर बांध राजाके पास पेस किया, यह देख राजाने चाण्डालोंको उन चारों चोरोंको शूली पर चढा कर मार डालनेके लिये आदेश दिया, क्योंकि कहा भी है:--

संवर्द्धनं च साधूनां दुष्टानां मर्दनं तथा ।
राजधर्मं बुधाः प्राहुर्दण्डनीतिविचक्षणाः ॥ २ ॥

सुजनका परि पालन दुष्टका हनन भूपतिका निज धर्म है ।
कथन है बुधका यह, दण्डनीति नर आगममें सुप्रवीण जो ॥ २ ॥

ततो राजाज्ञया घातकपुरुषैस्त्रयश्चौराः शूलमारोप्य हताः । चतुर्थेन चिन्तितं यत्—

इसके पश्चात् चाण्डालोंने राजाके आदेशसे तीन चोरोंको शूलीके ऊपर चढाकर मार डाला, अब रह गया एक चोर, उसने यह देखकर यों सोचाः—

प्रत्यासन्नेऽपि मरणे रक्षोपायो विधीयते ।
उपाये सफले रक्षा भवत्येव न संशयः ॥ ३ ॥

निकटमें नरके यदि मृत्युहो तदपि रक्षण यत्न करे वह ।
ध्रुव स्वरक्षण है उसका जब सफलता फलता निज यत्न है ॥ ३ ॥

अपि च—

व्याधिना पीड्यमानोऽपि मार्यमाणोऽपि भूभुजा ।
प्रत्यायाति यमद्वारात् प्रतीकारपरो नरः ॥ ४ ॥

औरभीः—

मनुजहो यदि पीडित रोगसे नृप उन्हे यदि हो फिर मारता ।
तदपि वे फिरते यम द्वारसे यदि कहीं करते प्रतिकार हैं ॥ ४ ॥

चौर उवाच । रे रे घातकपुरुषास्त्रयश्चौरा युष्माभिर्हता एव । इदानीं राजाग्रे मद्वचनं श्रावयित्वा मां मारयत । यतोऽहमेकां महतीं विद्यां जानामि मयि मृते साऽस्तं यास्यति । राजा तु तां गृहीत्वा मां मारयतु । तेन विद्या मर्त्यलोके तिष्ठेत् । घातका ऊचुः । रे चौर पुरुषाधम ! वधस्थानमानीतोऽसि । किमतोऽपि जीवितु मिच्छसि । कां विद्यां जानासि । कथं वा तवाधमस्य विद्या भूपालेन गृहीतव्या । चौर उवाच । रे घातकाः ! किं यूयं राजकार्यविघ्नं कर्त्तुमिच्छथ । यदि राजा ज्ञास्यति तदाऽवश्यं तेन ग्रहीतव्या मदीयं विद्या । किं च विद्यावान्तःकथंकस्यां पुरुषस्यापि प्रयुणा

प्रमादः कर्त्तव्यः । ततस्तस्य चौरस्य वचनैः स्वामिकार्यानुरोधेन घातकैः सा वार्त्ता राज्ञे निवेदिता । राजा च कौतुकमाकर्ण्य चौरमाहूय पप्रच्छ । राजोवाच । रे कां विद्यां जानासि । चौर उवाच । देव । सुवर्णकृषिं जानामि । राजोवाच । का परिपाटी ? चौर उवाच ! देव सर्षपपरिमाणानि सुवर्णबीजानि कृत्वा भूमावुप्यन्ते मासमात्रेण सर्षपसदृशा एव कंदल्यो भवंति । देवः प्रत्यक्षं पश्यतु । राजोवाच । चौर सत्यमेतत् ? चौर उवाच । देवस्य पुरतः कस्यासत्यभाषणे शक्तिः । यदि मम वचनं व्यभिचरति तदा मासान्ते ममाप्यंतो भविष्यति । तदाऽपि देवः शास्तिकरणे च प्रभुरेव स्थास्यति । राजोवाच । भद्रम् । वप सुवर्णम् । ततश्चौरः सुवर्णं दाहयित्वा सर्षपमात्राणि बीजानि कृत्वा राजान्तःपुरक्रीडासरसस्तटे परमनिगूढस्थाने भूपरिष्कारं कृत्वा बभाषे । देव क्षेत्रबीजे संपन्ने । वप्ता कश्चिद्दीयताम् । राजोवाच । त्वमेव किं न वपसि । चौर उवाच । यदि सुवर्णवपने ममैवाधिकारो भवति तदा किमहं दुःखी भवामि । किं तु सुवर्णवपने चौरस्याधिकारो नास्ति । येन कदाऽपि किमपि न चोरितमस्ति स वपतु । देव एव किं न वपति । राजोवाच । मया चारणेभ्यो दातुं तातचरणानां धनं चोरितम् । चौर उवाच । तर्हि मंत्रिणो वपन्तु । मंत्रिण ऊचुः । वयं राजोपजीविनः कथमस्तेयिनो भवामः । चौर उवाच । तर्हि धर्माधिकारी वपतु । धर्माध्यक्ष उवाच । मयाऽपि बाल्यदशायां मातुर्मोदकाश्चोरिताः । चौर उवाच । यूयं सर्वेऽपि चौराः । कथमहमेव मारणीयोऽस्मि । तच्चौरवचनं श्रुत्वा सभासदः सर्वे जहसुः । राजाऽपि हास्यरसापनीतक्रोधो विहस्याऽह । रे चौर ! न मारणीयोऽसि । हे मंत्रिणः कुबुद्धिरपि बुद्धिमानयं चौरः हास्यरसप्रवीणश्च । ततो ममैव संनिधाने तिष्ठतु प्रस्तावे मां हासयतु मोदयतु च । ततः स चौरो राज्ञा स्वसन्निधाने धृतः ।

श्लोकस्तु–

यह सोच उस चोरने घातकोंसे कहा कि, हे घातकों ! तुमने तो तीन चोरोंको मारही डाला. अब सिर्फ एक मैं ही रह गया हूँ. सो तुम राजाके पास जाकर उससे मेरी एक विनती सुनाओ. तत्पश्चात् मुझको मार डालना. जाकर अपने राजासे कहो कि, मैं एक बडी विद्या जानता हूँ. मेरे मरजाने पर उसका अस्तसा हो जायगा. इसलिये पहले राजा मुझसे वह विद्या सीख ले फिर मेरा मरना तो निश्चित है ही. यदि कहीं ऐसा किया गया तो समझ रखो कि, वह विद्या इस मर्त्यलोकमें रह सकेगी. अन्यथा इसका अन्तही समझो. यह सुन घातकोंने कहा कि, रे अधमचोर ! ... वधस्थानमें लाया गया है, क्या यहां आकरभी तुझे जीनेकी अभिलाषा ... भला तूही बता तेरे समान अधमसे हमारा राजा वह विद्या कैसे ...ीख सकता है. यह सुन चोर कुम्भिलकने कहा कि, हे भाई घातकों ! ... राज कार्यमें बाधा डालो यह तुमको उचित नहीं. तुम पक्का विश्वास ...े रहो कि राजाको यदि कहीं यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वह यह विद्या ...िना सीखे कदापि न रहेगा और यहभी विश्वास रखो कि, जो कोई यह ...र राजाको सुनावेगा वहभी राजासे विना पूरा पारितोषिक पाये न ...गा. यह सुनकर घातकोंने यह वृत्तान्त जाकर राजासे कह सुनाया. यह वृत्तान्त सुनकर राजाको बडा आश्चर्य प्रतीत हुआ. उसने झट उस चोरको बोला लिया. और पूछा कि रे चोर ! बता तू कौनसी विद्या जानता है ? चोर--हे देव ! मैं सुवर्णकी खेती करना जानता हूँ. यह सुनकर राजा--अच्छा बता उसकी परिपाटी क्या है ! चोर बोला--हे सरकार ! पहले सरसोंके प्रमाण सोनेके बीज बनाये जाते हैं. फिर उनको जमीनमें बो देते हैं. जब एक मास व्यतीत हो जाता है तब वे बीज सरसोंके समान अंकुरोंके रूपमें परिणत हो बाहर उग आते हैं महाराज अभी इसकी परीक्षा क्यों नहीं कर डालते. यह सुनकर राजा बोला कि, रे चोर ! क्या यह सच है ? यह सुन चोर--भला किसकी ताकत है कि महाराजके प्रत्यक्ष मिथ्या भाषण कर दे यदि कहीं मेरा कहना झूठा हुआ तो मासके अन्तमें मेराभी मरण होवे ही करेगा. उस समय भी शास्ति कर्ता महाराजही रहेंगे. यह सुन राजाने कहा बहुत अच्छा लो सोना बोओ. आज्ञा पातेही चोरने सोनेको जलाया और सरसोंके समान बीज बनाकर राजाके अन्तःपुरके क्रीडा सरोवरके किनारे एक

गुप्तस्थानमें जमीनको जोत गोडकर तैयार किया और राजासे कहा कि, हे देव ! खेत तथा उसके बीज तैयार हैं अब एक बोनेवाला होना. यह सुन राजा—अरे चोर! तूही क्यों नहीं बो डालता? चोर--हे देव! मुझ चोरको सोना बोनेका अधिकार नहीं. यदि मुझ चोरकोही सोना बोनेका अधिकार रहता तो मैं दुःखही क्यों रहता, सोना बोनेका अधिकारी वही है जिसने कभी किसीकी कोई वस्तु न चोराई हो तो महाराज क्यों नहीं बो डालते. यह सुनकर राजा--रे चोर ! मैंने चारणोंको देनेके लिये अपने पूज्य पिताका धन चोराया था. यह सुन चोर बोला. तो मन्त्रियोंकोही आदेश होजाय, कि वे बोवें. यह सुनकर मन्त्रियोंने कहा रे भाई चोर ! हम राजाके उपजीवी हैं फिर हम विना चोरीके रहें. यह कब सम्भव है. यह सुनकर चोरने धर्माधिकारीसे कहा महाराज ! आपही कृपा करके इन बीजोंको बो डालिये. यह सुनकर धर्माधिकारी बोले रे चोर ! मैंनेभी अपनी बाल्य अवस्थामें अपनी माताके कुछ लड्डू चुराये थे. यह सुन चोर लो तुम सबके सब चोरही निकले. फिर यह क्या कि मैंही अकेला मारा जाऊँ? यह सुनतेही सब सभासद गण खिल खिलाकर हँस पडे. राजाकाभी क्रोध जाता रहा वह हँसकर बोला कि, रे चोर लेअब तू न मारा जायगा. हे मन्त्रियों ! इसमें संदेह नहीं कि, यह चोर कुबुद्धि है तथापि यह बुद्धिमान् तथा हास्यरसमें बडा प्रवीण है. इसलिये मेरेही आश्रयमें रहकर यह समय समयपर हँसाकर मुझको आनन्दित किया करे. वैसाही किया गया. कविकी उक्तिः—

न चौरादधमः कश्चित् स हि हासेन विद्यया ।
मृत्युपाशं समुच्छिद्य राज्ञो वल्लभतां गतः ॥ ५ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां हासविद्यकथा ॥

न चोरसे है नर नीच कोई स्वहास विद्या बलसे तथापि ।
उद्धार पाके वह मृत्यु पाशसे होगया वल्लभ भूपतीका ॥ ५ ॥

इति हासविद्यकथा समाप्त ॥

---

२४ पूजितविद्यकथा ।

सावद्या निरवद्या वा विज्ञभूपालपूजिता ।
भूतये यशसे चैव विद्या भवति तद्विदाम् ॥ १ ॥

विज्ञभूपसे पूजित नृपति! अवद्या विद्या
अथवा बुधनृपसे पूजित निरवद्या विद्या ।
विद्यावानोंको देती ऐश्वर्य महा है
सकल भुवनतलमें देती फिर कीर्ति महा है ॥ १ ॥

बभूव धारायां पुरि भोजदेवो नाम राजा । तस्य पुरतः केनापि कविना पद्यमेकं पठितम् । तद्यथा—

धारा नामक नगरमें भोजदेव नामका एक राजा राज्य करता था. एक समय उसने किसी एक कविके मुखसे एक पद्य सुना. वह यह है:--

क्षीरोदीयन्ति सद्यः सकलजलधयो वासुकीयन्ति नागाः
कैलासीयन्ति शैला दिवि च दिविषदः शङ्करीयन्ति सर्वे ।
यौष्माकीने समन्तात् प्रसरति भुवने शुद्धकीर्तिप्रताने
मद्योषाकाचभूषाः किमिति न सहसा मौक्तिकीयंति भोज ॥ २ ॥

सकल भुवनमें तव विशुद्ध यश फैल गया जब
दुग्ध जलधिके तुल्य त्वरित सब जलधि हुये तब ॥
सकल नाग फिर हुये त्वरित वासुकीके सम हैं
गिरि कैलास समान हुये सुरभी शिव सम हैं ॥
इस हालतमें काचके मम नारी भूषण सब
मोतीके सम क्यों नहीं भोज त्वरित होते अब ॥ २ ॥

तदाकर्ण्य तेन राज्ञा भोजेन काव्यकलापरितुष्टेन तस्मै कविराजाय तुलां परिपूर्य महापरिमाणानि मुक्ताफलानि दत्तानि । तां च मौक्तिकतुलामासाद्य कविः कृतार्थो बभूव । भोजभूपालस्य कीर्तिरियमेकापि गीयत एव मेदिनीमंडले । तथा हि—

यह सुनकर राजा भोज उस कविकी काव्य कलासे बडा सन्तुष्ट हुआ और अमूल्य मुक्ताफलोंको एक तुलामें भरकर उस कविराजको देदिया. वह कविराजभी मुक्तासे पूर्ण तुलाको प्राप्त करके कृतकृत्य हो गया. कविकी उक्ति:--

किं राज्यमविदग्धस्य किं वैदग्ध्यमयच्छतः ।
किं दानं तद्वदान्यस्य येन नाभ्यर्चिता गुणाः ॥ ३ ॥

अबुध जनोंके राज्योंसे जगमें क्या फल है
कंजूसोंकी विदग्धता फिर क्या फल है ।
वदान्य जनके तथा दानसे फिर क्या गुण है
जिससे पूजित नहीं हुये नरपालक ! गुण हैं ॥ ३ ॥

अपि च–

या कोटिशः सुरलताविजिगीषयेव
जांबूनदानि फलति स्म कला कवीनाम् ।
भोजे गते त्रिदिवमुज्ज्वलकीर्तिराशौ
सैवाधुना प्रतिपदं श्रममात्रसारा ॥ ४ ।

इति पुरुषपरीक्षायां पूजितविद्यकथा ॥

औरभीः–

जितनेकी इच्छासे मानो कल्पलताको
कविओंकी जो कला सदा फलती सोनाको ।
उसी कलाका फल प्रतिपद श्रममात्र रहा अब
धवल कीर्ति तति युक्त भोज नृप स्वर्ग गये जब ॥ ४ ॥

इति पूजितविद्यकथा ॥

प्रत्युदाहरणकथाः ।

२९ अवसन्नविद्यकथा ।

राज्ञो वैदग्ध्यदोषेण यस्य विद्याऽवसीदति ।
उक्तोऽवसन्नविद्योऽसौ विद्यापारगमानसैः ॥ १ ॥

जिस राजाके दोषसे खिन्न होती
विद्या जिसकी भूपते ! लोकमें है ।
कहते उसको वे लोक वे खिन्नविद्य
जो विद्याके पारगामी सुधी है ॥ १ ॥

आसीद्गंगादक्षिणकूले राढा नाम नगरी । तत्र निरपेक्षो नाम राजा बभूव । एकदा तस्य राजशब्दप्रतारितः सकलकाविकला-कुशलो वाग्विलासो नाम कश्चित्कविराजो दुर्दैवादेशितस्तत्राजगाम ।

स तस्य राज्ञः प्रियसचिवमुपगम्याह। विचक्षण राजानं दर्शय। सचिवोऽब्रवीत्। कवे किमस्य राज्ञो दर्शनेन प्रयोजनम्। त्वं कवि-रयमविज्ञस्तद्युवयोः समालापसुखं न भवितेति तर्कयामि।

गंगाके दक्षिण तीरपर राढानाम एक राजधानी थी. वहां निरपेक्ष नामका एक राजा राज्य करता था. एक समय एक वाग्विलास नामका एक कवि जो कि, कविकी सकल कलाओंमें बडा प्रवीण था, मानो दुर्दैवसे प्रेरित हो यों सोचने लगा कि निरपेक्ष एक बडा राजा है सो यदि मैं उसके यहां जाता तो वह कुछ न कुछ मुझे अवश्य देता तो मुझे उसके यहां अवश्य जाना चाहिये, ऐसा सोचकर वहां गया और राजाके मंत्रीसे मिलकर उससे कहा कि हे विचक्षण! मैं राजासे मिलने आया हूँ, सो ऐसा प्रबन्ध करो जिससे मुझे राजाका दर्शन प्राप्त हो. यह सुन मंत्री बोला-कि, हे कविराज! तुम कवि हो और यह राजा अज्ञ है फिर ऐसे अज्ञ राजाके दर्शनसे तुम्हें क्या लाभ? यहां मेरा तर्क तो यह है कि समालाप जन्य सुख तुम दोनोंमेंसे एककोभी अधिगत न होगा, देखोः-

एकांगविकलं धर्मं मन्ये तस्य महीभुजः।
राज्येऽपि सति भोगाय जाता यस्य न विज्ञता॥ २॥

होकरकेभी दीर्घ राज्याधिकारी जो राजा है भोगनेमें न विज्ञ।
मानो उसका धर्म है एक अंगसे जगतीमें हीनहीं सुज्ञ वर्य॥ २॥

कविरुवाच। मंत्रिराज अविज्ञोऽपि राजाऽसौ मम कवितया निश्चितं परितोषमंगीकरिष्यति। यतः-

यह सुनकर कविने कहा-कि हे मंत्रिराज! इसमें सन्देह नहीं कि. राजा अज्ञ है तथापि विश्वास रक्खो कि जब वह मेरी कविता सुनेगा तब वह विना सन्तुष्ट हुए न रहेगा, क्योंकिः--

नानारससमाकीर्णशब्दार्थगुणमंडिता।
आराधयति वाग्देवी सकर्णहृदयं न कम्॥ ३॥

नानारससे भरी हुई जो वर कविता है
शब्द अर्थ गुणसे मण्डित फिर जो कविता है।
करती नहीं प्रसन्न महा किस मानवको है
हृदय तथा कानोंको रखता जगमें जो है॥ ३॥

अपि च—

अपराध्यति हि श्रोता वाचि श्रोत्रमनर्पयन् ।
सोऽपराधः कवेरेव श्रोता यत्र न तुष्यति ॥ ४ ॥

औरभीः—

श्रोताही है दोषसे युक्त मन्त्री ! यदि वाणीमें ध्यान देते नहीं वे।
फिर वह कविकीही महा दोषित है करते श्रोताको नहीं जो प्रसन्न॥४॥

अपरं च—

यो न हृष्यति भारत्या शुद्धया श्रोत्रपेयया ।
स हृष्यति नरोऽनड्वान् घासग्रासेन केवलम् ॥ ५ ॥

औरभीः—

जो हृष्ट होते नाहिं भारतीसे विशुद्ध जो है फिर श्रोत्र पेय ।
हैं बैलही मानव वे सदैव वे सिर्फ होते खुश घाससेही ॥ ५ ॥

अन्यच्च—

न शृणोति न जानाति ज्ञात्वा यो न प्रयच्छति ।
तं कविः कविभावेन किमाराध्य करिष्यति ॥ ६ ॥

औरभीः—

जो सुनते हैं न न जानते हैं देते नहीं हैं कुछ जानकेभी ।
कवित्वसे हों यदि तुष्ट भी वे तो लाभ होगा कविको भला क्या ?॥६॥

सचिव उवाच । अत एवोच्यते न द्रष्टव्योऽयं भवता भूपालः । कविरुवाच । मंत्रिराज मम कविता कर्णगताऽपि यं नाराधयति सोऽद्भुतः पुरुषस्तत एव दर्शनीयो भविष्यति । ततो महता सचिवप्रयत्नेन स राजा निरपेक्षस्तस्मै कविराजाय कदाचिद्दर्शनं ददौ । कविश्च राजानं दृष्ट्वा पद्यमिदं पपाठ । तद्यथा—

यह सुनकर मन्त्री--इसीलिये तो कहता हूँ कि यह राजा दर्शनक पात्र नहीं है, यह सुनकर कवि बोला–कि, हे मन्त्रिराज ! जिस मनुष्यके कानमें मेरी कविता प्रविष्ट हुई तथापि यदि वह सन्तुष्ट न हुआ तो समझे रहियो कि वह एक अद्भुत पुरुष है और इसी कारणसे वह दर्शनीय भी है.

यह सुनकर मन्त्रीने बडा प्रयत्न किया जिससे राजा निरपेक्षने मुश्किलसे एक दिन उस कविको अपना दर्शन दिया, राजाको देखतेही कविने निम्न लिखित पद्य पढाः--

बलारिपुरगोपुरे मनुजदेव देवांगनाः
प्रसूनमिव नूतनं विततखड्गवल्ल्यास्तव।
स्तुवंति विमलं यशस्त्वदरिवीरपाणिग्रह-
प्रबुद्धमदनोत्सवाः समरसिंधुफेनोपमम्॥ ७॥

तव योधा रिपु-पाणि ग्रहणसे कामातुर हो
नृपति! तथा बलरिपुपुरके गोपुर पर स्थित हो!
सुरांगना रणं सिन्धुफेन सम गाती यश है
जनु वह नूतन फूल खड्ग बल्लीका तव है॥ ७॥

राजोवाच। हे मंत्रिणः किमयं विहगकुलकोलाहलाकारं प्रलपति। मंत्रिण ऊचुः। देव महानयं कविः। देवस्य यशो वर्णयति। ततः पूजनीयो भवति। राजोवाच। कथमस्य पूजा कर्त्तव्या। एतस्य कवितया मम धनं वर्द्धिष्यते सैन्यं वा? मंत्रिण ऊचुः। धनस्य सैन्यस्य च फलं यशो वर्धते कविगिरा। तथाहि-

यह सुनकर राजा निरपेक्षने पूछा कि, हे सचिवों! यह जो विहंग कुलके कोलाहलके समान कुछ बक रहा है यह क्या है? यह सुनकर मंत्री बोला-कि हे देव! यह एक बडा भारी कवि है. यह देवकी कीर्तिका गायन कर रहा है. इसलिये यह पूजाका पात्र है, यह सुन राजा बोला तो इसकी पूजा कैसे करना, क्या इसकी कवितासे मेरा धन या राज्य बढेगा? मंत्री बोले-कि हे देव! धन और बलका फल है यश सो कविकी वाणीसे बढता है, देखियेः--

कल्पादेरपि पूर्वपूर्वसमये वाचां कलागौरवा-
दाराध्य द्रविणैः कवीन्नृपतयो ये ये व्यतीयुर्भुवः।
तेषां नाम सदा सभासु कवितास्वद्यापि संगीयते
जाताः के न मृता न के तदितरे ज्ञाता न गेहाद्बहिः॥ ८॥

कल्पादिकसेभी पहले सुकला गौरवसे
युत कविओंको कर प्रसन्न बहु नरपति धनसे॥
स्वर्ग गये पर नामधेय उनका अबभी है

कवित समितिमें जो गाये जाते अबभी हैं ॥
इनसे अन्य न कौन नर होते फिर मरते नहीं।
जिनको गृहसे बाह्यमें ज्ञाता है कोई नहीं ॥ ८ ॥

यथा निधिः सुवर्णानां भूमिर्भूमिरुहां यथा।
तथैव सुस्थिरं स्थानं यशसां कविभाषितम् ॥ ९ ॥

धरा यथा है निधि सर्व स्वर्णका यथा वही है निधि सर्व वृक्षका।
तथा यशोंका स्थिर स्थान भूपते! संसारमें है कविका सुभाषित ॥९॥

ततो राजन् भवान् पूजयितुमर्हत्येनं कविराजं कांचनैः। राजोवाच। न ममानेन यशःख्यापनेन प्रयोजनम्। यत्रार्थव्ययस्य कारणता। रे रे मम पुरोवर्त्तिनो वेत्रपाणयः पुरुषाः गलहस्तिकयाऽयं बहिः क्रियताम्। ततस्तैस्तथा कृतम्। स कविराजः पपाठ।

इस कारण हे देव! आपको उचित है कि आप कांचनके द्वारा इस कविका सत्कार करें. यह सुनकर राजाने कहा कि मुझे ऐसा यश न चाहिये जहां कि अर्थके व्ययकी कारणता है. रे रे वेत्रपाणि पुरुषों उठो और अभी गलेपर हाथ रखकर इस कविको बाहर निकाल दो,- उन्होंने वैसाही किया. यह देख उस कविने निम्न लिखित पद्य पढा:-

तद्यथा-

भ्रांत्वा यत्परिषेवितं गुरुपदं त्यक्तं च निद्रासुखं
शास्त्रव्याकरणादि यच्च पठितं सर्वं वृथैवास्ति मे।
लक्ष्मीर्नीचजनानुरागहृदया मूर्खो यदि क्ष्मापति-
स्त्वामाराधयतोऽपि दुर्गतिरियं वाग्देवि दूरं व्रज ॥ १० ॥

सेवा की गुरु पादकी भ्रमणसे त्यागा स्वनिद्रासुख
शास्त्र व्याकरणादि जो फिर पढा ये सर्व हैं व्यर्थ ही।
लक्ष्मी है रखती सुप्रेम खलमें होता जडक्ष्मापति
होकेभी तव भृत्य है यह दशा वाग्देवि! तो दूर जा ॥ १० ॥

इति पठन्नेव बहिरागत्य स कविः कोपेन कवितासंन्यासं चकार मंत्रिणस्तु बहिरागत्य तं संन्यस्तसरस्वतीकं कविराजं दृष्ट्वा सानुतापमूचुः। भोः कविराज! किमाचरितं भवता यदस्याविदग्धस्य चरित्रेण स्वकीया हानिः कृता।

और बाहर निकल आया, वहां उसे ऐसा क्रोध हुआ कि उसने उसी दम कविताका संन्यास कर दिया, यह देख मंत्रियोंके चित्तमें बडा दुःख हुआ, उन्होंने कविसे कहा कि हे कविराज! तुमने यह क्या किया? कि इस अविदग्ध राजाके चरित्रसे कविताका संन्यास करके अपनी इतनी बडी हानि की, क्या तुम्हे ऐसा करना उचित था कभी नहीं. देखो.—

रसार्द्राऽलंकारैरुपचितशरीरा गुणवती
निदानं मोदाना बुधसदसि देशांतरसखी।
त्वया त्यक्ता कस्मात् प्रगुणपरदोषेण कविता।
प्रकोपस्याभूमिर्न खलु गुणधाम्नोऽपि हृदयम् ॥ ११ ॥

जो कविता रस अलंकार गुणसे भूषित है
देशान्तरमें कविका जो हितकारी अति है ॥
देती फिर आनन्द सभामें बुधकी जो है
पर दोषोंसे त्याग किया क्यों बुध! उसको है ॥
कविवर इस संसारमें हृदय गुणी जनका कभी
कोपयुक्त होता नहीं कहते यह हैं बुध सभी ॥ ११ ॥

कविरुवाच। एतस्य निंदया रुष्टेन मया संन्यस्ता कविता। मंत्रिण ऊचुः। किमस्य निंदया भवतः।

यह सुनकर कवि बोला—कि, हे सचिवों! इस अविदग्ध राजाकी निन्दासे मेरे मनमें बडा क्रोध उत्पन्न हुआ और उसी कारणसे मैंने कविताका संन्यास किया. यह सुन मंत्री बोले— भला तुमहीं बताओ कि इसकी निन्दासे तुम्हारा क्या होनेवाला है क्या तुम्हें यह ज्ञात नहीं है किः--

यत्कोऽपि निजदौरात्म्याद्गुणवन्तं विनिन्दति।
सा निन्दा निन्दकस्यैव गुणी निन्दास्पदं कुतः ॥ १२ ॥

स्वदुष्टतासे गुणवानकी जो संसारमें हैं करते विनिन्दा।
निन्दा उन्हींकी वह क्या नहीं है कैसे गुणी हो सकते विनिन्द्य॥१२॥

ततस्तैर्मंत्रिभिः स कविराजः कांचनैरभ्यर्च्य स्वगृहं प्रस्थापितः। तथाऽपि कृतकवितासंन्यासस्य तस्य विद्याऽवसन्नैव बभूव ॥

इति पुरुषपरीक्षायामवसन्नविद्यकथा ॥

इसके पश्चात् मंत्रियोंने उस कविराजको बहुतसे सोना देकर यथा स्थानको विदा किया वहभी अपने स्थानको पहुँच गया. किन्तु कविता संन्यास करनेके कारण उसकी विद्या अवसन्नही रही ॥

इति अवसन्नविद्यकथा समाप्त ॥

२६ अविद्यकथा ।

तद्यथा-

बाल्ये नाभ्यस्यतो विद्यां जन्म वै निन्दितं भवेत् ।
आसमुद्रमहीपालोऽप्यविद्यो मूर्ख उच्यते ॥ १ ॥

वह ऐसा है कि-

बाल्यावस्थामें पढी है न विद्या जिसने उसका जन्मही निन्द्य होता ।
कहते विद्या हीनहीको विमूढ आवारिधिको भूप ने क्यों न होवे ॥ १॥

वैधेयस्य श्रियं दृष्ट्वा गुणेभ्यः क उदासते ।
श्रिया बलैर्भृतस्यापि बालिशस्य कुतो यशः ॥ २ ॥

जगतमें लखके धन मूर्खका सुगुणसे नर कौन उदास है ।
मनुज बालिश क्या बनते यशी विभवसे बलसे युत क्यों न हो ॥ २ ॥

बभूव मिथिलादेशे तीरभुक्तौ रविधरोनाम ब्राह्मणः । स मूर्खो धनाढ्योऽपि वागपाटवेन सर्वैरुपहास्यमानः परमदुःखितश्चिन्तयामास-

मिथिला देशमें एक ब्राह्मण रहता था. उसका नाम रविधर था. रविधर बडा धनाढ्य था. पर उसमें एक बडा दोष यह था कि उसमें वाक्पटुता नहीं थी. इसी कारण लोग उसे समय समयपर हंसा करते थे. जिससे वह हमेशा सचिन्त रहा करता था. एक दिन उसने अपने मनमें यों सोचाः--

मृषा वदति लोकोऽयं तांबूलं मुखभूषणम् ।
मुखस्य भूषणं पुंसः स्यादेकैव सरस्वती ॥ ३ ॥

ताम्बूल है आननकी विभूषा है बात मिथ्या यह मानवोंकी ।
मनुष्यके आननकी विभूषा सरस्वती ही ध्रुव केवला है ॥ ३ ॥

यतः--वदन्नशुद्धमज्ञानान्मूर्खः सदसि हस्यते ॥
उक्तदोषसमाधानाग्रहिलश्चाति हस्यते ॥ ४ ॥

क्योंकि–

अज्ञानसे बोल अशुद्ध मूर्ख हैं हास्य पाते बुधकी सभामें ।
परन्तु पाते अतिहास्य वे हैं स्वपक्षके पूरणमें हठी जो ॥ ४ ॥

बाल्ये न शिक्षिता विद्या यौवने नार्जितं यशः ।
किं कृतं तेन जातेन जननीक्लेशकारिणा ॥ ५ ॥

पढी न विद्या जिसने शिशुत्वमें न कीर्ति पाई फिरभी युवत्वमें ।
क्या जन्म लेके उसने किया फिर मानो प्रसू दुःखद हो जना वह॥५॥

तदिदानीं मम वृद्धस्य विद्याभ्यासोऽनुपपन्न एव । यतः–

तो अब क्या करना उचित है? यदि मैं अबसे विद्याका अभ्यास शुरू करूं तो अनुपपन्न है, क्योंकि अब मेरी अवस्था दूसरी हो गई. मैं बुड्ढा होगया, इस अवस्थामें विद्याका अभ्यास उपपन्न नहीं. क्योंकि.–

यः कालः कर्मणो यस्य तत्र चेत्तन्न सिद्ध्यति ।
न सिद्ध्यति कदाऽप्येतत्कर्त्ता चानुशयी भवेत् ॥ ६ ॥

समय है नृप जो जिस कार्यका नहिं फला वह जो उस कालमें ।
न फलता वह कार्य कदापि है अनुशयो बनता ध्रुवकारक ॥ ६ ॥

ततः पुत्रं पाठयामीति परामृश्य पंडितद्वारा धनापक्षयेण मनधरनामानं पुत्रं पाठयामास । पश्चात्तस्य सहाध्यायिभिर्मनधर इत्यव्युत्पन्नं नाम श्रुत्वा पाठितम्। यतः—

इसलिये इस समय मुझे उचित तो यह है कि मैं अपने पुत्रको पढाऊँ ऐसा परामर्श करके रविधरने पण्डितोंके द्वारा अपने पुत्र मनधरको पढवाया, जिसमें रविधरका धन व्यय भी कम न हुआ. जब मनधर पढने लगा तब उसके सहपाठी गणने उसके ‘ मनधर ’ इस अव्युत्पन्न (अशुद्ध) नामको सुनकर निम्नलिखित पद्य पढाः–

प्राप्नोतु नाम पांडित्यं पुत्रः पित्र्यं प्रयत्नतः ।
ज्ञातं पितुरपांडित्यं नामधारणकारणात् ॥ ७ ॥

प्रयत्नसे प्राप्त करे पिताके पाण्डित्य चाहे यह विप्रपुत्र ।
परन्तु जानी इसके पिताकी अपण्डिताई सुत नामसे ही ॥ ७ ॥

ततस्तेनैवावमानेनाध्ययने कृतयत्नः स मनधरः शास्त्रपारगामी

बभूव । पश्चादधिगतशास्त्रस्य तस्य पुत्रस्य गुणदर्पेण राजसंमान-वासनया पुत्रेण सह ब्राह्मणो राजधानीं जगाम । तत्र च कृतराज-दर्शनः कुशलप्रश्नानंतरं राज्ञा पृष्टम् । राजोवाच । विप्र कथय वार्त्ताम् । विप्र उवाच । ज्ञानोनास्तिमेव । तदाकर्ण्य राजानं स्मेराननं दृष्ट्वा सज्जना नम्राननाः बभूवुः । खलाश्च सुतरां जहसुः । तदनंतरं मनधर उवाच । हे दुर्जनाः कुतो मम पितरं हसथ । अनधिगताभिप्रायाः सर्वे निगृहीता यूयम् । मम पित्रा तु साधूक्तं यद्देव प्रस्तुत-प्रश्नोत्तरे मम 'ज्ञा नास्ति मेव' लक्ष्मीरिव । यथा लक्ष्मीर्न विद्यते तथा ज्ञाऽपि न विद्यते । एवं मितभाषित्वाद्वार्त्ता-कथनासामर्थ्यं स्वकीयं नैःस्व्यं च भिक्षार्थिना मम पित्रा दर्शि-तम् । तदाकर्ण्य राज्ञा सपरितोषेण महती पूजा कृता तस्य मनधरशर्मणो ब्राह्मणस्य । उक्तं च । साधु मनधर साधु अस्थाने स्थानं कृतवानसि। एवं सति मनधरस्य पाण्डित्यं तत्पितुश्च मूर्खत्व-मेव निर्द्धारितं सर्वैः । उक्तं च—

सहपाठियोंके इस अपमानने मनधरको विद्याध्ययनमें खूब उत्तेजित किया और अपने अनवरत परिश्रमके बलसे थोडेही दिनोंमें शास्त्र पारगामी हो गया. इस प्रकार अपने पुत्रकी शास्त्र पार गामिता देख रविधरको बडा दर्प होगया. वह राज सम्मान वासनासे अपने पुत्रको साथमें लेकर झट राजाके यहां पहुँच गया. और राजासे भेंट की. दर्शन तथा कुशल प्रश्नके पश्चात् राजाने पूंछा कि, हे विप्रदेव ! कहिये क्या हाल है ? यह सुनकर रविधर बोला 'ज्ञानोनास्तिमेव' अर्थात् मुझे ज्ञान नहीं है, यह सुनतेही राजाके चेहरेके ऊपर ईषत् हास्यकी झलक भासित होने लगी यह देखतेही सज्जनजन नम्रानन हुये, पर खलवर्गोंने अपने अट्टाट्टहाससे सभा भवनको गुंजित कर दिया, यह देख मनधरको क्रोध हुआ. वह बोला कि हे दुर्जनो ! क्या तुमको यह उचित है हमारे पिताके कहनेका अभिप्राय विना समझे उनकी हंसी उडाओ. अब लो तुम्हारा पराजय है. क्योंकि तुमने मेरे पिताके कहनेका तात्पर्य नहीं समझे. वह यह है कि, हे देव ! मम ज्ञानो नास्ति मेव अर्थात् जिस

प्रकार मेरे पास धन नहीं है. मैं दरिद्री हूँ उसी प्रकार मुझमें बुद्धिभी नहीं है. इस प्रकार भिक्षार्थी मेरे पिताने मितभाषी होनेके कारण वार्ता कथनमें अपना असामर्थ्य तथा अकिंचनत्व प्रदर्शित किया है. मेरे पिताका 'ज्ञानोनास्तिमेव' यह वाक्य किसी प्रकार अशुद्ध नहीं है, यह सुनकर वह राजा मनधरके चमत्कारसे बडा सन्तुष्ट हुआ. और कहा कि हे मनधर ! तू सचमुचमें बडा ही विद्वान् है, क्योंकि तूने अस्थानमें अपना स्थान बना लिया है, ऐसा कह कर उसने मनधरका बडा सम्मान किया ऐसा करनेसे मनधरका पाण्डित्य और उसके पिताकी मूर्खता ही सबको ज्ञात हुई. ऐसे समय किसीने कहाः-

पुत्रेऽपि लब्धसम्माने नायशः खण्डितं पितुः ।
निजैरेव गुणैर्लोके पुरुषो याति पूज्यताम् ॥ ८ ॥

इति पुरुषपरीक्षायामविद्यकथा ॥

सम्मान पाया सुतने तथापि अकीर्ति राजन् ! न गई पिताकी ।
संसारमें तो निजके गुणोंसे ही पूज्यताको नर प्राप्त होते ॥ ८ ॥

इति अविद्यकथा समाप्त ॥

२७ खंडितविद्यकथा ।

तद्यथा-

एकदेशं विदित्वा यः सर्वज्ञत्वं प्रकाशयेत् ।
गोष्ठ्यां खण्डितविद्योऽसौ बुधानां याति हास्यताम् ॥ १ ॥

वह ऐसा हैः--

विदित है कुछ ही पर विज्ञता सकलकी नर सूचित जो करे ।
जगतमें वह खण्डित विद्य है समितिमें बुध हैं हंसते उसे ॥ १ ॥

बभूव गोरक्षपुरे राजधान्यामुदयसिंहो नाम राजा । स च शरत्कालीनमहापूजामहोत्सवे कृतारंभः श्रीदुर्गामाहात्म्यपाठाय बहून् ब्राह्मणान् परीक्षितविद्यान्वृणीते स्म । तन्मध्ये च कुशशर्मेनामानं ब्राह्मणमुज्ज्वलवस्त्रतिलकाद्यलंकृतं महारंभदंभमाकारसुंदरं शुकवदभ्यस्तकतिपयाक्षरोच्चारणप्रगल्भं दृष्ट्वा वृतवान् । स तु स्वीरकृतवारणः स्वरच्युतमन्यथावर्णमपगतमात्रं दुर्गामाहात्म्यं पठित्वा-

गोरखपुर नामक एक राजधानी थी, वहां एक राजा राज्य करता था, उसका नाम था उदयसिंह. उदयसिंह देवीका बडा भक्त था, एकवेर शरत्कालीन देवी पूजामहोत्सवके समय दुर्गा सप्तशती पाठ करानेके लिये उसने बहुतसे ब्राह्मणोंको वरण दिया वे ब्राह्मण भी ऐसे तैसे विद्वान् न थे वे धुरंधर विद्वान् थे, उनमें एक कुश शर्मा नामक ब्राह्मण था, वह महामूर्ख था. हां यह बात अवश्य थी उसने तोतेके समान कुछ अक्षरोंके उच्चारणमें प्रगलभता अच्छी हासिल की थी राजाने उज्ज्वल वस्त्र तिलक अलंकार आदिसे अलंकृत देख उसे भी वरण दे दिया, बस अब क्या था वरण पाते ही उसने पल्थी लगाली और स्वर हीन. मात्रा हीन तथा वर्ण हीन, अशुद्ध ही पाठ करना शुरू कर दिया, यहां तक कि क्षमापनका श्लोक भी अशुद्ध ही पढने लगाः--

यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
क्षंतुमर्हंति मे मातः कस्य वै निश्चलं मनः ॥ २ ॥

स्वरों पदों अक्षरसे विहीन माता ! हुआ हो यदि पाठ मेरा ।
करो क्षमाका मुझको प्रदान है कौन प्राणी स्थिर चित्तधारी ॥ २ ॥

इति क्षमापनश्लोकमपि तथैवाशुद्धं पपाठ तदाकर्ण्य शुभंकरशर्मनाम्ना राजपुरोहितेनोक्तम् । हे कुशशर्मन् ! कथं पद्यमेवमशुद्धंपठसि । तदत्र क्षंतुमर्हसीति पठ । तथा हि--

क्षमापनके श्लोकमें भी उसकी अशुद्धि सुन कर राजपुरोहित शुभंकर शर्मासे रहा न गया. उसने कहा कि , हे कुशशर्मा ! इस प्रकार अशुद्ध पाठ क्यों करते हो ? सो यहां ' क्षन्तुर्महन्ति ' ऐसा पाठ न करके ' क्षन्तुमर्हसि ' ऐसा पाठ करो. देखोः--

अन्याशुद्धिसमाधाने पाठ्यं वै क्षंतुमर्हसि
तदप्यशुद्धमुच्चार्य दुर्मते किं करिष्यासि ॥ ३ ॥

अशुद्धि होती यदि है कहीं तब
उच्चारते हैं बुध ' क्षन्तुमर्हसि ' ।
पढा उसे भी यदि है अशुद्ध ही
क्या लाभ होगा तब पाठसे भला ॥ ३ ॥

तदाकर्ण्य सर्वे ब्राह्मणास्तं निनिंदुः। राजा च तमशक्यनिर्वाहे कर्मणि कृतसंकल्पमधार्मिकं मूर्खं च निर्धारितवान्।

ऐसा सुनकर ब्राह्मणोंने उसकी बडी गर्हणा की. अब राजा क्या करे. क्योंकि उसने उसे संकल्प दे दिया था, परन्तु यह जान लिया कि यह अधार्मिक तथा बडा मूर्ख है।

अनभ्यस्ते वस्तुन्यधिगममुपन्यस्य वितथं
प्रमाद्यन् प्रस्तावे भवति नियतं खण्डितगुणः।
सभायां सा निन्दा स्पृशति मनुजं मर्माणि यथा
मृतिः साधारण्यान्न भवति तथा खेदजननी॥ ४॥

इति पुरुषपरीक्षायां खंडितविद्यकथा॥

कहते खण्डित विद्य बात यह ज्ञात हमें है
यद्यपि रहती बात नहीं वह ज्ञात उन्हें है।
खाते धोखा समय समय पर ऐसे नर हैं
होते निन्दित तथा सभामें पण्डित की हैं।
वह निन्दा उन प्राणियोंको है जैसे छेदती
स्वमृति तथा नरपति! नहीं उनके दिलको छेदती॥ ४॥

इति खण्डित विद्यकथा समाप्त॥

वीरो विरहितो बुद्ध्या सुबुद्धिर्वीरतां विना।
सविद्यश्च विना ताभ्यां न स्युः पुरुषलक्षणाः॥ १॥

कविकी उक्तिः--

यदि विना मतिके नर वीर हैं सुमतिमें यदि है नहिं वीरता।
यदि सविद्य विना मति शौर्यके तब न पूरुष कहते हैं उन्हें॥ १॥

प्रत्युदाहरणं त्वेषां नोक्तं विस्तरशंकया।
दिङ्मात्रं दर्शितं चेदं सम्यग्ग्राह्यं मनीषिभिः॥ २॥

विस्तारके ही भयसे कहीं नहीं मैंने कथाकी बर प्रत्युदाहृति।
मैंने किया दर्शित मार्ग मात्र है जाने मनीषी खुद पूर्ण रीतिसे॥ २॥

बुद्धिवीरत्वविद्यानां समुदायः सुदुर्लभः।
आश्रयौ समुदायस्य त्रैलोक्ये पुरुषावुभौ॥ ३॥

ध्रुव सुदुर्लभ है वह लोक जो भवन है मति आगम शौर्यका ।
पुरुष केवल दो सुत्रिलोकमें भवन हैं मति आगम शौर्यके ॥ ३ ॥

तद्यथा–

लक्ष्मीपती सर्वलोकाभिरामौ चंद्राननौ चारुपाथोदनीलौ ।
तौ पूरुषौ लक्षणैस्तैरुपेतौ नारायणो रूपनारायणो वा ॥४॥

इति समस्तप्रक्रियाविराजमानरूपनारायणशिवभक्तिपरायणरामेश्वरीवरलब्धप्रसाद महाराजाधिराजश्रीमच्छिवसिंहदेवपादानामाज्ञया श्रीविद्यापतिविरचितायां पुरुषपरीक्षायां सविद्यपरिचायको नाम तृतीयः परिच्छेदः ॥

वे कौन हैं ? ये हैं:–
जो हैं लक्ष्मीनाथ सबोंको ख़ुश करते जो
शशिसे आननयुक्त कंज सम हैं नीले जो ।
जिनमें फिर है बुद्धि शूरता है विद्या है
वे नारायण भूप रूप नारायण या है ॥ ४ ॥

इति चन्द्रकान्त पाठक काव्यतीर्थकृत पुरुषपरीक्षाभाषागद्यपद्ये तृतीय परिच्छेदः समाप्तः ।

धर्मकथाः ।

२८ सात्त्विककथा ।

अथ राजा पारावारः पुनराह । भगवन्मुने भवदुपदिष्टेन लक्षणेन पुरुषस्तावत् परिचितः । पुरुषत्वस्य किं फलमिति ज्ञातुमिच्छामि । मुनिरुवाच–

राजा पारावारने मुनिराज वसूक्तिसे फिर कहा कि, हे मुने ! आपसे उपदिष्ट लक्षणोंके द्वारा मुझे पुरुषके लक्षणोंका अच्छी तरह ज्ञान होगया, अब मुझे पुरुषत्वका फल जाननेकी बडी उत्सुकता है यह सुनकर मुनि बोले:–

पुंसां हि लक्षणं प्रोक्तं फलं तस्य निगद्यते ।
धर्मार्थकाममोक्षाख्यं पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ १ ॥

पुरुष लक्षण हैं हमने कहे अब सुनो उनका फल भूपते।
सुकृत अर्थ मनोरथ मोक्ष औ सकल ये फल हैं पुरुषार्थके ॥ १ ॥

तेषां चतुर्णां मध्ये प्रथममभ्यर्हितत्वाद्धर्मस्तावत्प्रस्तूयते। तद्यथा-

हे राजा! इन चारोंमें धर्म ही अभ्यार्हित है, इसलिये पहले उसीकी कथा प्रारंभ की जाती है, सुनोः-

दानाध्ययनयागादिशास्त्रवाक्यानुसारतः।
स्वाभीष्टसाधकः कर्मविशेषो धर्म उच्यते ॥२॥

यजन दान तथा पठनादिक सुकृतिको कहते बुध धर्म हैं।
नृपति! आगमके अनुसार ये विहित हो फलते जन इष्टको ॥ २ ॥

राजोवाच। अहं तस्मिन्नेव कर्माचरणे जातसंशयोऽस्मि। तन्मम संशयं निरसय। यतो भट्टप्रभाकरप्रभृतयो बहवस्तैर्थिकास्तेऽपि परस्परविरोधिनो भिन्नसिद्धांताः। सर्वे वक्तारः स्वपक्षरक्षणक्षमाः तथा हि-

यह सुनकर राजा पारावार फिर बोला कि हे मुने! आपने जो उपर्युक्त पद्यके द्वारा धर्मकी परिभाषा की है, उस धर्मके ही विषयमें तो मुझे सन्देह है, इस लिये मेरे सन्देहका निरसन कीजिये, मैं देखता हूँ कि भट्ट प्रभाकर आदि जो बहुतसे तैर्थिक होगये हैं, वे भी परस्पर विरोधीये तथा भिन्न भिन्न सिद्धान्त वादी होगये हैं, वे अपनी २ वक्तृत्व शक्तिसे अपने २ पक्षकी रक्षामें सदा ही सप्रयत्न हुए हैं, देखियेः-

स्वस्वसिद्धांतरक्षायां संत्यनेकेऽपि वाग्मिनः।
तेषां मतविरोधेन जायते धर्मसंशयः ॥ ३ ॥

निज निज मतको दृढ रखनेके हेतु सुमुनिवर
जगती तलमें हैं अनेक वाग्मी पण्डितवर।
पारस्परिक विरोध सदा है उनके मतमें
अतः हुआ सन्देह मुझे है धर्म विषयमें ॥ ३ ॥

मुनिरुवाच। राजन् कुत एवंविधो धर्मसंदेहः परिगृह्यते भवता। किंतु विधातुः प्रपंचे यत्र जातोऽसि तत्कुलक्रमायातमेव पंथानमनुसर। एष ते धर्मः। तथा हि-

यह सुनकर मुनिने कहा कि, हे राजा ! तुम्हे धर्मके विषयमें ऐसा सन्देह क्यों कर हुआ ? ऐसा सन्देह न रखो इसे त्याग दो और इस विधाताके प्रपंचमें जिस कुलमें तुम अभिजाते हो उसी कुल क्रमागत सरणीका अनुसरण करो, यही तुम्हारा धर्म है. देखोः—

एको विधिस्तदकृतं न जगत्सु किंचित्
तस्येच्छया त्वमपि यत्र कुलेऽसि जातः ॥४॥
तद्दिष्टमेव कुरु कर्म ततः प्रमादे
धाताऽपराध्याति परं न भवान् कदाचित् ॥ ५ ॥

विधि है एक पदार्थ न ऐसा जगमें कुछ है
जिसको उसने नहीं बनाया नृपति नाथ ! है ॥
उसकी इच्छासे जनमें हो तुम जिस कुलमें
तदनुकूल तुम करो सकल कारज इस जगमें ॥
उन कार्योंमें सफलता होवे यदि नृपते ! नहीं ।
तो विधिका हीं दोष है कभी दोष है तव नहीं ॥ ४॥ ५ ॥

वस्तुतस्तूज्ज्वलः पंथा धर्ममार्गानुसारिणाम् ।
येन गच्छंति धीमंतस्तर्कनिष्णातबुद्धयः ॥ ६ ॥

सच पूंछो तो धर्म मार्गसे चलते जो नर
उनका नरपति ! वही पन्थ है जगमें अतिवर ।
जिस पथपे धीमान् मनुज रखते निज पद हैं
करनेमें अनुमान बुद्धि जिनकी सुकुशल है ॥ ६ ॥

एवं धर्मः सेवनीयः समीचीनः । राजोवाच । मुने तैर्थिकानामपि बहुविधो मतभेदः । केऽपि शिवं केऽपि विष्णुं केऽपि ब्रह्माणमाराध्यत्वेन मन्यंते । ततस्तेषु मध्ये कस्मिन्नर्पयामि चेतः । महानयं संदेहः । मुनिरुवाच—

सो हे राजा ! यही तुम्हारा धर्म है, इसीका आश्रय लो, इसीसे तुम्हारा भला होगा. यह सुनकर राजाने फिर कहा कि, हे मुने ! मैं देखता हूँ कि, तैर्थिकोंमें भी बडा मत भेद है. कोई शिवको अपना आराध्य देव मानते हैं. तो कोई विष्णुको. किसीका तो कथन है कि

जो कुछ हैं सो ब्रह्मदेव ही हैं उनके सिवा दूसरा देव कहां ?इस लिये वही हमारे आराध्य देव हैं. तो अब आपही बताइये इनमेंसे किनको अपना चित्त अर्पण करूं. यही मेरा बडा सन्देह है, यह सुनकर मुनिने कहा हे राजा ! सुनोः--

विष्णुं कऽपि निवेदयंति गिरिजानाथं च केचित्तथा
ब्रह्माणं प्रभुमालपंति भुवने नाम्नैव भेदो ह्ययम् ।
निर्णीतं मुनिभिः सतर्कमतिभिश्चैद्विश्वमेकेश्वरं-
तच्चिंतापरमानसे त्वयि पुनर्भिन्ना कुतो भावना ॥ ७ ॥

कोई हैं कहते परेश हरिको कोई महेशानको
कोई तो विधिको परन्तु सब ये हैं नामसे ही पृथक् ।
तर्कोंसे मुनिने विनिश्चय किया है विश्व एकेश्वर
तो चिन्ता परिपूर्ण चित्त तुममें है भावना भिन्न क्यों ॥ ७ ॥

तत उपवासव्रतपूजाध्यानादिभिस्तदाराधनमेव धर्मः। संक्षेपत-स्तु-परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।

सो हे राजा ! उपवास, व्रत, पूजा और ध्यान आदिके द्वारा उस ब्रह्मका आराधन करना ही धर्म है. संक्षेपसे यह कहा जा सकता है कि परोपकार धर्म है, और परको कष्ट देना पाप है, आगे सुनोः-

तं धर्मं कुरुते यः स धार्मिकस्त्रिप्रकारकः ।
सात्त्विकस्तामसश्चैव तथैवानुशयी मतः ॥ ८ ॥

मनुज जो करता इस धर्मको सुबुध धार्मिक हैं कहते उसे ।
जगतमें यह है त्रिप्रकारक अनुशयी, नृप ! तामस, सात्विक ॥ ८ ॥

तेषां मध्ये प्रथमं सात्त्विककथा प्रारभ्यते-

तद्यथा-बभूव मिथिलायां बोधिनामा कायस्थः । स तु काय-स्थकुलमर्यादया राजनियोगं कुर्वाणोऽपि न कंचन प्राणिनं हिनस्ति न परस्वमादत्ते । स्वामिदत्तेनाजीव्यधनेन केवलं जीवति । स्वकी-

याजनोचितं दानं देशकालोचितं च कुर्वाणः शिवपूजापरायणः समयं निनाय। प्रत्यासन्ने चान्तकाले तेन पद्यमिदं पौराणिकं श्रुतम्—

इसकी कथा इस प्रकार हैः-

मिथिला देशमें बोधी नामका एक कायस्थ रहता था, वह एक राजाका ताबेदार था, वह ताबेदार होनेपर भी कायस्थ कुलकी मर्यादाके बाहर जाना बडा पाप समझता था, वह न तो कभी किसी प्राणीकी हिंसा ही करता और न किसीका धन ही अपहरण करता किन्तु स्वामी जो कुछ देता उसीसे अपना निर्वाह किया करता था, वह भवानीपति भवदेवका बडा ही भक्त था, वह हमेशा उनके अर्चन पूजनमें परायण रह कर देश कालानुसार अपनी पूजासे अर्जित द्रव्योंको दानमें विनियोग करता अपना समय खर्च करता था। जब उसका मृत्यु समय निकट आया तब उसने एक दिन किसीके मुखसे एक पौराणिक पद्य सुना. वह यह हैः—

परहिंसा—परद्रव्य—परदारपराङ्मुखः।
गंगाऽप्याह कदाऽऽगत्य मामयं पावयिष्यति ॥ ९ ॥

परकी हिंसासे पर द्रव्यसे औ परकी नारीसे सदा दूर जो हैं।
कब वे आके पूत मुझको करेंगे। ऐसा गंगा भी सदा बोलती है॥९॥

श्रुत्वा च परामृष्टवान्। यदाजन्मनो मयापि परहिंसा न कृताऽस्ति। नपरद्रव्यमनीत्या गृहीतम् न परदाराभिलाषः कृतः। तदहमपि तद्विशेषणत्रयविशिष्ट एव। यतः—

यह सुन कर उस कायस्थने सोचा कि मैंने जन्मसे लेकर आज तक पर हिंसा न की अनीतिसे परका द्रव्य न लिया, परकी स्त्रीके तरफ तो मैंने स्वप्नमें भी कदाचित् दृष्टि न डाली होगी तो मैं भी क्या ऊपर कहे गये तीन विशेषणोंसे विशिष्ट नहीं हूँ ?

अकृत्यं दूरतस्त्यक्तं स्वकृत्ये च मतिः कृता।
तत्त्वनैष्ठिकभावेन नीतं च सकलं वयः ॥ १० ॥

और भीः--

मैंने त्यागा दूरसेही अकार्य मतिकी फिर मैंने स्वकर्तव्यमें है।
श्रद्धा रखके ईशमें सर्वदाही मैंने सारी है अवस्था विताई ॥ १० ॥

ततो भगवत्याः श्रीगंगाया वाक्यमिदं परीक्षेऽहम् । पश्चाद्भागीरथीमुद्दिश्य गत्वा कूलादर्वाक्[1] क्रोशमात्रप्रदेशे स्थित्वा तत्पौराणिकं पद्यार्द्धं स्वकीयेन श्लोकार्धेन पूरयित्वा श्लोकं पपाठ । तद्यथा—

तो मुझे भगवती सुरधुनी गंगाके इस वाक्यकी परीक्षा करनी चाहिये ऐसा सोचकर वह वहांसे उठा और भगवती भागीरथी गंगाके किनारेसे एक कोश इसी तरफ एक जगह बैठ गया और कहे गये पौराणिक पद्यार्धको स्वरचित पद्यार्धसे पूरा करके उसे पढता बैठा रहा. पद्य यह हैः—

परहिंसा-परद्रव्य-परदारपराङ्मुखः ।
सोऽहमभ्यागतो देवि गंगे याहि पवित्रताम् ॥ ११ ॥

परकी हिंसासे परद्रव्यसे औ परकी नारीसे सदा दूर मैं हूँ ।
वह मैं आया हूँ तुम्हारे समीप होजा गंगे देवि हे तू पवित्र ॥११॥

तदनन्तरं जातपरितोषया कूलंकषकल्लोलमालया संचरत्कूर्ममीनमकरशिशुमारया प्रवाहपतितोभयतटविटपया मुक्ताहारधवलजलया [illegible]प्लावितांङ्गः स कायस्थो बभूव । आयुषि पूर्णे विधिनियो[illegible]नुर्मुक्तिं गतः । तथाविधं भागीरथ्याः करुणापरि[illegible]परीक्षित[illegible]रित्रमद्यापि तं कायस्थं स्तुवंति साधवः ।

[illegible] जाना है कि यह सुनते ही भगवती गंगा बडी प्रसन्न हुई और [illegible] कल्लोल[illegible]ओंसे दोनों तटों तथा तटस्थ वृक्षोंको तोडती उस [illegible] के निकट आगई और मुक्ताहारके समान अपने धवल जलके [illegible] उस का[illegible]स्थको प्लावित किया. वह कायस्थ भी पूर्ण आयुका [illegible] करके [illegible]तमें भवानी भवके नियोगसे शरीरको त्याग कर [illegible] प्राप्त हु[illegible]। इस प्रकार भगवती गंगाकी करुणाके परिणामसे [illegible]स्थके [illegible]रित्रकी परीक्षा हुई, जिसका गान अभी तक साधु [illegible] करते हैं. क्योंकि:—

[illegible]श्रियो यांति यांति सर्वेऽपि बान्धवाः ।
सा[illegible]हि संसारे कीर्त्तिरेव स्थिरा भवेत् ॥ १२ ॥

॥ इति पुरुषपरीक्षायां सात्विककथा ॥

---

१ अवरेकाले देशेवा ।

लक्ष्मी जाती शरीर यह जाता जगसे है
सकल बन्धु जन भी फिर ध्रुव जाते जगसे हैं ।
किन्तु कीर्ति ही स्थिर रहती है जगती तलमें
कथा मात्र ही सार धराधीश्वर ! है जिसमें ॥ १२ ॥

इतिसात्त्विक कथा समाप्त ॥

---

२९ तामसकथा ।

तत्क्षणस्फूर्त्तिजातेन साहसेन तपश्चरन् ।
तमोगुणेन संयुक्तस्तामसो धार्मिको मतः ॥ १ ॥

तप करता है जो मानव जगमें साहससे
जो होता उत्पन्न उसी दमकी सुफूर्तिसे ।
तथा तमोगुणसे नर पालकवर ! जो युत है
तामस धार्मिक उस नरको कहते पण्डित हैं ॥ १ ॥

बभूव राढायां पुरि श्रीकण्ठो नाम ब्राह्मणः समधिगतसकलशास्त्रो नीतिविद्याविज्ञः कविकलाकुशलः । स च जन्माभ्यस्तगुणानामुपयोगार्थं नानाभूपालदर्शनकुतूहली देशांतराणि बभ्राम भ्रमंश्चैकदा सूर्यग्रासकाले गंगायमुनयोः संगमे ग्राहेण ग्रस्यमा[?]गामेकां प्राणव्ययव्यग्रतया परमकातरां पयसि मज्जन्तीं ददर्श ता[?]च समुपजातकरुणश्चिंतयामास । तद्यथा—

राढा नामके नगरमें एक ब्राह्मण रहता था उसका नाम था श्रीकंठ सब शास्त्रोंका वेत्ता था, उसमें नीति विद्याकी भी अ[?] कम न थी, कवि कलारूपी समुद्रका तो मानो वह कर्णधार [?] एक दिन उसके मनमें यह बात आई वह यह कि मैंने लेकर आज तक सब शास्त्रोंके ही अध्ययनमें अपना सारा खर्च किया, तो यदि राजाओंके यहां जाकर मैंने अपने [?] प्रकाश न किया तो ये गुण व्यर्थ हैं. ऐसा विचार क[?] देश पर्यटनके लिये चला. वह देश देशान्तरमें घूमता प्रयागमें आ पहुँचा, दैव योगसे सूर्यग्रहणका वह समय था जि[?] सूर्य ग्रहण लगनेवाला था, उस दिन श्रीकंठ गंगा यमुनाके

पर्व स्नान करनेके लिये गया, जब सूर्यग्रहण लगगया तो उसने वहां एक करुणाजनक दृश्य देखा कि, एक गाय जो एक ग्राहसे ग्रसित है संगममें कंठगत प्राण हो डूबना हीं चाहती है, यह दृश्य देख श्रीकंठके हृदयमें बड़ी करुणा उत्पन्न हुई और उसने यों सोचा कि:—

न प्रयागात्परं तीर्थं कालो नार्कग्रहात्परः ।
प्राणिप्राणपरित्राणात्परो धर्मो न विद्यते ॥ २ ॥

नहिं वर हे नृप ! तीर्थ प्रयागसे न रविके ग्रहसे वर काल है ।
फिर न रक्षणसे पर प्राणके जगतमें बढके कुछ धर्म है ॥ २ ॥

इदानीं सर्वं समुदितमत्रैव दृश्यते । तत्करवाणि ग्राहकवदनाद्गोरक्षणम् । तथा हि—

सो यहां सभी वे शुभ संयोग उपस्थित दिखाई देते हैं, इसलिये इस समय ग्राहके वदनसे इस बिचारी गायकी रक्षा करके मुझे पुण्य राशि अर्जन करनेका यह एक अलभ्य सुअवसर आ मिला हुआ है। क्योंकि:—

नश्वरेण शरीरेण पुण्यराशिश्चिरस्थिरः ।
कस्तं साधुरकाण्डेन लभ्यमानमुपेक्षते ॥ ३ ॥

नरपते ! इस नश्वर देहसे यदि अनश्वर धर्म मिले तब ।
जगतमें वह सज्जन कौन है द्रुत उपेक्षित जो करदे उसे ॥ ३ ॥

किं च परामर्शोऽयं समयक्षेपं न सहते । कालच्युता हि क्रिया फलं न जनयति । किं च परितापाय भवतीति परिचिन्तयन् स ब्राह्मणः पयसि झम्पं कृत्वा धर्मश्रद्धया जीवं तृणाय मन्यमानः खनित्रेण ग्राहस्य मुखमाजघान । ग्राहस्तु खनित्राघातकुपितस्तदा- मिषलुब्धश्च गामर्धकवलितां परित्यज्य ब्राह्मणं कवलयाञ्चकार । सोऽपि [illegible] खनित्रेण [illegible] ।

और इस विचारमें समय नष्ट करना उचित नहीं है, क्योंकि कालच्युत क्रिया कदापि फलदायक नहीं होती, प्रत्युत परितापकी ही उत्पादयित्री होती है, ऐसा सोच कर श्रीकंठने धर्मके अनुरोधसे अपने प्राणको तृणके समान माना और गंगा यमुनाके अगाध पानीमें कूदकर उस ग्राहको एक खनित्रसे मारा, वह ग्राह भी खनित्रके आघातसे बड़ा कुपित हुआ और अर्द्धकवलित गायको त्याग प्रहारकर्ता श्रीकंठको ओर झुका.

बस अब श्रीकंठकी वही दशा हुई जो दशा गायकी होनेवाली थी, इधर गाय भी ग्राहसे मुक्त हो वहांसे भागी और स्वाच्छन्द्य अधिगत करके सुखी होगई.

ब्राह्मणस्य तु स्वप्राणपरिवर्त्तेन कृतगोरक्षस्य शिरसि पुष्पवृष्टिः स्वर्गे वासश्च बभूव । यशश्चाद्यापि गीयते ।

श्रीकंठने अपने प्राणके परिवर्तनसे उस विचारी गायकी रक्षा की, इसलिये देवताओंने सन्तुष्ट हो उसके शिरपर फूलोंकी वर्षा की और उसको स्वर्गमें वास दिया, उसका वह यश अभी तक इस वसुधाके ऊपर गाया जाता है. कहा भी है:–

चिरकालप्रयासेन धीरः प्राप्नोति यत्पदम् ।
तत्पदं शीघ्रकारित्वात्साहसी लभते क्षणात् ॥ ४ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां तामसकथा ॥

आति परिश्रमसे चिरकालके सुबुध जो करते पद प्राप्त है ।
वह उसे करता द्रुत लब्ध है मनुज जो द्रुत कारक साहसी ॥ ४ ॥

इति तामसकथा समाप्त ॥

३० अनुशयिकथा ।

तद्यथा–

कृत्वा दुष्टानि कर्माणि निन्दित्वा च परेश्वरम् ।
यः पश्चात्तप्यते लोकेऽनुशयी स निगद्यते ॥ १ ॥

यह ऐसा है कि:–

दुष्ट कर्मको जो है करता फिर जो हरिकी निन्दा करता ।
पीछेसे जो फिर पछताता जगमें वह अनुशयी कहाता ॥ १॥

अस्ति भागीरथीतीरे कंपिलानाम नगरी । तत्र हेमाङ्गदो नाम राजा बभूव । तस्मिन्नुपरते मंत्रिणस्तस्य पुत्रं रत्नांगदं नाम कुमारं राजानं चक्रिरे । स च युवा राज्यं प्राप्य पितृवित्तेन दर्पितो यौवनमदाच्चान्यायप्रवृत्तो बभूव । तथा हि–

भागीरथी गंगाके किनारे कंपिला नाम एक नगरी है, वहां हेमांगद नामका एक राजा राज्य करता था, जब समय क्रमसे वह परलोकको

सिधारा तो मंत्रियोंने मिलकर कुमार रत्नांगदको अपना राजा बनाया. रत्नांगद युवा तो था ही अब उसने पिताका राज्य भी प्राप्त करलिया अब क्या है अब इसके यौवन और राज्य दो दो सहायक मिल गये बस इसे बडा दर्प होगया और अन्यायमें प्रवृत्त हुआ. कहा भी है:-

अनुरूपेण पुत्रेण कुलं तिष्ठति सीमनि ।
पूजितं पूजितेन स्याद्विरूपेण विनश्यति ॥ २ ॥

सीमा पै वह कुल रहता है जिसमें अच्छा सुत रहता है ।
पूजित सुतसे पूजित होता अपूज्यसे वह अपूज्य होता ॥ २ ॥

अपि च-

परिप्राप्तेषु वित्तेषु प्रादुर्भूते च यौवने ।
परीक्षितासु विद्यासु मदः कस्य न जायते ॥ ३ ॥

औरभीः-

जिस मानवने बहुत जगतमें धन पाया है
यौवनका जिसमें तथैव संचार हुआ है ।
जिसकी विद्याओंकी हुई परीक्षा फिर है
हो सकता क्या नरपति ! वह अभिमान रहित है ॥ ३ ॥

स एव पुरुषश्रेष्ठः पूज्यो भवति तद्विदाम् ।
धनयौवनविद्याभिर्गर्वं नाङ्गीकरोति यः ॥ ४ ॥

पुरुष श्रेष्ठ वही नृप है सदा फिर सुधी जनका वह पूज्य है ।
स्वधन आगम यौवनका कभी मनुज जो करता न घमण्ड है ॥ ४ ॥

अन्यच्च-

धने येन जितो गर्वो यौवने मन्मथो जितः ।
तेन मानुषसिंहेन जितं किं न महीतले ॥ ५ ॥

औरभीः-

विभवमें जिसने मदका किया विजय यौवनमें स्मरका तथा ।
जगतमें उस मानुष सिंहने नाहिं किया किसका जय भूपते ॥ ५ ॥

ततः स राजा धनिनां धनं हरंस्तल्लोभेन निरागसामपि प्राणहारकः प्रजानां पीडाकरो बभूव । ततः सर्वैरालोचितं यदयं राजा न भवति किं तु दस्युः[1] । यतः-

१ शत्रुः इति पाठान्तरम् ।

अब रत्नांगदका हाल सुनिये. उसने क्या किया, उसने धनवानोंका धन ले लेना शुरू किया, धनके लोभसे निरपराधियोंका प्राण ले लेना तो उसके लिये मानो एक खेल था, प्रजाओंको तो इतना कष्ट दिया कि वे बिचारी प्रजायें भग्ना गई, यह देख प्रजाओंसे न रहा गया, वे परस्पर विचार करने लगीं कि, यह राजा नहीं है किन्तु चोर है, क्यों किः--

लंघमानः स्थितिं दर्पान्मदांध इव कुंजरः।
राजधर्मच्युतो राजा दस्युरेव न संशयः॥ ६॥

स्वमदसे स्थितिको तजता यहां नृपति जो मद अंध गजेन्द्रसा।
रहित जो नृपके सब धर्मसे वह न भूपति है पर चोर है॥ ६॥

यद्ययमनेनापराधेनाभिद्रुह्यते तदा स्वामिद्रोहरूपं पापम्, यदि सह्यते तदा विनाशः। तदस्मै मुनिद्वारा धर्मोपदेशः कारयितव्यो भवति। ततस्तैस्सचिवैराहूता मुनयः। मुनिभिरुक्तम्।

तो यहां क्या करना उचित है? यदि इस अन्यायी राजाके साथ द्रोह करते हैं तो हमको स्वामीके द्रोहजन्य पापोंसे संयुक्त होना पडता है और यदि अपराध सह लेते हैं तो हमारा विनाश ही दीखता है, तो इसको मुनियोंके द्वारा उपदेश देना चाहिये, शायद उनके उपदेशसे यह सुधर जाय ऐसा परामर्श करके उन्होंने मुनियोंको बुला लिया, मुनियोंने आकर राजा रत्नांगदको इस प्रकार उपदेश देना शुरू कियाः-

धर्ममर्जय राजेन्द्र धर्मो राज्यस्य कारणम्।
कथमन्ये नराः सर्वे नरदेवः कथं भवान्॥ ७॥

नृप! करो तुम अर्जन धर्मका सुकृत कारण है ध्रुव राज्यका!
सकल क्यों जगमें नर अन्य हैं पर कहो तुम क्यों नरदेव हो?॥ ७॥

पूर्वजन्मनि भवता पुण्यं कृतम्। तत्फलमकण्टकं राज्यमिदं लब्धवानसि। तदस्मिन्नपि जन्मनि पापनिवृत्तः पुण्यं कुरु। राजोवाच। किंनाम पुण्यम्? मुनय ऊचुः! देव परद्रव्यहरण-परदारोपगमन-परहिंसानिवारणमिति निवृत्तिरूपम्, दया दानं प्रजापरिपालनं यज्ञव्रताचरणमिति प्रवृत्तिरूपं च यत्कर्म शास्त्रबोधितं तत्फलं पुण्यम्। राजोवाच तेन किं क्रियते, किमत्र प्रमाणम्? मुनय ऊचुः।

त्रिवर्गः साध्यते। शास्त्राणि प्रमाणम्। परमेश्वरः प्रणेता। राजोवाच। परमेश्वर एव नास्ति कुतस्तत्प्रणीतानि शास्त्राणि। यदि भवति तदोपलभ्येत मयाऽपि दृश्येत। नोपलभ्यते चेत्तदा नास्त्येव। यूयं मुनयो मान्याः कथमतथ्यैर्वचोभिर्मां प्रतारयेथ। ततस्तैर्मुनिभिर्बहिरागत्य परस्परमुक्तम्। यदयं राजा नास्तिकः सतामुपदेश्यो न भवति। कुतो वा कापथप्रवृत्तानामुपदेशसाध्यं हितम्। ततो मुनयः स्वं स्वं स्थानं जग्मुः। ततो मंत्रिभिः परामृष्टं सुभटैश्चालोचितम्। यदयं कुप्रभुः केनचिदुपायेन राज्याद्बहिः कर्त्तव्यः। कनीयानस्य भ्राता राजा भवतु। सर्वैस्तथा समाचरिते तथा बभूव।

हे राजन्! सुनिये आपने पूर्वजन्ममें कोई बडा पुण्य किया था. जिसका फल यह है कि, आपने इस जन्ममें ऐसा अकंटक राज्य प्राप्त किया है इसलिये आप इस जन्ममें भी पापसे निवृत्त हो पुण्यकी ओर मनको लगाइये. यह सुनकर राजा बोला-कि, हे मुनियों! तुम मुझको पुण्य करनेको कहते हो पर मुझे तो यही ज्ञात नहीं कि, पुण्य क्या वस्तुहै? इस लिये पहले यह बताओ कि पुण्य किसे कहते हैं? यह सुन मुनि बोले कि,हे देव! परका द्रव्य हरण न करना, परकी स्त्रीको कुदृष्टिसे न देखना, सदैव परकी हिंसासे दूर रहना इत्यादि जो शास्त्र विहित निवृत्ति रूप कर्म हैं तथा दया दान प्रजापरिपालन यज्ञका आचरण इत्यादि जो शास्त्र विहित प्रवृत्त रूप कर्म हैं इन्हींका फल पुण्यके नामसे पुकारा जाता है. यह सुनकर राजा बोला--कि, हे मुनियों! बताओ इस पुण्यसे क्या किया जाता है? कहो इसमें कुछ प्रमाण भी है क्या? मुनि बोले-हां यह त्रिवर्गका साधक है, इसमें शास्त्र ही प्रमाण हैं शास्त्रोंके प्रणेता ईश्वर हैं. यह सुन कर राजा बोला--हे मुनियों! मुझे तो ईश्वरके ही अस्तित्वमें सन्देह है यदि वही नहीं है तो उसके प्रणीत शास्त्रोंका होना कैसे सम्भव हो सकता है? यदि वह रहता तो उपलब्ध होता और मैंभी देखता. यादि उसकी उपलब्धिही नहीं होती तो समझना चाहिये कि वह नहीं है. तुम मुनि हो, महात्मा हो फिर क्या तुम्हें यह उचित है कि अतथ्य वचन कह कर मुझको ठगो. यह सुन कर सब ऋषि वहांसे उठ गये और बाहर आकर परस्पर बात चीत करने लगे कि, यह राजा

नास्तिक है. इस लिये सज्जनोंके उपदेश इसे कदापि लाभान्वित नहीं कर सकते. ठीक कहा गयाहै कि, जो मनुष्य कुपथमें प्रवृत्त है उसक हित उपदेश साध्य कदापि नहीं हो सकता ऐसा सोच कर सब ऋषि स्वस्थानको चले गये, इसके पश्चात् सब सचिवों तथा सुभटगणोंने विचार किया कि, यह अन्यायी राजा है. इस कारण किसी तरह इसे राजगद्दीसे उतार कर इसकी राजगद्दी पर इसके छोटे भाईको बैठालना अच्छा है. उपाय करने पर वैसा ही हुआ.

ततो भ्रातरि लब्धराज्ये सति भ्रात्रैवाहं हंतव्योऽस्मीति भयेन प्रपलाय्य तपोवनं जगाम। तत्र तु सर्वैरमात्यादिभिः परिहृतोऽपि निःपरिजनोऽपि लवंगिकानाम्नीं दासीं न परितत्याज। दासीसहायस्तपोवने तिष्ठति। तपस्विनां वनादानीतानि फलमूलानि बलादाच्छिद्य खादति। ततस्तव भ्राता त्वां व्यापादयितुमागच्छतीति श्रावयित्वा त्रासितस्तपस्विभिः खेदितश्च तस्मादेकवेश्यासहायो निर्द्धनो निष्परिजनश्च प्राणभयेन गिरिगह्वरं प्रविवेश। तत्र च भक्षणोपयोगिवस्तूनामभावात्प्रत्यहं धन्वी शरप्रहारेण मृगान् व्यापादयन् व्याध इव मृगमांसेन जीवति। एवं परमकष्टेन ताभ्यां कियत्यपि समये नीयमाने तयोर्वस्त्राणि जीर्णानि शीतकालश्च प्रत्यासन्नो बभूव द्वयोरप्येक एव कंबलः शीतत्राणकरः। यदा तु पुरुषो मृगवधार्थी स्थानान्तरं गच्छति तदा द्वयोरेकः शिशिरेण परिभूयते। एकदा तु दास्या परमदुःखितयाऽभिहितम्। धिक् त्वां पुरुषाधम। राजकुलजातोऽपि स्वज्ञानदोषेण राज्यच्युतः सीदसि। मामरण्यमानीय किमित्यवसादयसि। ततो मां मारय वा त्यज वा। दुःखं सोढुं न क्षमाऽस्मि। त्वं च शूरोऽपि कथमेतादृशीं दशामनुभवसि। तथाहि—

अब इसका छोटा भाई राजा हुआ. यह देख इसका कलेजा इस विचारसे धडकने लगा कि, ऐसा न हो कि मेरा छोटा भाई राज्यको निष्कंटक करनेके अभिलाषसे मुझको ही मार डाले सो यहां मेरा रहना ठीक नहीं ऐसा विचार करके उसने वहांसे भाग कर तपोवनकी शरण ली, उसने वहांसे भागते समय एक लवंगिका नामक चेटीको छोड और किसीको साथमें न लिया,

बनमें जाकर लवंगिकाके साथ विहार करनेलगा, दुर्जनोंका निश्चल स्वभाव होता है कि, वे नहीं जाते हैं वे वहांही अपनी दुर्जनताको प्रकट करते हैं, तदनुसार दुष्ट रत्नांगदने उस शान्त तपोवनमें जानेपरभी अपनी दुष्टता त्याग न की, वह क्या करता था सो सुन लीजिये, विचारे तपस्वीगण महत् परिश्रमसे इधर उधरसे खोज कर जो फल मूल ले आते थे उनको छीनकर यह दुष्ट खा लेता. कभी कमण्डलु फोड डालता किसी दिन उनके वस्त्रोंको व्यर्थही फाड देता इस प्रकार वह ऋषियोंका बडा उपद्रव करने लगा. यह देख सब ऋषि आजीज होगये. उन्होंने इस दुष्टसे कहा कि, रे खल ! तेरा भाई तुझको मारनेके लिये यहां आ रहा है सो यहांसे भाग जा नहीं तो तेरे प्राण न बचेंगे. इस प्रकार डरानेपर दुष्ट रत्नांगदने भयभीत हो लवंगिकाको साथमें ले लिया और वहांसे भागकर एक पर्वतके गुफामें छिप कर रहने लगा, वहां उस निर्जन स्थानमें उसे खाद्य वस्तु क्या प्राप्त हो इसलिये वह वहां मृगया जीवी बन गया, प्रतिदिन व्याधके समान धनुष बाण हाथमें रखकर बनको जाता और वहां मृगोंको मारकर उनके मांससे अपना निर्वाह करता इस प्रकार रत्नांगदने बडे कष्टसे कुछ समय व्यतीत किया अब स्त्रीके समेत रत्नांगदके वस्त्र जीर्ण होगये और शीत कालभी निकट आगया दोनोंके बीच शीतसे रक्षा करनेवाला कम्बल भी एकही था, इस कारण जब खल रत्नांगद उस कम्बलको ओढकर मृगया करनेके लिये बनको जाता तब विचारी उसकी दासीको जाडा सताता. यह देख एक दिन दासी लवंगिकाने रत्नांगदसे कहा--कि, रे अधम ! तुझे धिक्कार है कि, राजाके कुलमें उत्पन्न होनेपरभी अपने अज्ञानके दोषसे राज्यच्युत हो तू इस जीर्ण अरण्यमें कष्ट सह रहा है और यहां ले आकर मुझकोभी कष्ट सहा रहा है सो दोमेंसे एक बात कर या तो मुझे मारही डाल या त्याग दे, अब मुझसे यह असहनीय कष्ट सहा नहीं जाता, रे नृप ! तू शूर है फिर तेरी यह दुर्दशा क्यों क्या तुझे याद नहीं है ?:-

पर्यङ्केण विना न यस्य शयनं यात्रा न वाहैर्विना
कर्पूरेण विना न जातु समभूत्तांबूलपूर्णं मुखम् ॥

मायूरैर्व्यजनैर्बिना न पवनः प्रायोऽभवत्प्रीतये
स त्वं सीदसि लुब्धकप्रतिनिधीभूतः कथं भूतवत् ॥ ८ ॥

नाहिं पर्यङ्क विना तू शयन नृपति ! करता था
तथा अश्वके विना नहीं यात्रा करता था ।
कपूर वासित पान विना मुख हुआ कभी क्या ?
मोर व्यजनके सिवा पवन था सुखद कभी क्या ? ॥
ऐसा तू क्यों सम्प्रति फिरता नृप है भूतसा ।
सीदाति खाता है तथा इस तपवनमें व्याध सा ॥ ८ ॥

रत्नांगद उवाच । मर्षय । सुसमयसापेक्षः पुरुषस्य विपत्प्रतीकारस्तदुद्वेगो न कर्तव्यः । अस्यां तु रात्रौ त्वमग्निसेवया हिमपराभवं परिहर । अहं तु कंबलमादाय द्वितीयकंबलार्थी क्वापि गच्छामि । तुभ्यमचिरादेव कंबलमानीय दास्यामीति सप्रातिज्ञः कंबलमादाय नगरं प्रति जगाम । तत्र च कस्यचित् ब्राह्मणस्य गृहे संधिं भित्त्वा संधिमुखात् प्रकाशनिवारणार्थं कंबलं संधिमुख एव धृत्वाऽपरकंबलार्थी गृहं प्रविवेश । यावदसौ ब्राह्मणस्य कंबलमाकर्षति तावत्तस्य निद्राभंगो जातः । भग्ननिद्रं ब्राह्मणं ज्ञात्वा चौरो बहिर्निश्चक्राम । ब्राह्मणस्तु रे रे पौराश्चौरं मारयतेति मुहुरुच्चैर्वदन् निर्जगाम । तेन त्रासेन चौरः स्वकीयं कंबलं परित्यज्य पलायितः । पलायमानस्तु परिश्रांतः कियत्यपि दूरे स्थित्वा शीतार्त्तश्चिंतयामास । अहो मया परकंबलार्थमागतेन स्वकीयकंबलोऽपि हारितः तत्केन कृतमिदम् । कर्तुरिच्छाप्रयत्नाभ्यां विना क्रिया न संभवति । तत्कस्येच्छया प्रयत्नेन वा मम कंबलो गतः । यदि ममेच्छया भवति तदा ममैवाभीप्सितकंबलस्य लाभः संपद्येत । तद्विपरीतं केन कृतम् । स तावदस्ति काश्चत्कर्तृस्वभावः संसारे । मन्ये स एव परमेश्वरः । तमेवाराध्यत्वेन निर्दिशन्ति मुनय इति परिचितः पदार्थः । अहो कष्टं मोहेनाद्यपर्यंतं मया संसारकर्त्ताऽपि न परिचितः । तथा द्वि–

यह सुनकर रत्नांगदने कहा-- हे प्रिये ! धीरताको न त्याग. मनुष्यकी विपत्तिका प्रतीकार सुसमय सापेक्ष है सो जब अच्छा समय आवेगा

तब देखना इस विपत्तिका पता तक न रहेगा. ऐसा विचारकर उद्वेग न कर. देख इस कम्बलको ओढकर दूसरा कम्बल लानेके लिये यह मैं चला, तू अग्निके सेवनसे शीतजन्य कष्टको नष्ट करके किसी तरह आजकी रात काट, मैं शीघ्रही दूसरा कम्बल ले आकर तुझे दे दूंगा. रत्नांगद ऐसी प्रतिज्ञा करके नगरकी ओर चला और वहां किसी एक ब्राह्मणके घरमें सेंध मारकर घरमें घुसा, उसने निजका कम्बल सेंधके ऊपरही रख दिया था जिससे कि बाहरी प्रकाश भीतर न जाय. जाडेकी रात तो थी ही इसलिये ब्राह्मण जो कि उस गृहका स्वामी था एक मोटा कम्बल ओढकर आरामके साथ चटाईपर सो रहा था, यह देख रत्नांगदने उस विप्रके शरीरके ऊपरसे कम्बलको खींचा बस इतनेमें उस विप्रकी निद्रा भंग होगई और चोर चोर मारो मारो पकडो पकडो ऐसा कहकर चिल्लाने लगा यह देख रत्नांगद जल्दी बाहर निकल आगया और डरके मारे अपने कम्बलकोभी छोडकर वहांसे भागा, भागते भागते कुछ दूरी· पर गया. वहां थकावटके मारे शिथिल होकर चुपसे बैठ गया और शीतार्त हो अपने दिलमें यों सोचने लगा कि, मैं दूसरा कम्बल लानेके लिये आयाथा पर अपना कम्बलभी खोदिया, तो यह काम किसने कर्ताकी इच्छा तथा प्रयत्नके विना तो कोई कार्य होताही नहीं तो किसकी इच्छा या प्रयत्नसे मेरा कम्बल गया. यदि कहो कि मेरीही इच्छासे यह कार्य हुआ तो मुझे वह कम्बल भी लब्ध होना चाहिये क्योंकि वह भी तो मेरा अभीप्सित ही था, तो मेरी इच्छाके प्रतिकूल यह कार्य किया किसने ? जान तो ऐसा पडता है कि इस संसारमें कोई कर्तृ स्वभाववान् पुरुष अवश्य है बस जान लिया वही परमेश्वर है, मुनि लोग उसीको आराध्य देव बताते हैं, अब क्या है, अब मैंने असली पदार्थ जान लिया, खेद तो इस बातका है कि जो संसारका कर्ता है उसको भी मैंने अभी तक न जाना. देखोः--

अबोधेनाप्तवाक्यानां मनोदोषैर्मदादिभिः ।
अपि त्रैलोक्यनिर्माता न ज्ञातः परमेश्वरः ॥ ९ ॥

अज्ञानसे ही ध्रुव आप्तवाक्यके मदादिसे जो मन जन्य दोष है ।
परेशको भी हम जानते नहीं त्रिलोकको जो रचता तुरन्त ही ॥ ९ ॥

तदिदानीं किं करवाणि । अथवा—

तो इस समय हम क्या करें ? अथवाः--

प्रतिजन्म मनुष्याणां कामात्पापानि कुर्वताम् ।
यदा धर्मे भवेद्बुद्धिस्तदेव दिवसं शुभम् ॥ १० ॥

मनुज हो करते निज कामसे अघन क्यों निजके प्रतिजन्ममें ।
सुदिन है बनता इनका पर सुकृति हैं करते यदि ये पुनः ॥१०॥

यदैवारभ्यते धर्मस्त्यक्तदोषेण जन्तुना ।
तदादिरेव कालोऽस्ति स्वर्गाय च शुभाय च ॥ ११ ॥

और भीः--

जगतमें सब दूषण त्यागके सुकृत हैं करते जबसे नर ।
समय है उनका तबसे ध्रुव शिवपुरी प्रद औ शिवकारक ॥ ११ ॥

अन्यच्च—

भेषजेन यथा व्याधिरपगच्छति रोगिणः ।
पुण्येनापि तथा मन्ये पापं नश्यति पापिनः ॥ १२ ॥

और भीः--

प्रयोगसे भेषजका यथा है विनष्ट होता गद रोगियोंका ।
मानो तथा भूपर पुण्यसे भी है नष्ट होता अघ पापियोंका ॥ १२ ॥

तदद्यारभ्य तपश्चरणपरायणो भवामीति कृतनिश्चयः स राजा वनात् तां दासीं करुणया पुरमानीय तत्याज। स्वयं च चिंतयामास--

तो आजसे हमें तपश्चर्यामें ही लीन होकर रहना चाहिये, ऐसा निश्चय करके रत्नांगदने करुणाके कारण उस दासी लवंगिकाको नगरमें ले जाकर छोड दिया और स्वयं ऐसा विचार करने लगा किः--

ये याता दिवसा गता हि खलु ते नायान्ति यत्नात्पुन-
र्यास्यंतोऽपि हि संति हंत बहवः कालः कुतः सावधिः ।
अद्यारभ्य ततश्चराचरगुरोः शम्भोः पदाम्भोरुहे
चेतः षट्पदयंस्तमो विदलयन् नेष्यामि शेषं वयः ॥ १३ ॥

बीते जो दिन वे गये फिर न वे आते कभी यत्नसे
बीते वे दिन किन्तु शेष बहु हैं सीमा न है कालकी ।
चेतस्को अबसे चराचर गुरु श्रीशम्भु पादाब्जमें
करके षट्पद मोहको हत अवस्थाका करूंगा व्यय ॥ १३ ॥

ततः स राजा महानुभावस्तपस्वी बभूव । श्लोकः-

इसके पश्चात् वह राजा महानुभाव तथा बडा तपस्वी बन गया॰ कहा भी हैः-

न चौरो न तपस्वी वा जातमात्रस्तु मानवः ।
स्वव्यापारपरीणामाद्यतिश्चौरश्च कथ्यते ॥ १४ ॥

इति पुरुषपरीक्षायामनुशयिकथा ॥

उत्पत्तिसे ही जगमें न कोई है स्तेन होता अथवा तपस्वी ।
स्वकर्मकेही परिणामसे ये मनुष्य होते यति चोर या हैं ॥ १४ ॥

इति अनुशयी कथा समाप्ता ॥

अत्र प्रत्युदाहरणीभूता दांभिकादयो न प्रत्युदाहृताः पुरुषलक्षणानाक्रांतत्वात् । नहि ते पुरुषाः किंतु वंचकगणपरिपठिता भवंति ॥

यहां दांभिक तथा धूर्त आदिके प्रत्युदाहरण नहीं दिये गये. क्योंकि वे पुरुष लक्षणोंसे अनाक्रान्त होनेके कारण पुरुष नहीं हैं, किन्तु इनकी गणना वंचकगणोंके बीच की जाती है.

अर्थकथाः ।

३१ महेच्छकथा ।

तद्यथा-

महेच्छमूढबह्वाशाः कथ्यंते धनिकास्त्रयः ।
यथालक्षणमेतेषामुदाहृतिकथास्तथा ॥ १ ॥

तीनि किसमके धनिक हैं महेच्छ मूढ बह्वाश ।
इनके चिह्न उदाहरण करता हूँ सुप्रकाश ॥ १ ॥

तेषु प्रथमं महेच्छो यथा-

इनमें पहला महेच्छ वह कहा जाता हैः-

न्यायेनोपार्जितं वित्तं दाने भोगे च योजयेत् ।
यः पुण्ययशसोः पात्रं महेच्छः स प्रकीर्त्तितः ॥ २ ॥

विभवका कर अर्जन न्यायसे मनुज जो करता सुख दान है।
सुकृतका यशका फिर पात्र है वह महेच्छ नृपाल ! मनुष्य है ॥१॥

बभूव पाण्डुपत्तने गौडमहीपतेर्मंत्री महराजदेवो नाम क्षत्रियः । स च स्वामिभक्तिपवित्रः प्रभुसम्मानपात्रं सत्यराज इति नाम लेभे। तथा हि—

पाण्डुनामके नगरमें एक गौड राजा राज्य करता था. उसका मंत्री एक क्षत्रिय था, जिसका नाम था महाराजदेव. महाराजदेव अपने स्वामीका बडा भक्त था इस लिये वह ' सत्यराज ' इस नामसे पुकारा जाता था. कहा भी है:—

धर्मार्थकाममोक्षाख्ये पुरुषार्थचतुष्टये ।
तं न पश्यामि लोके यः स्वामिभक्त्या न सिद्ध्यति ॥ २ ॥

काम मोक्ष धन धर्म ये चारोंही पुरुषार्थ हैं।
स्वामीसेवासे नहीं होता कौन सुप्राप्य है॥ २॥

ततः स मंत्री सहजधार्मिको धर्माविरुद्धैरुपायैः [illegible] परामर्शसनाथैः प्रचुरं धनमर्जितवान् । संचितधनश्चिन्तयामास । यद्यप्यर्थः स्वतंत्र एव पुरुषार्थो [illegible]हमस्मीत्यभिमानो विद्यत एव तथाऽपि श्रीः सर्वतोमुख्यास्ति सदाऽधिकाधिकधनोपार्जने परीक्षितभक्तयः कार्यकुशलाः पुरुषाः प्रयुक्ता एव संति । तथा हि—

इसके पश्चात् उस मंत्रीने जो कि स्वभावहीसे बडा धार्मिक था, धर्मके अविरुद्ध उपायोंसे बहुतसे धनका संचय किया [illegible] उसने देखा कि, मेरे पास बहुतसा धन इकट्ठा हो गया [illegible] सोचा कि, यद्यपि पुरुषार्थोंमें, अर्थ एक स्वतंत्र पुरुषार्थ है, तथापि यह चंचल है, यह एक जगह कदापि नहीं रहता. [illegible] कारणभी यही है ऐसा जानकरभी अधिकाधिक धनके उपार्जनसे मुख मोड लेना उचित नहीं. अच्छा तो अब मुझे धनके लिये तो कोई प्रयास है ही नहीं, क्योंकि मैंने तो इसकी वृद्धिके लिये ऐसे ऐसे परीक्षित तथा विश्वासी पुरुषोंको नियुक्त कर रक्खा है कि, जो इसको प्रवृद्ध करनेमें बडेही प्रवीण हैं. कहा भी गया है कि:—

नाप्ताः परिजना यस्य यश्चामीषु न विश्वसेत्।
कार्यभारस्य वोढाऽसौ न कार्यफलभाजनम् ॥ ४ ॥

जो लोकमें न रखते नर आप्तबन्धु विश्वास जो न रखते फिर बन्धुओंमें।
हैं वे मनुष्य ध्रुव केवल कार्यवाही होते कभी न फल भाजन कार्यमें वे४॥

यः कृतार्थमिवात्मानं संचितैर्मन्यते धनैः।
निरुद्योगतया तस्य लक्ष्मीरग्रे न वर्द्धते ॥ ५ ॥

और भीः--

मनुज जो निज संचित अर्थसे समझता निजको सुकृतार्थ है।
रहित देख उसे निज यत्नसे नहिं रमा उसकी बढती पुनः ॥ ५ ॥

अन्यच्च-

सहायाः कुशला यस्य बहवो वशवर्त्तिनः।
करोपान्तगता तस्य धनोपार्जनयोग्यता॥ ६ ॥

औरभीः--

कुशल और वशम्बद लोकमें बहुत हैं जिसके स्वसहायक।
स्वकरमें उसके रहती सदा विभव अर्जनकी ध्रुव योग्यता ॥ ६ ॥

न धनं धनमित्याहुर्धनमर्जनयोग्यता।
हीयते हि धनं पुंसां योग्यता तु न हीयते ॥ ७ ॥

न धनको धन हैं कहते बुध विभव है पर अर्जन योग्यता।
मनुजका धन है घटता पर मनुजकी घटती नहिं योग्यता ॥ ७ ॥

तन्ममेदानीं सर्वमिदमस्त्येव। धनार्थं काऽपि चिंता नास्ति। तथाऽपि धनप्रयोजनं चिंत्यं भवति। यतः-

तो इस समय मुझे किसी वस्तुकी कमती तो है ही नहीं. धनके लिये भी कोई चिन्ता नहीं. क्योंकि वह तो खजानेमें भराही है हां एक बातकी चिन्ता अलबत्ता है वह यह कि धनका उपयोग कैसे करना. क्यों किः--

प्रस्थमात्रं नृपो भुङ्क्ते प्रस्थं चैवेतरे जनाः।
किमस्य धनसंपत्त्या किमेषां च धनैर्विना ॥ ८ ॥

नृप तथा नर प्रस्थर मात्रही जगतमें करते यदि भोजन ।
नृपतिको धनसे फिर लाभ क्या ! धन विना नरको फिर हानि क्या॥८॥

ततो धने लब्धे धनलाभफलभाजनं भवामीति परामृश्य स्रक्चंदनवनितातांबूलादिभिर्धर्माविरुद्धानि सुखान्यनुभवन्निष्टापूर्तादिभिः कीर्त्तिं स्थापयंस्तुलापुरुषादिदानैः पुण्यं संचिन्वन् [1]कांचनैर्गुणिनश्च पूजयन्परमवैदग्ध्येन यौवनं निनाय । यौवनांते च विषयविरक्तौ जातायां व्रतोपवासादि कायक्लेशसाध्यमपि पुण्यराशिं संचितवान् । प्रत्यासन्ने च सर्वदर्पहरे वार्द्धके वयसि क्रमेण देहे रूपबलयोरपचयं गृहे धनानामुपचयं च दृष्ट्वा चिंतयामास । तद्यथा–

तो अब अर्थ मेरे पास हैही, अब इसके फलका भाजन बनना उचित है, ऐसा परामर्श करके वह मंत्री स्रक् चन्दन वनिता ताम्बूल आदि धर्मके अविरुद्ध विषय भोग करने लगा. समय समय पर अग्निहोत्र आदि यज्ञोंके करनेसे भी न रुका करताही रहा. उसने अनेक वेर तुला पुरुषोंका दान किया और हमेशाही कांचनोंके द्वारा गुणियोंका सम्मान करता रहा, जिससे वह पुण्य तथा कीर्ति दोनोंका भागी बन गया. इस प्रकारके अच्छे २ कार्योंको करता उसने अपना यौवन व्यतीत किया. यौवनके अन्तमें इसका चित्त विषयसे विरक्तिको प्राप्त हुआ. इस कारण यह कायक्लेश साध्य होनेपरभी व्रत उपवास करनेसे न रुका. और बहुत पुण्यका अर्जन कर लिया, अब इसकी वृद्धा अवस्था जो कि सब दर्पोंको चूर करनेवाली है, आ पहुँची. अब इसका शरीर ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह सौन्दर्य तथा शक्तिका मरुस्थल हो. अब इसके शरीरमें न तो वह शोभाही रह गई और न रत्तीभर शक्तिही. इस प्रकार शरीरके रूप तथा बलका अपचय और घरमें धनका उपचय देख महाराजदेव फिरभी यों सोचने लगा.--

यास्यंत्येव धनानि मय्युपरते यास्यंति सर्वाः कला-
यास्यंति प्रभुशक्तयः क्षयमिमा यास्यंति देहश्रियः ।
एवं यास्यति वैभवेऽपि सकले त्यक्तश्चिरेणापि न
स्तत्तृष्णाविजयोत्सवाय सकलं किं न त्यजामो वयम् ॥ ९ ॥

---

१ अग्निहोत्रादौ इष्टे ।

होगा अर्थ विनष्ट विरत होऊंगा मैं जब
तथा अवश्य विनष्ट कलायें होगी मम सब।
होगा नष्ट प्रभुत्व देह शोभा जावेगी
इस प्रकार सब सम्पद् भी द्रुतही जावेगी॥
जीते जी फिर क्यों नहीं इस जगतीतलमें अभी।
तृष्णाके जयके लिये त्याग करूं मैं वस्तु सभी॥ ९॥

तत्सकलवैभवत्यागे तृष्णात्यागः प्रकाशितो भवतीति हरिश्चंद्रस्पर्धया गंगासरय्वोः संगमे स सत्यराजोऽनशनविधिना तनुं तत्याज। सुरलोकपूजितश्च स स्वर्गं जगाम।

जब तक मैं सब विभवोंको न त्याग दूंगा तब तक तृष्णाका त्याग प्रकाशित हो यह तो सम्भव है ही नहीं इसलिये मुझे सबके पहले विभवोंका त्याग करना उचित है, ऐसा परामर्श करके सत्यराज महरानदेव राजा हरिश्चन्द्रके समान सब विभवोंको त्याग गंगा तथा सरयूके संगममें चला गया और वहां अनशन विधिसे शरीरको त्याग कर सुरलोकको सिधारा. यहां कविकी उक्तिः--

आपरार्द्धमपि संचितं धनं आविरक्ति सुखमत्र सेवितम्।
आमनोरथमिहार्थिनोऽर्चिताः पौरुषं च किमतः परं सताम्॥ १०॥

परार्द्ध तक यदि अर्थ सुसंचित किया गया है
होते तक सन्तोष सौख्य यदि किया गया है।
मनवांछित यदि अर्थ भिक्षुको दिया गया है
फिर बढ कर इससे सुजनोंका पौरुष क्या है॥ १०॥

अपिच--

दूरादुपद्वारमुपागतेभ्यः के याचकेभ्यो वसु नार्पयन्ति।
दाता महेच्छो महराजदेवः प्रास्थापयत् प्रार्थकगेहमर्थान्॥ ११॥

इति पुरुषपरीक्षायां महेच्छकथा॥

और भी.--

जगती तलमें होगा ऐसा कौन भला नर
देता याचकको न अर्थ जो आते घर पर।

महेच्छ श्री महराज देव वर दाताने पर
भेजी धनकी राशि सदा प्रार्थकके घर पर ॥ ११ ॥
॥ इति महेच्छ कथा समाप्त ॥

३२ मूढकथा ।

लप्स्यमानधनावेशात् कृतलब्धधनव्ययः ।
त्रिवर्गविषयाविज्ञः स मूढ इति कथ्यते ॥ १ ॥

कर लूंगा मैं पुनः लाभ निज मतिसे धनका
करता यह जो सोच खर्च निज लब्ध विभवका ।
अज्ञाता फिर त्रिवर्गका जो इस जगमें है
कहते उस मानवको मूढ विपश्चित् जन हैं ॥ १ ॥

तद्यथा–आसीदयोध्यायां पुरि भूरिवसुर्नाम वणिक् । तस्य प्रचुरवसुर्नाम पुत्रो बभूव । स च पितर्युपरते लब्धपितृविभवः पितृपरिजनवृद्धान् पृच्छति स्म । रे वृद्धाः! कथयत मम पिता केनोपायेन धनमेतावदर्जितवान् । वृद्धा ऊचुः । वाणिज्यया केवलम् । तथा हि–

इसकी कथा इस प्रकार हैं:--

अयोध्यानगरमें भूरिवसु नामका एक बनियाँ रहता था. उसको एक ही पुत्र था जिसका नाम प्रचुरवसु था. जब इसका पिता स्वर्ग लोकको सिधारा तब इसने अपने पिताके सब विभवोंको प्राप्त करके अपने पिताके वृद्ध परिजनोंसे पूँछा कि, हे वृद्धों ! बताओ मेरे पिताने किस व्यापारसे इतना धन उपार्जन किया था. वृद्धोंने उत्तर दिया केवल वाणिज्यसे क्योंकि:-

वृद्धोपदेशतो ज्ञानं प्रतिष्ठा राजसेवया ।
यशः पुण्यं च दानेन द्रविणं तु वाणिज्यया ॥ २ ॥

ज्ञान सदा होता वृद्धोंके उपदेशोंसे
तथा प्रतिष्ठा होती नृपकी सेवाओंसे ।
करनेसे फिर दान पुण्य वर यश मिलते हैं
द्रविण वणिज्यासे तथैव साधो ! मिलते हैं ॥ २ ॥

प्रचुरवसुरुवाच । कीदृशी सा वणिज्या । वृद्धा ऊचुः । साधो !

पिता तव गौडे क्रीतं वस्तु गज्जने विक्रीय गज्जने क्रीतं गौडे विक्रीय यदा यत्र सुलभं तदा तत्र तत् क्रीणाति महर्घे विक्रीणीते। तथाहि-

यह सुन कर प्रचुरवसु बोला-कि, हे वृद्धों! बताओ वह वाणिज्य कैसे की जाती है? यह सुनकर वृद्धोंने कहा-रे वणिक्! तेरा बाप गौडमें माल खरीदता था और गज्जनमें जाकर बेचता था, इस प्रकार गज्जनमें माल खरीदकर गौडमें विक्री करता था, जहां उसे जो सस्ता माल मिलता था. वहां उसे खरीद कर देशान्तरमें लेजाकर महर्घभावसे बेचा करता था. कहा भी है:--

देशाद्देशान्तरं नीतं कालात् कालान्तरं तथा।
वस्तु मूल्यविभेदेन वणिजो लाभमादिशेत्॥ ३॥

एक देशसे देशान्तरमें बेची जाती
एक कालसे कालान्तरमें बेची जाती।
हैं जो चीजें मूल्य भेदसे वे नर पालक।
ध्रुवहीं है अतिशय वणिजोंको फैदा कारक॥ ३॥

पतिभक्ता न या नारी व्यवसायी न यः पुमान्।
तावुभावपि लीयेते वृष्टिपाषाणखण्डवत्॥ ४॥

औरभीः--

अति न जो महिला पति भक्त है न करता नर जो व्यवसाय है।
अवश ये मनुजद्वय नष्ट हैं उपलसे वणिजात्मज! वृष्टिके॥ ४॥

ततो भवानपि व्यवसायं कर्तुमर्हति। पुरुषो व्यवसायं विना लक्षेश्वरोऽपि लक्ष्म्या परिहीयते। ततः स वणिक्पुत्रश्चिंतयामास। यत् कोटिसंख्यं मम वित्तं विद्यते तन्मध्ये लक्षक्रीतं वस्तु देशादेशांतरं नीतं दशगुणं भविता। भाव्यमानायां धनवृद्धौ का चिंता। दशभिरेव लक्षैः पुनः कोटिमुत्पादयिष्यामि। संप्रति तु दशलक्षपरिशिष्टधनव्ययं कुर्वन् यौवनोचितं सुखमनुभवामि। यतः-

इस लिये रे साधु! तूभी व्यापारकर देख. जो मनुष्य व्यापार नहीं करता चाहे वह कोटिध्वजभी क्यों न हो झट उसे लक्ष्मी त्याग देती है. यह सुनकर उस साधुपुत्र प्रचुरवसु सोचने लगा कि इस समय मेरे पास एक कोटि द्रव्य है उनमेंसे यदि मैं एक लाख लेकर व्यापार करूं तो

वही एक लाख दशगुना हो जावेगा फिर दशलाखसे एक करोडका होना क्या मुश्किल है इस समय दश लाखको छोड शेष द्रव्योंका व्यय करके हम यौवनोचित सुखका अनुभव क्यों न करले. कहाभी है कि:-

अर्था भवंति गच्छंति लभ्यन्ते च पुनः पुनः ।
पुनः कदाऽपि नायाति गतं तु नवयौवनम् ॥ ५ ॥

जगती तलमें अर्थ समूह अवश होते हैं
जाते हैं फिर फिर ये लब्ध तथा होते हैं ।
शरीरसे: यदि चला गया यह नव यौवन है
कदापि नाहिं फिर लौट देहमें आता यह है ॥ ५ ॥

परिजनास्तं तुष्टुवुः । साधु वणिक्पुत्र साधु । पिता तव कृपण आसीत् धनोपार्जनायासमात्रपात्रं बभूव । धनं तु त्वया भोक्तव्यम् । ततस्तेषां वचनेन जातरभसः[१] स मूढः सर्वस्वव्ययमंगीचकार । यतः-

यह सुनकर परिजनोंने प्रचुरवसुकी बडी प्रशंसा की कि, वाह रे साधु पुत्र वाह, सचमुचमें तू बडा उदार है तेरा पिता तो बडाहीं कृपण था. उसने यह न जाना कि उपभोग क्या पदार्थ है. हां धनोपार्जनमें तो वह अवश्य बडा प्रवीण था, इसालिये वह अन्ततक धनके उपार्जन जन्य क्लेशकाही पात्र बना रहा. खैर अब उसके उपार्जित धनका उपयोग तू अच्छी तरह करेगा. परिजनोंके वचन सुनकर मूढ प्रचुरवसु बडा आनन्दित हुआ और सर्वस्व व्यय करनेके लिये उद्यत होगया. कहा गया है कि:-

धनं यस्य व्यथा तस्य व्ययेव्यसन[२]कर्मणि ।
भोक्तॄणां पुनरन्येषां कुतः पीडा धनव्यये ॥ ६ ॥

व्यय होनेसे तथा नाश होनेसे धनके
होते हैं वे व्यथित मनुज जो पाते हैं धनके ।
पर भोक्ताको तथा अन्यको होती नृपवर !
क्या थोडीभी व्यथा अन्य धन व्यय होनेपर ॥ ६ ॥

अपि च-

आसादयंति खादंति यावत्स्वामिधनं नराः ।
तावदेव स्तुवंत्येनं क्षीणवित्तं त्यजंति च ॥ ७ ॥

---

१ हर्षः । २ विपत्तौ दोषे च ।

औरभीः-

पाते हैं जबतक ये नर स्वामीके धन हैं
खाते हैं जबतक ये नर उनके फिर धन हैं ।
तबतक ही ये निज स्वामीकी स्तुति करते हैं
देख अर्थसे हीन उन्हे ये तज देते हैं ॥ ७ ॥

इत्युदर्कमपरामृशन्नेव स युवा स्रक्चंदनवनितातांबूलादीनामुपभोगेन सर्वं धनमुत्सन्नमकरोत् । परिशिष्टे दशलक्षेऽपि पूर्वेणैव परामर्षेण लक्षमेकं धृत्वा नव लक्षाणि वियोजयामास । पश्चाद्दशममपि लक्षं चखाद । तथा हि-

इसके पश्चात् उस युवा मूढ प्रचुरवसुने क्या किया सो सुन लीजिये उसने उदर्कके तरफ कुछभी ध्यान न देकर स्रक् चन्दन वनिता ताम्बूल आदि विषय भोगमें अपना सर्वस्व खो दिया, अब इसके पास सिर्फ दश लक्ष रह गये उनमेंसेभी नव लाख खर्च कर दिये अब जो एक लाख बचे उनकोभी इसने वही दशा की जो कि और वित्तोंकी. इसीलिये कहा गया है किः-

क्षयिते निःस्रवे कूपे जनोद्धृतजले जलम् ।
निरुपाये तथा गेहे क्षीणं भवति वैभवम् ॥ ८ ॥

यथा सोतसे हीन कूप जगमें सुखजाता
यथा उलचनेसे जलके जल द्रुत सुख जाता ।
तथा विभव नाहिं कभी ठहरता ध्रुव उस गृहमें
मनुज उपाय नहीं करता कोई है जिसमें ॥ ८ ॥

ततः क्षीणे सर्वधने वणिक्पुत्रः सर्वोपायासमर्थोऽवसादमाससाद । श्लोकः-

इसके पश्चात् जब प्रचुरवसुका सर्वस्व क्षीण होगया तब उसे कोईभी उपाय न सूझा और अपार चिन्ता समुद्रमें निमग्न होगया--

वित्तं विना बुद्धिविवेकहीनः पूर्वानुगत्या बहुलव्ययश्च ।
लक्षेश्वरो निर्द्धनतामुपेतः कमप्युपायं क्षमते न कर्तुम् ॥ ९ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां मूढकथा ॥

कविकी उक्तिः—

विवेकसे मतिसे विहीन जो लक्षेश्वर हैं
अधिक आयसे करते वे जगतीमें व्यय हैं ।
अधिक व्ययोंके हेतु दरिद्री वे बनते जब
क्या उपाय करनेमें हैं क्षम होते नाहिं तब ॥ ९ ॥

इति मूढकथा समाप्त ॥

---

३३ बह्वाशकथा ।

तद्यथा—

न तृप्यति धनैर्लब्धैर्बहुलाभसमीहया ।
बहुष्वारोपयन्नाशां बह्वाशः परिकीर्त्तितः ॥ १ ॥

भूपै इच्छासे बहु प्राप्ति कीहीं
पाये धनसे जो नहीं तृप्त होता ।
रखता बहु जो है तथा नित्य आशा
कहते उसको विज्ञ बह्वाश भूप ॥ १ ॥

आसीद्विजयनगरे कृतिकुशलो नाम मालाकारः । स च मालानिर्माणकुशलः पुष्पादानविज्ञो नागरजनानां सेवां कुर्वन्नगरवासिभिर्दत्तं धनं प्रचुरमपि स्वल्पं मन्यमानः प्रचुरधनाशया नृपतिसेवामारेभे । नरपतिं निषेवमाणस्य मालाग्रथनकौशलेन पुष्पावसरे पुष्पपूरणेन च राजप्रसादमासादयतो बहूनि धनानि बभूवुः। तथाऽपि तस्य तृष्णापगमो न बभूव । ततो यथोत्तरं व्याकुलश्चिन्तयामास-

विजय नगरमें कृति कुशल नामका एक माली रहता था. वह माला निर्माणमें बड़ाही कुशल था. वह नागरिकोंको पूजा करनेके लिये प्रतिदिन फूल दिया करता था, उसकी सेवासे नगरके निवासी मनुष्य बहुत प्रसन्न रहा करते थे तथा उसे प्रचुर धन दिया करते थे, माली कृति कुशल एक बह्वाश पुरुष था इस कारण नगरवासियोंसे प्रचुर धनोंकी प्राप्ति करने परभी उससेभी प्रचुर धन प्राप्तिके आशयसे राजाकी सेवा करने लगा. अब क्या पूछना है उस माला निर्माणकुशल मालीने समय समय पर सुन्दर सुन्दर मालाओं तथा पुष्पोंके द्वारा राजाको प्रसन्न करके

उनसे बहुतसे द्रव्य प्राप्त करालिये, अपरिमित द्रव्यके अधिपति होनेपरभी उसकी तृष्णाका अपगम न हुआ, वह धनके लिये चेष्टा करते ही रह गया, एक दिन वह बडा व्याकुल होकर यों सोचने लगा. कि:--

अलब्धे सम्यगौदास्याल्लब्धे सन्तोषपोषणात् ।
अतिदानात्सुखासंगाद्धनवृद्धिर्न जायते ॥ २ ॥

धनके लाभ न होनेसे जो उदासीन बन रहता है
होनेसे फिर लाभ धनोंके सन्तोषी बन रहता है।
अतिशय दान तथा अति सुख जो इस जगतीमें करता है
उस प्राणीका धन नरपालक ! कभी नहीं ध्रुव बढता है ॥२॥

इति परामृश्य कलाकृषिवाणिज्यपाशुपाल्यादिधनोपायेषु धनानि व्यापारयामास । स्वयं च स्ववृत्तिपरायणो बभूव । राजसेवामंत्यजन्नात्मातिरिक्तेषु सर्वेष्वप्यजातविश्वासः स्वयमेव सर्वं कुर्वाणो व्याकुलो बभूव । यदा वाणिज्यमधितिष्ठति तदा कृषिर्न भवति । यदा कृषिं कुरुते तदा कलाग्रहणं न संभवति। यदा कलाः कलयति तदा पशुपोषणं न संपद्यते । तदेकतः सासंगोऽन्यतः प्रच्युतो भवति । तथा सति सर्वं चिकीर्षुरपि न किमपि कर्तुं शक्नुवन् परमानिष्क्रियो बभूव। जातप्रकोपेन राज्ञा दंडितो धनानि च तस्य गृहीतानि ।

इसलिये हमें तो यह उचित है कि, हम अपने धनोंको कला, कृषि, वाणिज्य, पाशुपाल्य आदि व्यापारोंमें अपना धन लगा दें. क्योंकि प्रचुर धन प्राप्तिके उपाय ये ही हैं, ऐसा परामर्श करके उसने सब व्यापारोंका करना शुरू कर दिया । इधर उसने राजाकी सेवा भी न छोडी. उसे किसीपर विश्वास तो थाही नहीं इसलिये उसे सब काम खुद करने पडते थे, इस प्रकार वह बडा व्याकुल होगया, जब वह वाणिज्यमें लग जाता तब उसकी खेतीके काम बिगड जाते, जब कभी वह खेती करने लगता तब उससे कलाका ग्रहण नहीं हो सकता फिर जब कला ग्रहणमें लीन हो जाता तब उसके पशु पालनका काम नष्ट होजाता था, इस प्रकार चिकीर्षा रखने परभी व-

माली एकभी कार्य करनेमें क्षम न हो सका ऐसा देखकर राजाको बढा क्रोध हुआ और उसने उसे दण्ड देकर उसका सब धन छीन लिया.

ततो हीनधनो मालाकारः स दरिद्रतामुपागतो दरिद्रतादोषै राधिष्ठितश्च । तथा हि—

इसके पश्चात् वह माली धन हीन हो दरिद्रताके दोषोंसे अधिष्ठित हो गया. दरिद्रोंके दोष ये हैं:—

क्षुधा दुर्लभलाभेच्छा मौखर्यं कटुभाषणा ।
पंच दोषा दरिद्रस्य प्रस्तावे चानभिज्ञता ॥ ३ ॥

अति मनोरथ दुर्लभ वस्तुका मुखरता. कटु भाषण औ क्षुधा ।
समयपै फिरभी अनभिज्ञता अधनके यह दूषण पांच हैं ॥ ३ ॥

ततः स मालाकारोऽपि पुरुषलक्षणाक्रांतः परिवारभरणार्थं पुनः पुनः पौरुषमारभते । एकदा तूपायनीभूतानि पुष्पाणि नीत्वा रात्रौ नगरांतरं गच्छन् प्रांतरे पुष्करिणी[1]द्वयमध्ये महत्परिमाणं भाण्डसप्तकं संचरद्ददर्श । दृष्ट्वा च चिंतयामास । अहो कथमचेतनानि भांडान्येकस्याः पुष्करिण्या निस्सृत्यापरां पुष्करिणीं गच्छंति । परमाद्भुतमेतत् । प्रायेण निधिभांडानि निधिदेवताशक्त्या संचरंति । ततः पूजयामीति पूजयामास । ततः कियताऽपि कालेन प्रतिरात्रपूजापरितुष्टात्प्रथमभांडात्करुणार्द्रं वचनमुत्थितम् । रे दरिद्र ! पश्चादागामिभांडात्सुवर्णं ग्रहीष्यसि । तत्पश्चादागामिभिः पंचाभिरपि तदेवोक्तम् । सप्तमभांडेन च सम्यग्विघटितपिधानेन प्रकाशितसुवर्णेनोक्तम् । रे मालाकार ! गृहाण सप्ताञ्जलिपरिमितानि सुवर्णानि । मालाकारेण तु सप्तांजलिपरिमितानि सुवर्णानि गृहीत्वा पुष्पकरंडे कृतानि । लोभातिरेकादष्टममप्यंजलिं गृहीतुं भांडे हस्तौ निक्षिप्तौ भांडेन तु संघटितपिधानपुटेन संचरता तस्य मालाकारस्य बाहू मूलादुत्पाटितौ । उत्पाटितबाहुस्तु मालाकारः पंचत्वं जगाम । श्लोकस्तु—

इसके पश्चात् उस मालाकारने अपने परिवारोंके निर्वाहार्थ फिर भी पौरुष करना शुरू किया, क्योंकि वह पुरुषके लक्षणोंसे आक्रान्त था

१ जलाशयभेदे ।

जो पुरुष हैं. उनसे निरुद्योगी होकर बैठा नहीं जाता. एक समय रातमें वह माली कुछ फूल लेकर दूसरे नगरको जा रहा था, रास्तेमें दो नदियाँ पडती थीं. उनके मध्यमें उसने चलते हुये सात बडे बडे भाँडे देखे, उनको चलते देख वह आश्चर्यके साथ सोचने लगा, कि यह तो बडाही आश्चर्यका विषय है कि ये भाँड अचेतन होने परभी चेतनके समान एक नदीसे दूसरी नदीमें जाते हैं, मालूम तो ऐसा पडता है कि ये निधिके भाण्ड हैं ये देवताकी शक्तिसे चल रहे हैं. खैर इनकी पूजा करनी चाहिये ऐसा सोचकर उसने फूलोंसे उनकी पूजा की. इस प्रकार वह माली प्रति रात्रि वहां जाकर उनकी पूजा करने लगा. इस प्रकार कुछ दिन बीत गये. वे सातों भाण्ड उस मालीकी प्रति रात्रिकी पूजासे बडे सन्तुष्ट हुए, एक रात उस मालीने आकर बडी श्रद्धा तथा भक्तिसे प्रथम भांडका पूजन किया. वह बडा सन्तुष्ट हुआ. उसके भीतरसे करुणा पूर्ण यह वचन निकला कि रे दरिद्र ! पीछे जो भांड आ रहा है उससे सोना निकाल लेना, जब दूसरा भांड आया, तब उसनेभी वही वचन कहा इस प्रकार छैयों भाण्डोंका एकही उत्तर मिला अब सप्तम भांडके आनेकी पारी हुई,तब वह भी मालीके सामने आ पहुँचा,उसका ढक्कन खुला था, जिससे उसके भीतरके सब सोने साफ २ दिखाई देते थे उस सप्तम भाण्डने कहा कि रे मालाकार ! यहां आ जा और मुझमेंसे सुवर्णकी सात अंजुलियाँ लेले,यह सुनकर मालाकारने उससे सात अंजुलियाँ सोना निकालकर अपने पुष्प करंडमें रख दिया, और आठवीं वार फिर भी लोभसे सोना निकालने लगा, इतनेमें उस भांडका ढक्कन संपुटित होगया, अब वह भांड चलने लगा, मालाकारने दोनों हाथ पहलेसे ही भाण्डमें रख दिये थे, इस कारण जब वह भांड चलने लगा, तब उसकी दोनों भुजायें जडसहित उखड कर नदीमें गिर पडी, और वह माली पंचत्वको प्राप्त हुआ. कहा भी गया है किः–

धावतः ककुभः सर्वाः परार्धधनकांक्षिणः ।
आप्राणमकृतार्थस्य बद्धाशस्य कुतः सुखम् ॥ ४ ॥

इतिपुरुषपरीक्षायां बद्धाशकथा ॥

परार्द्ध धनके लाभ हेतुसे सकल दिशामें
करते हैं बह्वाश भ्रमण इस जगती तलमें ।
कृतार्थ निजको जीते जी ये नहीं समझते
क्या ये कभी कहीं भी सुखको अधिगत करते ॥ ४ ॥

इति बह्वाश कथा समाप्त ॥

प्रत्युदाहरणानि ।

३४ सावधानकथा ।

तद्यथा—

शौर्येणोपार्जितं वित्तं बुद्ध्या पात्यवधानतः ।
स तु प्रोक्तः सावधानः क्वचिल्लक्ष्म्या न हीयते ॥ १ ॥

सावधान हो मतिसे रक्षा करता जो है
धनकी लब्ध नृपाल ! शूरतासे निज जो है ।
सावधान पण्डित जन कहते उस मानवको
कभी त्यागती है लक्ष्मी नहिं जगमें उसको ॥ १ ॥

आसीज्जयंती नाम नगरी । तस्यां सुपराक्रमो नाम राजा बभूव । स च शौर्योपार्जितबहुवित्तो नीतिनेत्रो बहुपुत्रश्च परमकृतार्थो बभौ । एकदा रात्रौ निजगृहे सुखं शयानः स्त्रीक्रंदनं[1] शुश्राव । पश्चादुत्तमस्त्रीक्रंदनरवं निश्चित्य बहिर्निश्चक्राम । क्रंदनरवानुसारेणैव गच्छन्नगराद्बहिः कियत्यपि दूरे सर्वावयवसुंदरीं यौवनाढ्यां सर्वालंकारसंयुतां दिव्यांबरपरिधानां स्त्रियमेकामार्त्तनादं रुदतीं ददर्श । राजोवाच । अयि सुंदरि ! केन दुःखेन रोदिषि ? सुंदर्युवाच । राजंस्तवाहं लक्ष्मीरियद्दिनपर्यन्तं शूरस्य नयशालिनस्तव भुजच्छायायां स्थिताऽस्मि । इदानीमन्यत्र गच्छामीति रोदिमि । राजोवाच । तर्हि रुद्यते कुतः । लक्ष्मीरुवाच । तवानुरागेण । राजोवाच । यद्यनुरागस्तदा त्यागे को हेतुः । लक्ष्मीरुवाच । त्वं न जानासि ? लक्ष्मीरहं चलप्रकृतिर्नैकत्र चिरं वस्तुमिच्छामि । तथा हि—

---

१ रोदनमितिपाठांतरम् ।

जयन्ती नामका एक नगर था, उसमें सुपराक्रम नामका एक राजा राज्य करता था, उसने अपने शौर्यसे बहुत धन अर्जन किया था, वह नीति शास्त्रमें बडा ही प्रवीण था जिससे प्रजायें उसको नीतिनेत्र कहा करती थीं, उसके अनेक पुत्र भी थे, इन कारणोंसे वह अपनेको कृत कृत्य मानता था, एक समय एक ऐसी घटना हुई कि राजा सुपराक्रम रातमें अपने महलमें सोया था, इतनेमें उसे किसी एक स्त्रीका क्रन्दन कर्ण गोचर हुआ, उसने जान लिया कि, यह एक किसी उत्तम स्त्रीका रोदन है, ऐसा निश्चय करके वह झट बाहर निकल आया, और उसी ओर चला जिस ओरसे क्रंदनका रव आता था और जाते जाते वहां पहुँचगया जहां कि एक सर्वावयव सुन्दरी युवती स्त्री अनेक दिव्य भूषणों तथा वस्त्रोंसे अलंकृत हो आर्त नादसे रोती बैठी थी, यह देख राजाने पूछा कि, हे सुन्दरी! बता तू किस दुःखसे रोती है? यह सुन सुन्दरी बोली-कि,हे देव! मैं आपकी लक्ष्मी हूँ, मैं इतने दिनोंतक आपके समान नयशाली तथा शूर राजाकी भुजच्छायाके नीचे रही, अब अन्यत्र जा रही हूँ, यही मेरे रोदनका कारण है. यह सुन राजा बोला-तो रोती है क्यों? लक्ष्मीः-आपके अनुरागसे, यह सुन राजाः-यदि तू मुझमें अनुरागही रखती है तो तेरे इस त्यागका क्या कारण है? यह सुन लक्ष्मीः-हे देव! क्या आप नहीं जानते कि मैं लक्ष्मी हूँ मेरी प्रकृति सदा ही चंचला रहती है, मैं चिरकाल तक एक जगह रहना पसन्द नहीं करती. देखियेः-

शूराद्बिभेति भजते न मृदौ प्रियत्वं
विद्वेषितां वितनुते विदुषां गणेषु।
नैकत्र तिष्ठति चिरं न चिरेण याति
लक्ष्म्याः स्थितिश्च गमनं च न साभिसंधि॥ २॥

शूरजनोंसे डरती लक्ष्मी मृदुसे प्रेम न करती है
विपश्चितोंके गणसे यह फिर नृपते! रिपुता रखती है।
एक जगह रहती नाहिं चिरतक शीघ्र तथा यह जाती है
लक्ष्मीकी स्थिति गति इस जगमें साभिसन्धि नहीं रहती है॥२॥

राजा परामृष्टवान् । किं ममानुचितम् । विनाऽनुचिताचरणेन लक्ष्मीर्न त्यजति पुरुषम् । बहुपुत्रतां परित्यज्य नान्यत्पश्यामि । तथा हि-

यह सुनकर राजा परामर्श करने लगा कि, मुझसे कौन ऐसा अनुचित कार्य किया गया कि लक्ष्मी मुझे त्याग रही है, यह तो निश्चय है कि, विना अनुचित आचरणके लक्ष्मी मनुष्यको कदापि नहीं त्याग सकती. तो मैंने कौनसा अनुचित काम किया है, सोचनेसे यही जान पडता है कि मुझे अनेक पुत्र हैं. बस इसी कारणसे लक्ष्मी मुझे त्याग रही है. कहा भी गया हैः-

अपुत्रो नृपतिर्माभून्माभूच्च बहुपुत्रवान् ।
प्रायशो दुरुदर्कैव[1] भूपतेर्बहुपुत्रता ॥ ३ ॥

नाहिं नृपालक पुत्र विहीनहो नाहिं तथा युत भी बहु पुत्रसे ।
जगतमें ध्रुवही दुरुदर्कसे जनमते नृपके बहु पुत्र हैं ॥ ३ ॥

भूमिलोभाद्यशोलोभाद्धनलोभाच्च रागिणः ।
राज्ञः पुत्रा भवंत्येव परस्परविरोधिनः ॥ ४ ॥

औरभीः--

प्रलोभसे भू यश और अर्थके विद्वेषसे संयुत राज पुत्र हों ।
स्वबन्धुओंमें करते परस्पर विरोध हैं सन्तत भूमि लोकमें ॥ ४ ॥

इति विचार्य राजोवाच । भगवति कमले ! यदि यास्यसि तर्हि कस्तवाकांक्षिते प्रतिबंधं कर्तुं प्रभविष्यति । याहि यथेच्छम् । अहं तु वरमेकं याचे । तं करुणया देहि । लक्ष्मीरुवाच । यतो ममान्यत्र गमने त्वया बाधो न कृतस्ततो वरं ब्रूहि । ददामि तम् । राजोवाच । देवि! मम पुत्राणामसाहित्यं[2] कदाऽपि न भूयात् । लक्ष्मीरुवाच । तर्हि तव कुलान्मम गमनमन्यत्र कथं स्यात् । यतः--

ऐसा विचार करके राजा बोला-कि, हे भगवति कमले ! यदि तेरा यही निश्चय है कि, मैं यहां न रहूँ, यहांसे भाग जाऊँ, तो इतनी ताकत किसमें है कि, तेरे आकांक्षित कार्यका प्रतिबन्धक बने, इस लिये जा जहां तेरी इच्छा हो, पर मैं जो एक वरकी याचना करता हूँ उसे करुणाके साथ देदे

१ दुर्भाग्यता । २ अमेलनम् ।

फिर जाना. यह सुन लक्ष्मी बोलीः-अच्छा वर मांगले पर ऐसा वर न मांगना जिससे मेरा जाना रुक जाय. यह सुनकर राजाने यह वर मांगा कि हे देवि!मैं यही वर मांगता हूँ कि,मेरे पुत्रोंका तेरा असाहित्य कदापि न हो. यह सुनकर लक्ष्मी बोली-कि, हे देव ! यदि मैं तुझे ऐसा वर दूं तो तू ही बता तेरे यहांसे मेरा गमन कैसे हो सकता है ? क्यों तुझे यह ज्ञात नहीं:-

या नीचैर्गतिरापगेव विलसद्विद्युल्लतेवास्थिरा
संध्येव क्षणरागिणी च मादिरावद् या चिरोन्मादिनी ।
हन्त श्रीर्नयशालिनो नरपतेर्विष्णोरिवास्मि प्रिया
नागच्छामि नयैर्विना न कलहं गच्छामि कौलैर्विना ॥ ९ ॥

अपगासी भूपति जो मैं नीचे ढरती हूँ
विजलीसी फिर भी सदैव अस्थिर रहती हूँ ।
संध्यासी क्षणमात्र रागसे युत फिर रहती
मदिरावत चिरकाल नरोंको मद युतकरती ।
विष्णु तुल्य नय युक्त नृपकी पत्नी मैं भूप हूं
नीति विना आती नहीं कौल विना लडती न हूं ॥ ९ ॥

त्वया च पुत्राणां सदा साहित्यमेव वरो वृतोऽतस्त्वद्भुजच्छायामेव स्थास्यामीति तत्रैव स्थिता ॥

इति पुरुषपरीक्षायां सावधानकथा ॥

तथापि रे राजा ! यदि तूने यही वर मांगा कि, तेरे पुत्रोंका मेरा वियोग न हो तो ले अब मुझे तेरी ही भुजच्छायाके नीचे विश्राम करने दे, वैसाही हुआ भी ॥

इति साधान कथा समाप्त ॥

कृपणादयस्तु धनवंतोऽपि न पुरुषलक्षणाक्रांताः । ते च पूर्वं प्रत्युदाहृता एव ॥

कृपण दुर्जन आदि मनुष्य अर्थवान् होने पर भी पुरुषके लक्षणोंसे आक्रान्त नहीं हैं अर्थात् ये पुरुष नहीं हैं. इनके प्रत्युदाहरण पहिले ही वर्णित हो चुके हैं ॥

अथ कामकथाः ।

३९ अनुकूलकथा ।

स्थायिभावो रतिर्यस्य पुरुषप्रमुदे परम् ।
शृङ्गारः स रसः प्रोक्तः कामः शृंगारजं सुखम् ॥ १ ॥

है स्थायिभाव जिसका रति सर्वदैव
आनन्द दान करती अति जो नरोंको ।
शृंगार विज्ञ रस हैं कहते उसीको
शृंगार जन्य सुखको नरपाल ! काम ॥ १ ॥

अपि च–

त्रिवर्गेष्वपरः कामः फलं धर्मार्थयोरपि ।
तत्रासंगो भवेद्यस्य स कामी कथ्यते पुमान् ॥ २ ॥

और भीः–

त्रिवर्गमें अन्तिम पदार्थ नरपाल काम है
धर्म अर्थका भी जगतीमें यही सुफल है ।
रखता जो व्यासंग सदा इसमें प्राणी है
पण्डितजन उस प्राणीको कहते कामी हैं ॥ २ ॥

स तु पंचविधः–

अनुकूलो दक्षिणश्च विदग्धो धूर्त्त एव च ।
घस्मरश्च समाख्याताः कामिनः पंचधा बुधैः ॥ ३ ॥

वे पांच प्रकारके हैंः--

सानुकूल दक्षिण विदग्ध औ धूर्त घस्मर तथैव भूपते !
पांच कामिजन ये कहे गये हैं समस्त वरशास्त्र विज्ञसे ॥ ३ ॥

तेषु प्रथममनुकूलः कथ्यते । तद्यथा–

उनमेंसे प्रथम अनुकूलकी कथा शुरू की जाती है. अनुकूल वह कहा जाता हैः--

अनुरक्तः स्वभार्यायां परस्त्रीषु पराङ्मुखः ।
नायको धर्मशृंगारी सोऽनुकूलो निगद्यते ॥ ४ ॥

आसक्त जो हैं निजदारमें जो न दृष्टि देते परकी स्त्रियों पै।
शृंगार जो धार्मिक ही करे वे कहे गये नायक सानुकूल ॥ ४ ॥

पुरा बभूव शूद्रको नाम राजा। तस्य सुखासनानाम्नी महिषी बभूव। समुत्पन्ने च द्वयोस्तारुण्यभावे परस्परानुभावात् क्रमेण तस्यां प्रेमवृद्धिर्जाता। स राजा द्वितीयां स्त्रियं न कामयते। महिषी तु पतिव्रतैव।

प्राचीन कालमें शूद्रक नामका एक राजा हो गया है, उसकी स्त्रीका नाम सुखासना था, जब दोनों स्त्री पुरुषोंके ऊपर मनसिजने अपना पूरा साम्राज्य स्थापित कर लिया तब राजा शूद्रक अपनी प्रियतमा सुखासनामें खूब प्रेम करने लगा, यहां तक कि वह अपनी स्त्रीके सिवा दूसरी स्त्रीके तरफ स्वप्नमें भी ताकना नहीं चाहता था, उसकी पतिव्रता स्त्री सुखासनाका भी यही हाल था, यहां कविकी अशीशः—

भूयादनश्वरं प्रेम यूनोर्जन्मनि जन्मनि।
धर्मशृंगारसंयुक्तं सीताराघवयोरिव ॥ ५ ॥

सीता दशरथके सुतमें थी प्रीति यथा अति
जन्म जन्म पति पत्नीमें हो प्रीति तथा अति।
वह न नाशको प्राप्त कभी जगमें फिर होवे
पति पत्नी फिर सदा धर्म शृङ्गारी होवें ॥ ५ ॥

भरतस्तु—

स्वकीया परकीया वा वनितेत्यभिधीयते।
तन्मध्ये परकीया तु क्षणादेव विमुञ्चति ॥ ६ ॥
स्वकीया तु महापुण्यैर्लभ्या कस्यापि देहिनः।
संपत्तौ च विपत्तौ च मरणेऽपि न मुंचति ॥
तत्स्वकीयां प्रति प्रेम जायते पुण्यकर्मणः ॥ ७ ॥

यहां भरतकी उक्तिः—

स्वस्त्रीको परकी स्त्रीको वनिता कहते हैं
इनमें पर वनिता अवश्य तजती क्षणमें है।
स्वकीय वनिता प्राप्त नहीं प्राणी करता है
जिसने इस जगती तलमें अति पुण्य किया ह ॥ ६ ॥

स्वकीय नारी सम्पद्में फिर तथा विपद्में
मरने पर भी तजती है पतिको नहिं जगमें ।
स्वकीय नारीके प्रति प्रेम वही करता है
जिस मानवने महा पुण्यका काम किया है ॥ ७ ॥

पश्चात्तेन प्रेम्णा कृतार्थौ तौ राजदम्पती हर्म्यतलेषूपवनेषु सरोवरेषु लतामण्डपेषु च कामकलाकुशलौ कालं निन्यतुः । एकदा त्वतिक्रांते रात्रिप्रथमयामे महार्हशय्यायां सुप्ता सा महिषी कृष्णसर्पिण्या दष्टा । दष्टायां तु तस्यां परमशोकव्याकुलो राजा सर्वबलेन सर्वस्वव्ययेन च विषवैद्यद्वारा मंत्रौषधिप्रभावेण तस्याः प्राणरक्षां चकार । जातायामपि प्राणरक्षायां विषस्योग्रतया तस्याः शरीरे रूपपरावृत्तिरासीत् । तथा हि–

इसके पश्चात् दोनों राजदम्पतिने प्रेमसे अपनेको कृतार्थ मानते, कभी महलमें कभी उपवनमें किसी समय सरोवरमें किसी काल लतामण्डपमें विहार करते कुछ समय व्यतीत किया, एक दिन रात्रिके समय रानी सुखासना अपने महलमें अपनी महार्ह शय्यापर सोयी थी, जब एक पहर रात बच गई, तब एक काली सर्पिणीने शय्या पर चढकर रानीको डँस दिया, यह सुनकर राजा शूद्रक बडा व्याकुल हुआ और अपने सर्वस्वका व्यय करके विषवैद्योंके मंत्र और औषधियोंके प्रभावसे अपनी प्रियतमाकी प्राण रक्षा की, इस प्रकार रानी सुखासनाकी प्राण रक्षा तो हुई किन्तु उस काली सर्पिणीके विषकी इतनी उग्रता थी कि उसका रूप बिलकुल बदल गया. सुनियेः–

निर्धम्मिल्लं समजनि शिरो भृङ्गनीलालकायाः
स्फाराकारं[१] वदनमभवच्चारुचन्द्राननायाः ।
प्रातर्वेलासलिलजदृशश्चक्षुरन्तर्निमग्नं
कायस्तस्याः कमलसुरभिः पूतिगन्धो बभूव ॥ ८ ॥

जिसके शिरपर अलका अलिसी थी वह धम्मिल हीन हुआ
चारु चन्द्रसा जिसका मुख था वह अब विकटाकार हुआ ।
प्रातकाल जलजाभ चक्षु था वह अब भीतर मग्न हुआ
कंज तुल्य था काय सुरभि वह अब बदबूसे पूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

---

१ विकटाकारम् ।

तथाविधदशामापन्नामपि तां स राजा पूर्वानुरागेण पूर्वानुभूताभिः कलाभिश्च तदीयव्याधिप्रतिक्रियापरायणो न त्यजति। न क्षुधया भुंक्ते। न निद्रया शेते। न तांबूलं गृह्णाति। न कर्पूरं कवलयति। न सचिवान्संभाषते। नान्याः समवलोकते। मोहव्याकुलः केवलं चित्रार्पित इवावतिष्ठते। तथाविधं तं दृष्ट्वा मंत्रिण ऊचुः। महादेवी दैवायत्ता। मनुष्यैः किं कर्त्तव्यम्। अप्रतिक्रिये वस्तुन्युपेक्षैव वरम्। भवानासमुद्रक्षितिपतिः कथं न राज्यं चिन्तयति। एका स्त्री मृतकल्पा तन्निमित्तमात्मानं क्लेशयसीति देव नोचितम्। तदधिकरूपयौवनसंपन्नाः स्त्रियो न संति किम्, कति विवाहा न संभवंति? तदलं विषादेन। प्राक्तनपुण्यक्रीता इव दिवसाः सुखोपभोगेन विना न नेतव्या भवंति। राजोवाच। अहो मंत्रिणः श्रूयताम्। यदियं धर्मपत्नी संसारसुखहेतुः प्राणसमा च। यावदियं मृतकल्पाऽपि जीवति तावन्मम मरणेऽपि नाधिकारः। मयि मृते यदियं दुःखिनी भवति। यदा चैवं तदपरस्त्रीसुखेऽधिकारः कुत एव। तत्किं प्रेम यत्र विस्मरणम्। तत्किं सौहृदम् यत्र न समानसुदुःखता। तत्किं दाम्पत्यम् यत्र नानुस्मरणव्यवहारः। तत्कथं राज्यचिंता कर्त्तव्या। कथमन्यस्त्रीवाञ्छा भविष्यति। तन्मया निश्चितमन्यस्त्रीपरिग्रहो न कर्तव्यः। न वाऽनया विना जीवितव्यम्। यतः—

वह कुरूप होगयी, तथापि राजाका प्रेम उससे कम न हुआ. वह बढता ही गया, वह उसकी व्याधिकी प्रति क्रिया करता रहा, वह प्रियतमाकी व्याधि जन्य पीडासे इतना पोडित रहता था कि, वह क्षुधा लगने पर भी न खाता, नींद लगने पर भी नींद नहीं लेता, पान कर्पूर आदि विषय भोग तो उसे फूटी आंखसे भी सुहाते न थे, मंत्रियोंके साथ बातचीत नादारत, यह देख मंत्रियोंसे न रहा गया। उन्होंने कहा कि, हे देव! देवी दैवसे परतन्त्र है, दैवके सामने मनुष्यकी क्या चल सकती? सो जिस व्याधिकी प्रतिक्रिया ही नहीं उसके लिये जान देना उचित नहीं, उसकी उपेक्षा ही कर देना श्रेयस्कर है. हे देव! आपके ऊपर समुद्रान्तका राज्य भार स्थापित है, फिर उसको उपेक्षाकी

दृष्टिसे देखना आपके समान राजाको उचित नहीं. मृतकल्प एक स्त्रीके कारण आप अपनी आत्माको कष्ट दें, यह कदापि उचित नहीं । क्या इस दुनियाँमें इससे भी अधिक लावण्यवती स्त्रियाँ नहीं हैं ? क्या आप अनेक विवाह नहीं कर सकते ? फिर विषाद क्यों ? हे देव ! विषादको त्यागिये और पूर्वजन्मके पुण्योंसे क्रीत इन दिनोंको सुखके उपभोगसे व्यतीत कीजिये, यह सुनकर राजाने कहा कि, हे मंत्रियों ! सुनो यह मेरी धर्मपत्नी जो कि संसारके सुखका हेतु तथा प्राणके समान है, मृतकल्पा होकर भी जब तक जीती रहेगी तबतक मुझे मरनेका भी अधिकार नहीं है. क्योंकि मेरी मृत्युके पश्चात् यह दुःखिनी हो जावेगी, यदि ऐसी बात है तो अब मुझे अपरस्त्री संभोगजन्य सुखके अनुभव करनेका अधिकार कहां? देखोः-वह क्या प्रेम है? जो कि भूल जाय, वह मित्रता किस कामकी जहां सुख दुःखता समान नहीं है, उस दाम्पत्यसे भी क्या लाभ? जहां परस्पर स्मरणका व्यवहार नहीं; तो हे मंत्रियों ! अब तुमहीं बताओ कि, मैं कैसे राजचिन्ता करूं और कैसे दूसरी स्त्री प्राप्त करनेकी अभिलाषा ही रखूं, तुम कुछ भी कहो या करो मैंने तो पक्का निश्चय कर लिया है कि मैं फिर दूसरा विवाह न करूँगा और मैं तुझसे यह भी कहे देता हूँ कि इस प्रियतमाके विना मेरा जीवन रह सके. यह कदापि सम्भव नहीं. क्योंकि.--

या कुत्रापि न विस्मृता न च दृशौ तृप्ते यदालोकने
यस्याश्चाधरपानपावनतया श्लाघ्यं जनुः स्वीकृतम् ।
त्वं मे प्राणसमाऽसि भाषितमिदं यस्यै मुदा प्रत्यहं
तस्याः किं विरहेऽपि जीवितमतो वाचालतां नाश्रये ॥ ९ ॥

जो स्मृति पथसे मम न हुई है दूर कभी भी
जिसके दर्शनसे न तृप्त है चक्षु कभी भी ।
पवित्र जिसके अधरोंको पी सुमंत्रदायक !
स्वजन्मको मैंने जाना अतिही स्तुतिलायक ॥
तू है मेरे प्राणसी प्रतिदिन मैं कहता रहा ।
फिर मैं उसके विरहसे जीवन रख सकता कहां ॥ ९ ॥

एवं तया महिष्या विरहितं राजानं मरणैकशरणं ज्ञात्वा मंत्रिणश्चिंतयामासुः । यदस्या महिष्याः प्राणरक्षया राजरक्षा स्यात्तदत्र

प्रयतामहे इति परामृश्य सर्वैर्विषवैद्यानाहूय प्रतिक्रिया समारब्धा । मंत्रादिभिर्भाविता च महिषी नागपत्नीत्वं प्राप्य नृत्यंती बभाषे। यत् हे भूपाल ! त्वयि शासति पृथिवीं मम स्वामी नागः पामरेण त्वद्भृत्येन व्यापादितः । तेन हि शोकार्त्तया वैरोद्धारं कर्तुमनसा मया परामृष्टम्; यदयं वराको मम स्वामिनो राजकल्पस्य परिपंथी न भवति । तस्मादेतत्स्वामिनो वधेन वैरोद्धारः कृतो भवति स्वामिनं च राजानं प्रियाविरहदुःखं साहयित्वा मारयामीति दृष्टा मया तव महिषी । राजोवाच । हे नागपत्नि ! मयि कोऽपराधः । नागवधूरुवाच । त्वयि शासति वसुमतीं निरागसो मम स्वामिनः पामरेण कृतो वधः । स एव तवापराधः । राजोवाच । हे नागपत्नि ! मया न ज्ञातम् अज्ञातमपराधं यमोऽपि क्षमते। त्वं पुनःपतिव्रता दाक्षिण्यवती चासि । तत्परित्यज मे प्रियाम् । नागवधूरुवाच। परित्यजाम्येनां यदि त्वमस्याः प्राणपरिवर्त्तेन स्वकीयप्राणान् ददासि । राजोवाच । अहो हर्षस्थानम् । दास्यामि प्राणान् । इति ब्रुवाणः पुलकितबाहुमूलः शस्त्रमाकृष्य शिरश्छेदत्रासनया स्वकीयकण्ठे नियोजयामास । सानंदमवादीच्च । भवतु प्रियायाः प्रेमनिष्क्रयः । प्राणनिष्क्रेतव्यमेव प्रेम । नागवधूरुवाच । राजन्न मर्त्तव्यम् । मया तु तव प्रिया परित्यक्ता तवानेन सत्पुरुषोचितप्रियानुरागेण । राजा तु ततो विस्तीर्णविपत्सागरः परमहृष्टस्तया सुखासनया सह चिरं राजसुखमन्वभूत् । श्लोकस्तु—

यह सुनकर मंत्रियोंने सोचा कि; राजाकी प्राणरक्षा महिषीकी प्राण रक्षाके अधीन है, इसलिये हमको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे महिषी सुखासनाकी रक्षा हो,ऐसा परामर्श करके मंत्रियोंने कुछविषवैद्योंको बुलालिया और चिकित्सा करना शुरू की, चिकित्सा तथा मंत्र आदिके प्रभावसे वह राजपत्नी नागपत्नित्वको प्राप्त हुई, और नाचती बोली कि,हे राजा ! तेरे राज्य शासन कालमें तेरा एक पामर किंकरने मेरे स्वामीको मार डाला है! तज्जन्य शोकसे पीडित हो मैंने बदला लेनेके अभिप्रायसे ऐसा सोचा कि, यह पामर राजकिंकर जिसने राजकल्प मेरे स्वामीको

मार डाला है, मेरा परिपंथी कदापि नहीं हो सकता क्योंकि किंकरका अपराध स्वामीकाही अपराध जाना जाता है, इसलिये प्रियतमाके विरह-जन्य दुःखको सहकर इस राजाको मार डालना यह एक वैरोद्धारका अच्छा उपाय है, ऐसा सोचकर मैंने तेरी प्रियाको डस लिया. यह सुनकर राजा बोला कि, हे नागपत्नी ! यहां दोषी है तो मेरा किंकर, भला मेरा क्या दोष ? यह सुन नागवधू बोली–रे राजा ! तेरे राज्यशासन कालमें तेरा किंकरने मेरे निरपराधी स्वामीको मार डाला यही तेरा अपराध है, यह सुन राजा--हे नागपत्नी ! मैंने यह नहीं जाना, अज्ञात अपराधको यमभी क्षमा करता है, फिर तू तो पतिव्रता तथा दाक्षिण्यसे युक्त है, इसलिये मेरी प्रियतमाको त्याग दे. यह सुनकर नागवधू बोली-कि, रे राजा ! मैं तेरी प्रियतमाको अभी त्यागे देती हूँ यदि तू इसके प्राणके बदले अपना प्राण दे दे. यह सुन राजा बोला-ओह यह तो हर्षका विषय है, लो यह मैं प्राण दिये देता हूँ, ऐसा कहतेही राजाका शरीर रोमांचित होगया और उसने अपने हाथमें एक शस्त्री लेकर काटनेकी वासनासे उसे गलेके पास लगाकर कहा कि, लो यह प्रियाका प्रेमनिष्क्रय है. बस ऐसा कहकर वह मरनकेलिये उद्यत हुआही कि, नागपत्नी बोली कि, रे राजा ! न मर न मर, मैं तेरे समान सत्पुरुषका प्रियाप्रेम देखकर बडी सन्तुष्ट हूँ, ले मैंने तेरी प्रियतमाको त्याग दिया. इस प्रकार राजा शूद्रकने अपार शोक सागरको पार करके अपनी प्रियतमा सुखासनाके साथ चिरकालतक आनन्दके साथ राजसुखका अनुभव किया. यहां कविकी उक्तिः--

स्वदुर्नयोद्भूतविपत्पयोधौ मग्ना विभूतिः पुनरुत्थितेव ।
विहाय वैरूप्यमवाप्य कान्ति बभूव राज्ञी नृपते सुखाय॥ १०॥

इति पुरुषपरीक्षायामनुकूलकथा ॥

दुर्नयसे उत्पन्न विपद् अम्बुधिमें जैसे
होके मग्न विभूति उठी फिर मानो तैसे ।
कुरूपताको त्याग कान्तिको फिरसे पाकर
वह महिषी बनगई पुनः नृपतिकी अति सुखकर ॥ १० ॥

इति अनुकूल कथा समाप्त ॥

३६ दक्षिणकथा ।

स्नेहार्द्रः सहधर्मिण्यां गौरवं गृहिणीगतम् ।
न मुंचत्यन्यचित्तोऽपि दक्षिणः स उदाहृतः ॥ १ ॥

अन्य वस्तुमें लग्न चित्त नरपाति ! होकरभी
निज पत्नीका मान भंग करते जो न कभी ।
निज पत्नीमें तथा स्नेहसे युत रहते हैं
दक्षिण नायक उन्हें विपश्चित जन कहते हैं ॥ १ ॥

बभूव गौडदेशे लक्ष्मणसेनो नाम राजा । तस्य रत्नप्रभा नाम महिषी । स राजा महिष्यां रत्नप्रभायां तथा सद्भावं दर्शयति यथा सा जानात्यहमेवास्य राज्ञः प्रेयसी मदितराः सर्वाः परिचारिकाः केवलमिति । एकदा तस्य राज्ञः काशीश्वरेण समं सन्धौ विघटिते विग्रहावसरो जातः । तेन काशीश्वरेण समयान्तरे अभियुक्तः स्वानुकूलं वर्षासमयं प्राप्य सज्जितनौकाबंधः काशीं प्रति प्रयातुमुपचक्राम ।

गौडदेशमें लक्ष्मणसेन नामका एक राजा राज्य करता था. उसकी महिषीका नाम था रत्नप्रभा, रत्नप्रभा राजाकी बडी प्रियतमा स्त्री थी. राजा लक्ष्मणसेन उसको अपना ऐसा सद्भाव देखाता था कि, वह समझती थी कि, राजाकी एकमात्र प्रियतमा मैं ही हूं और मानो राजाकी चेटियाँ हैं, एक समय राजा लक्ष्मणसेनको महाराज काशी नरेशके साथ किसी कारणसे कुछ वैमनस्य होगया जिससे दोनों राजाओंके मध्य युद्ध छिडनेका अवसर उपस्थित हुआ, उस समय तो युद्ध न हुआ क्योंकि वह समय अनुकूल न था वह ग्रीष्म ऋतुका था, हां जब वर्षाका समय उपस्थित हुआ तब राजा लक्ष्मणसेनने हजारों नौकाओंके ऊपर असंख्य सेनाओंको चढाकर तथा स्वयं चढ काशीके लिये प्रस्थान किया. कहाभी हैः-

चतुर्विधबलो राजा देशे काले विशिष्यते ।
स्वं स्वं देशं च कालं च समासाद्य बली भवेत् ॥ २ ॥

चतुरंगिणी बलोंसे युत नृप प्रबलतभी है ।
पाता है अनुकूल समय फिर देशज भी है ॥

इस कारण अनुकूल समय फिर देश प्राप्त कर।
बने नृपालक इस जगती तलमें बलके घर ॥ २ ॥

तत्प्रयाणावसरे तया रत्नप्रभयाऽभिहितम् । महिष्युवाच । हे प्रभो ! त्वं राजा बहुवल्लभः सर्वत्रापि सुखभाग्भविष्यसि । अहं स्त्री । त्वमेव मम गतिः । सा त्वयि विदेशस्थे सुखरात्रिं कथं नेष्यामि । तदहमपि सहैवागमिष्यामि । राजोवाच । प्रिये त्वमेकैव मम गृहिणी भवस्यपराः स्त्रियस्तु पुष्पताम्बूलग्रहणमात्रसुखहेतवः ततस्त्वमपि मया सहायास्यसि तदा गृहे राज्ये च किं भविष्यति । त्वमसि द्वितीया राज्यलक्ष्मीः । तदत्रैव तिष्ठ । अहमेवात्रागत्य सुखरात्रा त्वां संभावयिष्यामि । देव्युवाच । देव ! यदि वाचा व्यभिचरिष्यति । तदाऽहमग्निप्रवेशं करिष्यामि । राजोवाच । न व्यभिचरिष्यति वचः । ततः स राजा प्रयाणं चकार काशीं प्रति जगाम च । तत्र काश्यां दुर्गं नौकाभिः सर्वतः संरुध्य देवे वर्षति विग्रहव्यसनेन स समयं निनाय । युद्धजयाशाव्यासंगेन महादेवीव्यवस्थां विसस्मार । समुपस्थिते च सुखरात्रिमहोत्सवे सायंकाले सैनिकैः क्रियमाणमाचारपरिप्राप्तलक्ष्मीपूजानन्तरमुल्काभ्रामणं दृष्ट्वा परिजनान् पप्रच्छ । आः सुखरात्रिपर्वाद्यैव । तदहं व्यवस्थाप्रच्युतोऽस्मि । देव्या वह्निं प्रविश्य मर्त्तव्यम् । तदहं किं करवाणि ।

प्रस्थानके समय प्रियतमा रत्नप्रभाने राजासे कहा कि, हे देव ! आप राजा हैं, राजा लोग बहुवल्लभ होते हैं इसलिये वे जहीं जाते हैं वहीं सुखके भाजन बन जाते हैं, सो आप तो वहां भी सुखीही रहेंगे, पर मैं स्त्री हूँ. जिसकी एक मात्र शरण आप ही हैं तो बताइये यदि आप चले जायँगे तो आपके विना मैं दीपावलीकी सुखदायक रातको सुखसे कैसे काटूंगी ? इसलिये मेरा भी यही निश्चय है कि, मैं भी आपके साथ चलूं अब आपकी जो आज्ञा हो. यह सुन कर राजाने कहा कि, हे प्राणप्रियतमे यह बात तुझसे छिपी नहीं है कि तूही मेरी एक मात्र प्राण प्रियतमा है. और सब तो पुष्प ताम्बूल आदि योग्य पदार्थोंको पहुँचानेके कारणसे ही सुखके हेतु हैं सो यदि तू भी मेरे साथ चल देगी तो बता घर

तथा राज्यकी क्या दशा होगी! तू भी दूसरी राजलक्ष्मी है. इसलिये यहां ही रह, लो मैं प्रतिज्ञा करके तुझसे कहे देता हूँ कि, मैं दीपावलीके दिन आकर तुझे अवश्य सम्भावित करूँगा, यह सुन कर रानी बोली अच्छा जाइये पर एक बात याद रखियेगा कि यदि कहीं उस दिन आप यहां न पहुँचे तो म आगमें जलकर खाक हो जाऊँगी, यह सुन कर राजा बोला-हे प्रिये! तू ऐसा न बोल विश्वास रख कि मैं उस दिन विना आये न रहूँगा. ऐसा कहकर राजाने वहांसे प्रस्थान किया और काशी पहुँच कर नौकाओंके द्वारा चारों ओरसे किलेको घेर लिया, वर्षा ऋतु तो थी ही, इसलिये मूशलधार वर्षा दिन रात हुआ करती ही थी पर राजा लक्ष्मणसेन उसकी परवाह काहेको कुछ करता है, वह विजय लक्ष्मी प्राप्त करनेके लिये दिनरात व्यस्त रह कर लडा करत था, इस प्रकार कु दिन बीत गये, अब दीपावलीका दिन उपस्थित हुआ, राजा युद्धमें संलीन था, इस लिये वह महिषीके साथ की हुई व्यवस्थाको भूल गया, सन्ध्याके समय लक्ष्मीपुजा करनेके पश्चात् सब सैनिक वर्ग उल्काभ्रामण करने लगे, यह देख राजाको महिषीके साथ की हुई व्यवस्था झट याद आगई, वह बडा उदास हुआ वह सैनि-कोंसे कहने लगा कि, हे सैनिकों! मैंने महिषीके साथ प्रतिज्ञा की थी कि मैं दीपावलीके दिन यहां आकर तेरा अवश्य सम्मान करूँगा, आज दीपावलीकी रात उपस्थित है, पर मैं वहां नहीं गया, देखा तुमने, आज मेरी प्रतिज्ञा भंग होगई न आज महिषी अग्निमें प्रवेश किये विना न रहेगी, अच्छा तो बताओ अब क्या करना उचित है? कहा गया है कि:-

व्यवस्थातश्च्युतो यस्तु महाकुलसमुद्भवः।
किं तेन रक्षितं लोके कृतघ्नेन दुरात्मना॥ ३॥

लेकर जन्म महाकुलमें हे मम हितकारक।
निज प्रणका जो नहीं मनुज होता है पालक॥
वह है महा कृतघ्न तथा फिर दुष्टात्मा है।
इस जगमें वह कर सकता किसकी रक्षा ह॥ ३॥

केवल एव व्यवस्थाभंगः पापाय। किं पुनः स्त्रीमरणहेतुः। मंत्रिणः पच्छामीति विमृश्य राजोवाच। मंत्रिणः श्रूयतां किमत्रोचितम्।

मंत्रिण ऊचुः। देव खेदो न कर्त्तव्यः।राजशक्तेः किमसाध्यम् । प्रचुर-धनपरितुष्टैर्नाविकैः रात्रौ नौर्नेतव्या लक्ष्मणावतीं प्रति । ततो देवो नौकया तत्र गत्वा परिपालयतु प्रतिज्ञाम् । विपक्षदुर्गनिरोधे वयं सर्वे तिष्ठामः । ततस्तथा क्रियमाणे तरुणसहस्रसज्जितेन मनोरथ-द्वितीयेन नौकारथेन स राजा तस्या रजनेरेव चतुर्थयामे लक्ष्मणा-वतीं प्रति जगाम । वह्निप्रवेशोद्यतां प्रेयसीं मरणान्निवर्त्तयामास । महादेवी च राजानं दृष्ट्वा परीक्षितानुरागा पूर्णमनोरथा सौभाग्य-गर्विता च बभूव । तथाहि–

आज वहां न जानेसे मुझे केवल व्यवस्था भंगजन्य पापहीसे नहीं, किन्तु स्त्री मरण जन्य पापसे भी युक्त होना पडेगा. अच्छा इस विषयमें मंत्रियोंसे सलाह लेनी चाहिये, ऐसा परामर्श करके राजाने सचिवोंसे उचित सलाह पूछी सचिवोंने कहा कि, हे देव ! इस छोटीसी बातके लिये खेद न कीजिये क्योंकि आप राजा हैं इस संसारमें ऐसा कौन कार्य है जो राजशक्तिसे न होसके सो देव नाविकोंको प्रचुर धन देकर सन्तुष्ट करें फिर देव उन नाविकोंका तमासा देखलेवें रातहीमें देवको लक्ष्मणावती नगरको पहुँचा देंगे, फिर देव अपनी प्रतिज्ञा पूरी करलें देवको यहांके लिये तो कोई परवाह है ही नहीं क्योंकि यहां विपक्षके दुर्गको निरुद्ध करनेमें हम सैनिक वर्ग संलग्न हैं ही ऐसा निर्णय होते ही हजारों तरुण पुरुषोंने एक नौका झट तैयार की राजा उस पर चढ गया और एक याम रातके रहते रहते लक्ष्मणावती नगरमें पहुँच गया और वहां अपनी प्रियाको अग्निमें प्रवेश करनेके लिये उद्यत देखकर उसे मर-णसे रक्षा की. उधर जब रत्नप्रभाने देखा कि, राजा आगया, तो वह जान गई कि, राजाका मुझमें सच्चा प्रेम है, और वह उस दिनसे अपने सौभा-ग्यका गर्व रखने लगी. देखियेः--

आज्ञा यत्र न लंघ्यते न विनये वैषम्यमारोप्यते
सद्भावः प्रथमोत्थितो न हृदये वाच्यास्पदं नीयते ।
अन्योन्यं सुखदुःखयोः समतया यद्भुज्यते वैभवं
तत्प्रेम प्रिययोर्मुदे तदितरत्कन्दर्पकारागृहम् ॥ ४ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां दक्षिणकथा ॥

आज्ञाका नहिं भंग जहां है विनय तथा नहिं कम होता।
हुआ प्रेम पहले जो मनमें कभी नहीं वह कम होता॥
सुख दुखमें समतासे धनका जहां भोग होता नृप है।
वहीं प्रेम प्रियको मुद देता इतर काम कारागृह है॥ ४॥

इति दक्षिणकथा समाप्त॥

३७ घस्मरकथा।

तद्यथा-अपि शूरः सविद्योऽपि सुबुद्धिरपि पूरुषः।
भ्रूभंगशृंखलाबद्धः स्त्रीवश्यो घस्मरो भवेत्॥ १॥

मनुज हो यदि शूर सविद्यभी सुमतिभी यदि हो जगमें न क्यों।
पर कलत्र कटाक्ष सुशृंखला विवश हो बनता ध्रुव घस्मर॥ १॥

अस्ति भागीरथीतीरे कान्यकुब्जं नाम नगरम्। तत्र काशीश्वरो जयचन्द्रो राजा बभूव। स च कृतदिग्विजयः समुद्रान्तकरग्रहण-कृतार्थः शुभदेव्या महिष्या सह समुपजातस्नेहः परवशः शृंगारी राज्यसुखमनुभवति।

भागीरथी गंगाके किनारे कान्यकुब्ज नामका एक नगर था, वहां काशी पति जयचन्द्र नामका राजा राज्य करता था, वह बडा प्रतापी राजा था, वह ऐसा वीर राजा था कि, उसने अपनी भुजाके बलसे संसारके समस्त राजाओंको जीत लिया था. वह सबसे कर ग्रहण करता था, जिससे अपनेको कृतकृत्य समझा करता था, उसकी महिषीका नाम था शुभदेवी, शुभदेवीकी प्रेमरज्जूसे राजा इस प्रकार बद्ध था कि, वह उसके विना पूछे एकभी राजकार्य नहीं करता था. इस प्रकार राजा जयचन्द्र अपनी प्रियतमा शुभदेवीके साथ भोगविलास करता हुआ राज्य सुखका अनुभव करने लगा.

पश्चात्कदाऽपि योगिनीपुरादागत्य चतुरंगबलसहितो यवनेश्वरः सहावदीननामा जयचन्द्रमभियुंक्ते। बारंबारं चोभयबलसंहारसारं नृत्यत्कबंधभूतवैतालं युद्धं भवति। बारंबारं च यवनेश्वरः पराजयी पलायते। एवं बहुयुद्धविजयिनि जयचन्द्रे जाताहङ्कारे पराजयिनि यवनेश्वरे मानभंगमसहमाने च गहनं वैरमुत्पन्नम्। ततो यवनेश्वर-

श्चिंतयामास।यदयं जयचन्द्रो राजा युद्धे बलेन पराभवितुं न शक्यते ततो यदि भवति तदत्र बुद्धिं व्यापारयामि। तथा हि–

इस प्रकार कुछ दिन बीत गये, एक समयकी घटना ऐसी हुई कि, एक यवनोंका राजा जिसका नाम सहाबदीन था और जो योगिनी पुरका राजा था दलबलके समेत राजा जयचन्द्रके ऊपर आक्रमण करनेके लिये आया और वहां दोनोंमें ऐसा भयंकर युद्ध छिडा कि, असंख्य सेनाओंके कट जानेसे रणमें शोणितकी सरिता बह चली. कबंध भूत वैताल नृत्य करने लगे. यवनेश्वर बारबार पराजित होता और रण भूमिसे भागता यह देख काशिराज जयचन्द्रको बडा अभिमान होगया इधर यवनेश्वरसेभी मानभंग न सहागया, इस प्रकार दोनोंमें बडा वैर उत्पन्न होगया, इसके पश्चात् यवनेश्वरने सोचा कि मैं राजा जयचन्द्रको संग्राममें बलके द्वारा जीतूं यह कदापि सम्भव नहीं. इसलिये मुझे यहां अपनी बुद्धिसे काम लेना चाहिये. कहाभी गया है कि:--

युद्धे पराजयी राजा दुर्बलो बलिनोऽप्यरेः।
निसृष्टार्थान् प्रयुञ्जानः सेनाभेदं समाचरेत्॥ २॥

समरमें नृप दुर्बल हारके बहु उपाय करे जिससे निज।
अतिबली रिपुके सब सैन्यमें झटिति हो अति भंग सुशान्तिका २॥

तत्प्रथममरिबलवार्त्ता ज्ञातव्या भवति। यतः–

इसलिये सबसे पहले शत्रुके बलका पता लेना उचित है. क्योंकि:–

राजमंत्रेषु सर्वेषु वार्त्ताज्ञानं प्रशस्यते।
न ह्यविज्ञाततत्त्वानां मंत्रः फलति कुत्रचित॥ ३॥

भूपालके सर्व विचारमें सदा है शस्त अत्यन्त सुबोध वृत्तका।
जो जानते तत्त्व न अन्य भूपके न वे कभी हैं फलवान् विचारमें॥ ३॥

ततो जयचन्द्रराज्ये कः प्रयोजक इति ज्ञातुं युज्यते। न ह्यप्रयोजकानां संधानेन भेदेन वा किंचिदस्ति फलमिति चिंतयति यवनेश्वरे प्रहितचरेणागत्य कथितम्। चर उवाच। यवनेश्वर! संप्रति राज्ञो जयचन्द्रस्य महती सेना बहूनि धनानि तीक्ष्णतरा बुद्धिरनुरक्ताश्च प्रकृतयः। यवनेश्वर उवाच। राज्ये तत्र प्रयोजकता कस्य।

चर उवाच। विद्याधरमहन्तस्य शुभदेव्या महिष्याश्च। यवनेश्वर उवाच। महिषीवचनं शृणोति राजा? चर उवाच। शृणोति कुरुते न लङ्घयति च। यवनेश्वर उवाच। स्त्रीवश्यश्चेन्मम हस्ते पतितो वराकः, क यास्यति। तदिदानीं तामेव स्त्रियं वशमानयामि। सा च मम सुखग्राह्या भविष्यति।

अच्छा यह तो जानू कि, राजा जयचन्द्रके राज्यमें मुख्यता किसकी है, यह तो निश्चय है कि, राजाके यहां जिसकी प्रधानता नहीं है उसके साथ सन्धान या भेदसे कुछ भी फल नहीं होता. राजा यवनेश्वर ऐसा सोच ही रहा था कि, वह चर जो कि, राजा जयचन्द्रका तत्व जाननेके लिये भेजा गया था, वहां आ पहुँचा और बोला कि, हे देव! इस समय राजा जयचन्द्रके प्रतापकी तुलना कौन कर सकता है, इस वक्त उसकी असख्य सेनायें महजूद हैं धन तो इतना है कि, कोश गृहमें रखनेकी जगह नहीं निशित बुद्धिका तो मानो वह समुद्र ही है. प्रजायें भी उससे सदा प्रसन्न रहा करती हैं. यह सुन कर यवनेश्वरने फिर पूछा भला यह तो बताओ कि, वहां मुख्यता किसकी है. चर-मुख्यता तो विद्याधर महंत तथा महिषी शुभदेवीकी है. यह सुन राजा-रे चर! क्या वह महिषीका वचन सुनता है? चर- हां वह सुनता है. और सुनकर करता भी है, क्या उसकी ताकत है कि. वह रानीकी एक भी बात कभी काटदे. यह सुन यवनेश्वर यदि यह बात सच है कि, जयचन्द्र स्त्रीके वशमें है तो अब काहेको परवाह करना. अब मानो. विचारा जयचन्द्र मेरी मुट्ठीमें ही है लो अब वह कहां जायगा. अच्छा तो अब सबसे पहले मुझे उसी रानीको अपनी काबूमें करना उचित है. अच्छा उसके वश करनेमें तो मुझे कोई कष्ट है ही नहीं क्योंकि वह स्त्री है. स्त्रीको वशमें ले आना यह कौनसी बडी बात है. वह तो एक भूषण मात्रके वितरणसे ही सुखग्राह्य होसकती है. कहा भी गया है:-

अन्यच्च-

चमत्कारिषु चित्रेषु भूषणेष्वंबरेषु च।
लोभो भवति नारीणां फलेषु कुसुमेषु च॥ ४॥

वर विभूषणको वर चित्रको अति शुभाम्बरको फलको तथा।
कुसुमको अबला जन देखके जगतमें करती अति लोभ हैं॥ ४॥

किंतु विद्याधरस्तत्र मंत्री साधिकारो विद्यते। तेन परं सविघ्नं कार्यमिदं लक्ष्यते तथाऽपि यत्नं करवाणि । असाध्यबुद्ध्या न परिह्रियते कार्यकलापः विधाता परमनुकूलो मृग्यते ।

हां एक बातका यहां अवश्य डर है वह यह कि, मंत्री विद्याधर जो कि, राजाके यहां बडा अधिकारी समझा जाता है, इस कार्यमें कुछ अवश्य विघ्न डालेगा. तथापि यत्न करनेमें क्या आपत्ति असाध्य बुद्धिसे कार्यकलापको छोड देना यह बुद्धिमानोंको उचित नहीं हां विधाताकी अनुकूलता अवश्य चाहिये. क्योंकिः–

धाता नीतिज्ञकार्येषु सारिक्रीडासु पाशकः ।
सौभाग्येषु प्रियः स्त्रीणामनुकूलः प्रतीक्ष्यते ॥ ९ ॥

नीतिज्ञोंके कार्य निचयमें कमल जातकी ।
तथा सारिकी क्रीडामें नरपाल ! जालकी ॥
सौभाग्योंमें महिलाओंके प्राणनाथकी ।
सदा अपेक्षा रहती है अनुकूलतैव की ॥ ९ ॥

ततो ब्राह्मणस्य सर्वत्र प्रवेश इति चतुर्वेदिनं सर्वभाषाचतुरं चतुर्भुजनामानं ब्राह्मणमाहूय समादिदेश । यवनेश्वर उवाच । चतुर्भुज लक्षाणि धनानि त्वं गृहाण। गच्छ कान्यकुब्जं नगरं प्रति । तत्रस्थित्वाऽस्मद्धनव्ययेन स्वकीयचातुर्येण च शुभदेवीं मम वशमानय, सिद्धे कार्ये त्वां कृतार्थं करिष्यामि । चतुर्भुज उवाच । यथा प्रभोराज्ञाऽस्ति तथा करिष्यामि । फलसिद्धिस्तु प्रभोरेव प्रतापात्संविभाव्यते । इयंति धनानि कथं तत्र नेतव्यानि । यवनेश्वर उवाच। प्रत्येकं लक्षं लक्षं कृत्वा दशवणिजो दश लक्षाणि वसूनि तत्र नयंतु। वणिज्याक्रयविक्रयव्याजेन तत्र गत्वा तिष्ठन्तु तवाज्ञाकारिणः । त्वं च भिक्षुकमुद्रया राजकुलं गत्वा साधय मे कार्यम् ।

इसके पश्चात् ब्राह्मणका सर्वत्र प्रवेश है ऐसा परामर्श करके यवनेश्वरने एक ब्राह्मणको जिसका नाम था चतुर्भुज शर्मा और जो सब भाषाओंकी अभिज्ञता रखता था, बुलालिया और उससे कहा कि, चतुर्भुज लो मैं तुझे दशलाख मुद्रा दिये देता हूँ लेकर अभी कान्यकुब्ज देशको जाव

और वहां रहकर अपने चातुर्यसे तथा इन द्रव्योंके व्ययसे ऐसा प्रबन्ध करना जिससे महिषी शुभदेवी मेरी अधीनता स्वीकार कर ले, यदि कहीं परमेश्वरकी इच्छासे कार्य सफल हुआ तो देखलेना तुझे कृतार्थ किये विना मैं न रहूँगा. यह सुन चतुर्भुज शर्मा बोला-बहुत अच्छा मैं महाराजके आदेशके अनुसार प्रयत्न करूंगा पर फलकी सिद्धितो महाराजकेही प्रतापसे होगा पर महाराज यह तो बतावे कि, इतने धन वहां कैसे ले जाऊँ. यह सुनकर राजा बोला-अपने साथ दश बनियोंको ले लो, वे एक २ लाख लेकर तेरे साथ जावेंगे वे वणिज्याके क्रय विक्रयके व्याजसे वहां रहकर तेरे आदेशानुसार सब कार्य करेंगे, तू भिक्षुकका भेष धारण करके तथा राजमहलमें प्रवेश करके ऐसा प्रबन्ध करना जिससे महिषी शुभदेवी मेरी वश्यता स्वीकार करले.

पश्चात् तथा संविधानसमुदाये समुपजाते ब्राह्मणस्तु तन्नगरं गत्वा राज्ञो जयचंद्रस्य दर्शनं चकार। बहुधोपगमेन प्रत्यासत्तिं प्राप्य राज्ञो देवार्चनकाले वेदपाठं करोति। क्रमेण महादेवीदर्शनं चकार। महादेवी च तस्य ब्राह्मणस्य प्रियंवदतया परितुष्टा नानाकथाः पृच्छति। प्रत्यहं स कथयति। समयक्रमेण समुपजातायां प्रत्यासत्तौ[1] सदवसरं प्राप्य ब्राह्मणः कथयामास। देवि! धरणीवलये त्वमेवैका धन्याऽसि यतो यवनेश्वरः सहावदीनस्त्वां स्तौति। देव्युवाच। आः कथं यवनेश्वरो मां जानाति। ब्राह्मण उवाच। देवि त्वां जानाति तव वैदग्ध्यं च जानाति। किंचापरा कथा विद्यते तन्निवेदने बिभेमि। महिष्युवाच। न भेतव्यम्। का कथा। पश्चात्तत्कथाश्रवणे तां साभिलाषां ज्ञात्वा ब्राह्मणः कथयामास।

यह सुनकर चतुर्भुजशर्मा सब सम्विधान तैयार करके दश बनियोंको साथ लेकर कान्यकुब्ज नगरमें जा पहुँचा और राजा जयचन्द्रसे मिला. कई एक दिनोंके पश्चात् चतुर्भुज शर्माने बहुधा उपगमके कारण राजाकी प्रत्यासत्ति प्राप्त करली और राजाके देवार्चन कालमें वेदका पाठ प्रारम्भ कर दिया, इस प्रकार धीरे धीरे महिषी शुभदेवीके यहांभी जानेआने लगा, चतुर्भुजशर्मा एक

---

१ अतिनिकटस्थितौ।

बडा प्रियम्वद मनुष्य था, उसकी प्रियम्वदता देखकर रानी शुभदेवी उससे बहुत प्रसन्न रहा करती थी. और समय समय पर अनेक प्रकारकी कथायें पूछा करती थी और चतुर्भुज कहा करता था इस प्रकार चतुर्भुजने रानीके यहांभी अपनी अच्छी प्रत्यासत्ति प्राप्त करली एकदिन अवसर पाकर चतुर्भुजने रानीसे कहा कि, हे देवि ! मैं तो समझता हूँ कि, इस सारी दुनियामें एकमात्र तूही धन्य है क्योंकि यवनेश्वरके समान राजाका होना कठिन है पर वहभी तेरी प्रशँसा करके अमन्द आनन्दमें मग्न होजाता है. यह सुनकर देवी बोली-अरे यवनेश्वर सहाबदीन भला मुझको कैसे जानता है. यह सुन चतुर्भुज -हे देवि ! वह केवल तुझकोही नहीं किन्तु तेरे अनुपम वैदग्ध्यकोभी जानता है और यहां एक और दूसरी बात है पर उसे कहते मुझे डर लगता है. इसलिये मैं नहीं कहूँगा. यह सुन कर रानी बोली-कि हे विप्र ! डरो मत बताओ कि, वह कौनसी बात है. जब चतुर्भुजने देखा कि, रानी शुभदेवी वह बात सुननेके लिये बडी उत्कंठा युक्त है. तो उसने उस बातका प्रारंभ इस प्रकार कियाः--

देवि ! एकदा बहुरत्नमयी मुद्राऽत्युत्तमा यवनेश्वरेण प्राप्ता । तां प्राप्य यवनराजो रुरोद । यदियं मुद्रा विधात्रा मह्यं दत्ता सा न दत्ता प्रिया यस्यै चेदं प्रियवस्तु दीयते । सा जयचन्द्राय दत्ता शुभदेवी।अहो पुण्यं जयचंद्रस्येति। यदि देवी न कुप्यति तदा तां मुद्रामानीयार्पयामि । देव्युवाच । किं फलं मुद्रार्पणस्य। ब्राह्मण उवाच।योग्यसमागमः केवलम् । यदियं देव्या एवांगुलीदलयोग्येति मुद्रामर्पयामास। देवीं च मुद्राग्रहणकाले परमपरितुष्टां दृष्ट्वा चिंतयामास । अहो लब्धा सिद्धिः।फलितं परिश्रमेण । तदनंतरं वस्तुषु पुनः पुनर्दीयमानेषु स्नेहदार्ढ्ये समुपजाते ब्राह्मणो महिषीमुपादिदेश । देवि त्वमस्य राज्ञः पट्टमहिषी प्रेमपात्रं भवसि । त्वयि विद्यमानायां तव पिता भ्रातरश्च राज्ये न गण्यंते।विद्याधरः केवलं सर्वाधिकारी सकलां राज्यलक्ष्मीं खादति । किं तव सौभाग्येन । महिष्युवाच । किमहं करिष्यामि । ब्राह्मण उवाच । राजा तव वश्यस्तव शक्त्या किमि-

दानीं कृतं न भवति । शृणु तावत् यत् करिष्यसि । सर्वेषु राजायस्थानेषु द्विगुणं देयं स्वीकृत्य निजपक्षपातिनः पितृजनानाधिकारिणः कुरु । त्रिचतुरेष्वायस्थानेषु द्विगुणं द्विगुणं प्राप्य राजा तव वचसि विश्वासं करिष्यति । धनं तु मया दातव्यम् । यवनेश्वरस्य प्रसादेन का दरिद्रता । ततो धनलाभलब्धप्रत्ययेन राज्ञा विद्याधरः स्तेयी ज्ञातव्यश्च्युताधिकारश्च कर्तव्यः । राज्ये सर्वत्र तवैवाधिकारो भविता । कोषोत्कर्षप्रयोजना हि कार्याधिकारिणः धनानुरागिणश्च राजानस्ततो राज्ये करतलमागते यत् कर्त्तव्यं तत्सुखेन भविष्यति । महिष्या च तया तथैव कर्तुं समारब्धम् । ब्राह्मणवचने प्रीतिर्भूता । राजश्यालकादयः सर्वे महिषीपक्षपातिनोऽधिकारिणो बभूवुः । मंत्रिणि विद्याधरेऽविश्वासो जातः, देवी च ब्राह्मणवचनेन यवनेश्वराभिलाषिणी बभूव । यवनेश्वरोऽपि सकलबलसहितस्संनिधानमाजगाम । राज्ये परमानर्थबीजमापतितम् ।

हे देवि ! यवनेश्वरने एक दिन एक अत्युत्तम मुद्रा प्राप्त की. जिसमें अनेक रत्न लगे हुए हैं. उसको प्राप्त करके खूब जोरसे यह कहकर रोने लगा कि, यदि विधाताने एक ऐसी मुद्रा देकर मेरे ऊपर इतना अनुग्रह किया तो एक ऐसी प्रियतमा देनेकी अनुकम्पा क्यों नहीं की. जिसे यह अमूल्य वस्तु देकर मैं कृतार्थ होजाता, यदि विधाताकी कृपा है तो राजा जयचन्द्रके ऊपर कृपा है, जिसको कि उसने शुभदेवीसी त्रिभुवन सुन्दरी महिषी दी है, सो हे रानी ! यदि तू मेरे ऊपर क्रोध न करे तो उसे ले आकर तुझे अर्पण करूँ. यह सुन कर महिषी बोली–भला उस मुद्रिकाके प्राप्त करनेसे मुझे क्या लाभ होगा ? विप्र-कुछ नहीं केवल इतना ही कि, वह योग्य वस्तु आकर योग्यसे मिल जायगी, सो यदि यह अंगुलीयक तेरी ही अंगुलीको भूषित करने योग्य है तो इसका तेरी अंगुलीसे दूर रहना उचित नहीं लो इसे अपनी अंगुलीमें पहिन लो ऐसा कहकर दे दिया. महिषी मुद्रिका प्राप्त करते ही बहुत हर्षित हुई. यह देखकर चतुर्भुज शर्माने सोचा कि यह सिद्धि तो मुझे प्राप्त हुई मुझे डर था कि मेरा

परिश्रम फली भूत होगा कि नहीं वह भी ईश्वरकी कृपासे फलीभूत होगया अब कुछ कसर है वह भी फलीभूत ही जानना चाहिये ऐसा सोच कर चतुर्भुजने शुभदेवीको कुछ नयी नयी वस्तुक। देना जारी ही रखा जिससे दोनोंमें स्नेहकी काष्ठा बढतीही गई. यह देख एकदिन चतुर्भुजने शुभदेवीको ऐसा कह कर बहकाया. कि हे रानी ! तू राजाकी प्रियतमा पट्टरानी है फिर तेरे जीतेजी इस राज्यमें तेरे पिता तथा भ्राताका आदर न हो, यह कितनी बडी बुरी बात है. देखो विद्याधर केवल सर्वाध्यक्षही है. फिर वह सारे राज्यकी पूंजीका उपभोग कर रहा है. ले अब तूही बता तेरे इतने बडे सौभाग्यका क्या फल ? यह सुनकर महिषीने कहा तो मैं यहां क्या कर सकती हूँ मेरा यहां क्या सामर्थ्य है. यह सुन चतुर्भुज बोला तू कहती है कि मैं, क्या कर सकती हूँ तू राजाकी महिषी है वह तेरे वशमें है फिर इस समय तू क्या नहीं करसकती. सुन जो तू कर सकती है- तू राजाके निकट जा और उससे कह कि राज्यका जो इस समय आय है उससे द्विगुण आय करके आपको देदूंगी परन्तु सब प्रबन्ध मेरे हाथ रहना चाहिये. यह सुनकर राजा तेरी राज्यप्रबन्ध कर्तृता स्वीकार करलेगा. फिर सब आयके स्थानोंमें अपने पिता आदि पक्षपातियोंको नियुक्त कर दे जब दो अथवा चार आय स्थानोंमें राजा द्विगुण आय लाभ करने लगेगा तो वह तेरे वचनपर विश्वास करलेगा. द्रव्यकी तो तुझे कोई परवाह हैही नहीं क्योंकि उसका प्रबन्ध मेरेही मथ्थे हैं. मैं दूंगाही. राजा यवनेश्वरके प्रसादसे मुझे द्रव्यकी क्या दारिद्रता है, ऐसा करनेसे विद्याधर स्तेयी समझा जायगा और अवश्य राज्यसे बहिष्कृत होगा फिर सारे राज्यमें तेराही अधिकार जम जायगा राजा लोग धनके बडेही अनुरागी होते हैं इसलिये जब वे राजा यह वृत्तान्त सुनेगा तो वह अवश्य सारा राज्य तेरे हाथमें कर देगा. फिर तू जो चाहेगी सो सुखसे कर सकेगी. यह सुनकर महिषीने वैसा ही करना शुरू करदिया. उसने चतुर्भुजके वचनमें पूर्ण श्रद्धा रख कर राज्यके सब स्थानोंमें अपने पिता आदि सब पक्षपातियोंको नियुक्त करदिया. और मंत्री विद्याधरसे उसका विश्वास उठगया और धीरे धीरे चतुर्भुजके कहनेसे यवनेश्वरको चाहने लगी. यह खबर प्राप्त करके

यवनेश्वर बडा सन्तुष्ट हुआ, वह तुरंत दलबलके समेत नगरके निकट आपहुंचा इस प्रकार रानीने अपने नगरमें विपत्तिका बीज बोदिया. वह वहां उग आया.

विद्याधरस्तु जानन्नपि राज्ञे न कथयति । यदि कथयति तदा राजा न प्रत्येति । यवनेश्वरस्तु चतुर्भुजक्रियायाः परीक्षार्थं परमविश्वासपात्रं अलयासनामानं यवनं प्रस्थापयामास। स यवनो भिक्षुकवेषधारी हट्टमध्ये मेषं नर्त्तयन् राजकुलादागच्छता मंत्रिविद्याधरेण दृष्टश्चोपलक्षितश्च । यदयं विस्तीर्णललाटपट्टो रक्तापाङ्गलोचनो महाभुजो महापुरुषलक्षणधारी भिक्षुको न भवति किंतु यवनः । तदेनं मेषनृत्यदर्शनव्याजेन स्वकीयागारं नीत्वा निरूपयामि । पश्चात्तथा कृत्वा रहसि तं पप्रच्छ । विद्याधर उवाच । हे यवन ! त्वं कोऽसि । यवन उवाच । भिक्षुकः । विद्याधर उवाच । मैवं ब्रूहि सत्यं कथय। मा च भैषीः। साधुसमागमे कुतो भयम् । ममाग्रे वागनृता न लभते पदम् । त्वं तु अलयासोऽसि । यवन उवाच । कथं ज्ञायते । मंत्रिविद्याधरश्चित्रपटं दर्शयित्वोवाच । यवनसचिव ! पश्येदम् । तव राज्यस्य सर्वे प्रकृतिपुरुषा अत्र लिखिताः संति । तत्रात्मानमपि पश्य । तद्दृष्ट्वा निरुत्तरः साश्चर्यश्च यवनोऽब्रवीत् । साधु मंत्रिराज साधु । समयकृत्ये सावधन एवासि । तथाऽपि कथं तव स्वामी जयचन्द्रो राज्यात्प्रच्यविष्यन्नास्ति । विद्याधर उवाच । मम वचनं न शृणोति । यवन उवाच । तर्हि मूढः । विद्याधर उवाच । नं हि । किंतु सर्वकलाचतुरः स्वामिगुणोपेतोऽपि स्त्रीवश्यः प्रमाद्यति । यवन उवाच । तर्हि सुतरां मूढः। स्वामिन्यप्रतीतिभाजि किं कर्त्तव्यं मंत्रिणा । तथाहि–

विद्याधरको एक एक बात ज्ञात है पर वह कुछभी नहीं बोलता, वह चुप चाप रहनाही पसन्द करता है, यदि कभी कुछ कहताभी है तो राजा विश्वास नहीं करता, इधर यवनेश्वरने चतुर्भुजकी क्रियाकी परीक्षा करनेके लिये एक अलयास नाम यवनको (जो कि उसका परम विश्वास पात्र था) वहां भेजा वह यवनभी भिक्षुकके भेषमें वहां जाकर बाजारमें

मेषको नचाकर लोगोंको तमासा देखाने लगा, दैवात् उसी समय मंत्री विद्याधरभी राजमहलसे बाजारमें होकर जा रहा था, और उसे देखकर झट ताड गया कि यह भिक्षुक नहीं जान पडता. यह तो अवश्य कोई यवनेश्वरका चर प्रतीत होता है क्योंकि इसका ललाटपट्ट विशाल है, इसके नेत्र लाल लाल हैं, भुजायेंभी लम्बीलम्बी हैं सो महापुरुषके लक्षणसे लक्षित यह निःसन्देह यवनेश्वरका चर है. अच्छा मेष नृत्य दर्शनके व्याजसे अपने यहां लेजाकर इसकी परीक्षा करनी चाहिये कि, मेरा अनुमान सच है अथवा नहीं. विद्याधरने उसे अपने यहां लेजाकर उससे एकान्तमें पूछा रे बता तू कौन है ? यवन–हे देव ! मैं एक भिक्षुक हूँ यह सुनकर विद्याधर–नहीं नहीं झूठ न बोल सचसच कह, डर मत, क्योंकि साधुके समागममें भय नहीं रहता, तू जाने रह कि, मेरे सामने किसीकीभी झूठी वाणी नहीं चल सकती देख मैंने विना कहेही जान लिया तू यवनेश्वरका चर अलयास है. यह सुनकर अलयास बोला–आपने यह कैसे जाना कि, मैं अलयास हूँ. यह सुन विद्याधरने झट भीतरसे चित्र ले आकर अलयासको देखाया और कहा कि रे यवन ! देख इसमें तेरे राजाके सब कर्मचारि हैं न. यहां खुदकोभी इसमें देख ले यह देख यवन बडा आश्चर्यित हुआ और बोला--वाह रे मंत्रिराज वाह सचमुचमें तू समयपर काम देनेवाला है, भला यह तो बता तेरे समान सचिवको प्राप्त करके राजा जयचन्द्र अपने राज्यसे प्रच्युत कैसे हो रहाहै, यह सुन विद्याधर–इसलिये कि, वह मेरा कहना नहीं सुनता. यह सुन यवन तो वह मूढ प्रतीत होताहै यह सुन विद्याधर-नहीं वह मूर्ख तो नहीं है. है तो सर्व कलाचतुर तथा स्वामीके सब गुणोंसे युक्त पर उसमें दोष यह है कि वह अपनी स्त्रीके वश है, और इसी कारण वह समय समय पर धोखा भी खाता है, यह सुन यवन–तब उसे भारी मूर्ख कहना चाहिये, यादि स्वामी ही अविश्वासी है तो वहां मंत्रीका क्या दोष ? देखोः–

> **प्रभुश्चेत्त्यक्तविश्वासः प्रतिकूलैराधिष्ठितः ।**
> **तस्मै हितोपदेशेन स्वाहितं परिशंकयते ॥ ६ ॥**

> विश्वाससे है यदि हीन भूपति है दुष्टसे वेष्टित भी तथा यदि ।
> तो मंत्रियोंके सुहितोपदेशसे शङ्का सदा वे करते स्वहानिकी ॥ ६ ॥

ततो यदि भवाननुमन्यते तदा भवन्तं यवनराजसंनिधानं नयामि ।

भवते राज्यमिदं दापयामि । विद्याधरः कर्णौ पिधाय प्राह । शांतं पापम् । मित्र पुनरेतादृशं न वक्तव्यम् । परलोकसस्पृहाःप्रभुविपक्षं न भजंते नापि प्रभुं त्यजंति । परं चात्मानं घातयन्ति । यवन उवाच । मंत्रिराज ! त्वमिदानीं मां शत्रुपक्षपातिनं ज्ञात्वाऽप्यनिष्टेन न योजयसि तदस्योपकारस्य निष्क्रयः कथं कर्त्तव्यः । विद्याधर उवाच । किं तवानिष्टेन । जयचन्द्रस्य हितं न करिष्यामि तव चानिष्टम् । उपकारनिष्क्रयेऽप्यस्ति प्रकारः। दुर्गावरोधसमये मया दुर्गस्य दक्षिणद्वारे स्थातव्यम् । संति ममानुरक्ताः पंचशतान्यश्ववारास्तैः समेतोऽहं विरक्तस्यापि स्वामिनो भक्तिमुद्दिश्य युद्धं करिष्यामि । यदि तत्र सहाबदीनो मम साक्षात् प्रतिपंथी भवति तदाऽहं परिपंथिमहत्त्वेन युद्धे महद्यशः प्राप्नोमि । तथा स्वीकृत्य गते यवनसचिवे विद्याधरो मंत्री वंशस्थितिरक्षार्थं पुत्रं दुर्गाद्बहिः प्राहिणोत् ।

तो यदि तुझे यह बात मंजूर हो तो ले मेरे साथ चल मैं तुझे यवनेश्वरके साथ मिलाय देता हूँ, और तू विश्वास रख कि, वह तुझे अपने राज्यका एक भाग भी अवश्य देगा. यह सुनते ही विद्याधरने कानोंको बन्द करके कहा–मित्र ! फिर कभी ऐसी बातकी चर्चा न करना. जो सेवक परलोककी स्पृहा रखते हैं वे कदापि अपने विपन्न प्रभुको नहीं त्यागते. चाहे वे खुदकी हत्या करके क्यों न मरजावें. यह सुन यवनने कहा हे मंत्रिराज! यह देख मुझे बडा हर्ष होता कि, तू मुझे शत्रुका पक्षपाती जानकर भी मेरा अनिष्ट नहीं करना चाहता है. तेरी यह सद्यता देख मैं तेरा ऋणी हूं. अब तू ही बता मुझे तेरे इस ऋणसे मुक्ति कैसे प्राप्त हो. यह सुनकर मंत्री विद्याधर बोला रे यवन ! तेरे अनिष्ट न करनेसे क्या तेरी यह समझ है कि, मैं अपने स्वामी जयचन्द्रका हित न करूंगा. ऐसा मत समझ, जाने रह दुर्गके अवरोधके समय मैं दुर्गके दक्षिण द्वार पर अवश्य डटा रहूँगा । मेरे पांचसौ अनुरक्त असवार हैं वे समय पर बडे कामके हैं उनके समेत मैं युद्ध स्थलमें अपने स्वामीकी भक्तिके अनुरोधसे प्राण दूंगा ही यदि स्वामी मेरे ऊपर अप्रसन्न है तो रहने दो उससे मेरी क्या हानि है. और यह भी विश्वास रख कि, यदि साक्षात् सहावदीन भी रण क्षेत्रमें परिपंथी होकर मेरे साथ युद्ध करनेको आवेगा तो मैं

विना मारे उसे न छोडूंगा, बहुत अच्छा यह कहकर वह यवन सचिव वहांसे चला गया. इधर मंत्री विद्याधर भी अपने वंशकी रक्षाके लिये अपने पुत्रको दुर्गके बाहर कहीं भेजदिया.

स्वयं च स्वकीयैरनुरक्तैः पंचभिरश्ववारशतैः सहितः कृतसन्नाहः शस्त्रपाणिर्दुर्गावरोधसमये दक्षिणं द्वारमलंचकार । वृत्ते च परसैन्यसंदर्शने सहावदीने च सम्मुखे भगवति सूर्ये पश्यति परबलं प्रविश्य खड्गपातघोरं संग्राममकरोत् । बहून् परपक्षसुभटान् हत्वा बाणव्रणविह्वलः पुष्पितं किंशुकमिव कलेवरं त्यक्त्वा विद्याधरो मंत्री सूर्यमंडलभेदी बभूव। शोणितं तस्य विपक्षवीरैर्वन्दितम् । सहावदीनेन दुर्गे गृहीते राज्यमाक्रान्तं कोशः प्राप्तः सुभटाश्च सत्कृताः । जयचंद्रो राजा न प्राप्तः । क्व गतः किं भूतं केन व्यापादितो वेति किमपि न ज्ञातम् । महिषी शुभदेवी सहावदीनेनानीय पृष्टा । अये त्वं जयचन्द्रस्य कीदृशी स्त्री ? तयोक्तम् । पाणिगृहीती प्रेयसी च । ततः सहावदीनेनोक्तम् । अये पापे ! स्वामिद्रोहकारिणि! त्वं तस्य परिणीता प्रियोपचारसुखिनी हिता न भूताऽसि । कथं मम भविष्यसीत्यभिधाय गात्राणि तस्याः खंडं खंडं कारयित्वा तेन दिक्षु निक्षिप्तानि । पठितं च-

और स्वयं पांच सौ असवारोंके सहित सन्नाह करके दुर्गावरोधके समय दक्षिण द्वारके ऊपर जा डटा, जब शत्रुकी सेना तथा सहावदीन सामने आकर डट गया और जब भगवान् सूर्य यह सब दृश्य देख रहे थे तब विद्याधर निर्भीक हो शत्रुकी सेनामें घुस गया.और अपनी तलवारके प्रहारसे क्षणमात्रमें शत्रुके असंख्य दलोंका संहार कर डाला. और स्वयं बाणोंके व्रणसे विह्वल हो पुष्पित किंशुकके समान कलेवरको त्याग सूर्यमण्डल भेदी हुआ, और विपक्षवृन्दोंने उसके शोणितकी वन्दना की. इसके पश्चात् सहावदीनने किलेको दखल करके कोशको प्राप्त करलिया, सुभटोंको आदर देकर सन्तुष्ट किया. राजा जयचन्द्र कहां गया और क्या हुआ. इसका उसे कुछ पता न लगा. इसके पश्चात् यवनेश्वरने महिषी शुभदेवीको बुला भेजा वह आकर सामने खडी होगई. तब उसने उससे पूछा कि, अय महिषी !

बता तू राजा जयचन्द्रकी कैसी स्त्री है. रानी–हे देव ! मैं जयचन्द्रकी पाणिगृहीता स्त्री हूं और उसकी प्रियतमा भी मुझको ही समझिये यह सुन राजा सहावदीनने कहा रे स्वामीके साथ द्रोह रखनेवाली पापिनी नारी ! तू बताती है कि, मैं राजा जयचन्द्रकी प्रियतमा पाणिगृहीता स्त्री हूँ पर मैं देखता हूं कि, उसके विनाशका कारण तू ही हुई है. तो यदि तू उसकी न हुई तो तू मेरी हो यह कब हो सकता है? ऐसा कहकर यवनेश्वरने उसके शरीरको खण्ड खण्ड करवाकर दिशाओंमें फेंकवा दिया. और निम्न लिखित पद्य पढा.–

सुखोपकरणं नारी प्रेम तस्यां प्रियोचितम्।
वश्यता च निषिद्धैव स्त्रीवश्यो याति दुर्गतिम् ॥ ७ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां घस्मरकथा ।

स्वमहिला सुखसाधन है अतः उचित प्रेम करे उसमें पति।
उचित है उसकी नाहिं वश्यता नर दुखी बनता महिलावश ॥ ७ ॥

इति घस्मर कथा समाप्त।

इति कामकथाः ।

मोक्षकथाः ।

४० निर्बन्धिकथा।

मोक्षं तावद्वदंत्येके नित्यात्यन्तसुखोदयम्।
दुःखाभावं परे प्राहुर्मुमुक्षुर्यस्तमिच्छति ॥ १ ॥
काश्यां तनुपरित्यागात्साक्षात्कारेण चात्मनः।
भक्त्या त्रैलोक्यनाथस्य मोक्षः सिद्ध्यति तद्विदाम् ॥ २ ॥

मुमुक्षु लोग मोक्षकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं:–

कोई कहते मोक्ष नित्य अत्यन्त सौख्य है।
पर फिर कहते मोक्ष दुःखका अति अभाव है॥
जो मानव नरपाल ! मोक्षकी इच्छा रखते।
मुमुक्षु उनको जगतीमें बुध वर हैं कहते ॥ १ ॥
निज तनको काशीमें मानव जो तजते हैं।
भक्ति तथा त्रैलोक्य नाथकी जो करते हैं॥

साक्षात्कार तथा आत्माको जो करते हैं।
वे नरपालक ! मोक्ष लाभ ध्रुवही करते हैं ॥ २ ॥

केचित्तु तत्त्वज्ञानमेव मोक्षसाधनं वदन्ति । काशीमरणशिवभक्तिप्रभृतिभिस्तत्त्वज्ञानं जन्यते । तत्त्वज्ञानद्वारा मोक्षः साध्यत एव इति-तस्माच्च तत्त्वज्ञानिनां कथाः प्रारभ्यंते । ते च त्रिविधाः—

कुछ विद्वानोंका तो कथन है कि, नहीं ये सब मोक्षके साधन कदापि नहीं हो सकते, अगर मोक्षकी प्राप्ति होती है तो केवल तत्त्वज्ञानसे, इसके विना कोई चाहे करोडों प्रबन्ध करे मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती. इसलिये तत्त्वज्ञानियोंकी कथा शुरू की जाती है. तत्त्व ज्ञानी तीन प्रकारके होते हैं—

निर्बन्धी निस्पृहश्चैव लब्धसिद्धिस्तथैव च ।
मोक्ष एकविधः प्रोक्तस्त्रिविधास्तु मुमुक्षवः ॥ ३ ॥

निर्बन्धी निस्पृह तथा लब्ध सिद्धि त्रिप्रकार ।
मुमुक्षके हैं मोक्षका फिर है एक प्रकार ॥ ३ ॥

तेषु निर्बन्धी यथा—

इन तीनों प्रकारके मुमुक्षुओंमेंसे पहले निर्बन्धीकी कथा शुरू की जाती है. निर्बन्धी वह कहा जाता है:—

एषणानां परित्यागाद्गुरुवाक्यपरिग्रहात् ।
निर्बंधात्तत्त्वबोधस्य निर्बंधी यतिरुच्यते ॥ ४ ॥

जो है प्राणी त्यागते एषणाको फिर जो गुरुके वाक्यको सुनते हैं ।
हठसे करते जो तथा तत्त्वबोध निर्बन्धी वे हैं महीपालवर्य! ॥ ४ ॥

बभूव द्वारकायां शुद्धाशयो नाम ब्राह्मणः । तस्य विवेकशर्मा नाम पुत्रो जातः । स च शैशबादारभ्य पूर्वजन्मसंस्कारेण संसारचरित्रमस्थिरं मन्यते । तथा हि—

द्वारका नगरमें एक ब्राह्मण रहता था, उसका नाम था शुद्धाशय. उसे एकही पुत्र था. जिसका नाम था विवेकशर्मा. विवेकशर्मा अपने जन्मसेही संसारको अस्थिर समझकर इससे हमेशा घृणा रखा करता था, क्योंकि मनुष्यका संस्कार प्रबल है, देखो:—

अत्ति गृध्रशिशुर्मांसं तृणं च मृगशावकः ।
पोतः प्राक्तनसंस्काराद् दुग्धं पिबति मानवः ॥ ५ ॥

संस्कारसेही निज पूर्वजन्मके है मांस खाता शिशु गृध्रका सदा ।
खाता मृगोंका शिशु घास है तथा पीता जनोंका शिशु दुग्धही सदा॥

पश्चाद्विद्याभ्यासेन शैशवं निनाय । प्राप्तयौवनोऽप्युदासीनस्तत्त्वज्ञानं याचमानः पप्रच्छ पितरम् । पुत्र उवाच । पितरहं तत्त्वज्ञानार्थी तत्त्वज्ञानविदं कंचिदुपजीवितुमिच्छामि । नहि गुरुचरणानुग्रहेण विना तत्त्वज्ञानलाभः संभवति । भवांश्च मम पिता तत्त्ववित्च शास्त्रदृष्टिस्ततो भवन्तमेवोपजीवामि । यतः-

इसके पश्चात् विवेकशर्माने अपना शैशव विद्याके अभ्यासमें बिताया, अब उसकी युवा अवस्था आगई पर उसका चित्त सांसारि विषयोंमें कुछभी नहीं लगता वह हमेशा उदासीन ही रहा करता. एक दिन उसने तत्त्वज्ञानकी जिज्ञासा रखकर अपने पितासे कहा कि, हे पिताजी ! मुझे तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी बडी उत्कंठा है सो मेरी इच्छा है कि, किसी तत्त्वज्ञानीकी सेवासे तत्त्वज्ञानका लाभ करूं गुरुके चरणानुग्रहके विना विद्यालाभ हो यह कदापि सम्भव नहीं, आप मेरे पिता हैं फिर आपमें तत्त्ववित्ता तथा शास्त्र दृष्टिताभी कम नहीं है फिर मैं आपकीही सेवा क्यों न करूं ? क्योंकि. कहाभी गया है:-

गृहस्थितायां विद्यायां विद्यार्थी न दिशो व्रजेत् ।
मूले लब्धफलः को वा प्रारोहति तरोः शिरः ॥ ६ ॥

विद्या नृपाल ! यदि है निज गेहमें तो
जावे न छात्र परदेश कभी तदर्थ ।
है कौन भूमि तलमें वह देह धारी
पा मूलमें फल चढे तरु-शीर्षपै जो ॥ ६ ॥

पितोवाच । पुत्र ! त्वमिदानीं युवा। ततो यौवनोचितं सुखमनुभव । गृहाश्रमं परिगृह्य तदनंतरं संन्यासी भविष्यसि । नहि वृक्षमारोढुकामः प्रथमं शाखाग्रमारोहति । पुत्र उवाच । तावति जीवने मम कः प्रतिभूर्भवतु । हे पितः ! संसारचरित्रं परिदृश्यमाने परम-

गहनं भासते । यतः पुत्रे रुजा पीडिते स्नेहलोऽपि पिता न तद्वेदना-भागभाजनं भवति । प्रियायां यमपुरुषैर्नीयमानायां समर्थोऽपि स्वामी न तां परित्रातुं क्षमते । जठरजातस्यापि पुत्रस्य मनोरथं न जानाति माता । किमाधिकम् । निजाङ्गमपि व्याधिविकृतं न स्वाधीनं पुरुषस्य । ततः कोऽपि कस्यापि नास्तीति निर्द्धारणवती मम बुद्धिर्न प्रवर्त्तते लोकयात्रासु । ततः परमपुरुषार्थं सिसाधयिषुरस्मि । अर्थकामौ न पुरुषार्थौ । न हि धनं प्राणत्राणबीजम् । कोटीश्वरस्य निधनदर्शनात् । न धनं तृप्तिकारणम् । लक्षेश्वरस्यापि तदधिक-लिप्सासंभवात् तथोत्तरं तृष्णावृद्धेश्च । कामोऽपि चिरतरसमयसेव्य-मानो हि पुरुषं न कृतार्थयति । धर्मोऽपि भोगनाश्यफलत्वेन पुरुषा र्थाभास एव लक्ष्यते । अस्ति देशांतरस्य स्वर्गादेः कदाचिदप्यन्तः । ततो मोक्ष एव परमपुरुषार्थः । स कथं संपद्यतामित्यादिशतु पुत्रे करुणार्द्रो भवान् । पितोवाच । साधु पुत्र साधु । संसारः पर्यन्त-विरस इति यथार्थमेव जानासि । मोक्षं यदि याचसे तदा कथयाम्यु-पायम् ' किंतूपायज्ञानमात्रं न प्रयोजकम् । नो चेदहमेव मुक्तः स्याम्-

यह सुन कर पिताने कहा कि, हे पुत्र ! तू इस समय युवा है इसलिये तुझे उचित है कि, तू इस समय यौवनोचित सुखका अनुभव कर, और गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके पश्चात् संन्यासी बन. क्योंकि गृहस्थाश्रम पहला आश्रम है, क्या तू समझता है कि, यदि कोई मनुष्य वृक्ष पर चढना चाहता हो वह पहले शाखाके ऊपर ही चढे नहीं वह पहले जड पर ही चढेगा फिर शाखा पर यह सुन पुत्र बोला हे पिता ! आपका कहना यथार्थ है पर यह तो बताइये कि, मैं तब तक जीता रहूँगा इसका क्या निश्चय है ? मुझे तो देखनेसे संसारका चरित्र बडा गहनसा भासित होता है, मैं देखताहूँ कि, पिता पुत्रको रोगसे पीडित देखता हुआ भी उसके वेदना भागका भाजन नहीं बनता. प्रियतमा मृत्यु पाशसे बंधी हुई यमराजके पुरको जा रही है. ऐसा देख समर्थ होने परभी पति उसकी रक्षा करनेमें क्षम नहीं होता. फिर देखिये माता अपने पुत्रका भी मनोरथ नहीं जान सकती. यद्यपि वह उसीके उरसे उद्भूत हुआ है.

अब आपसे अधिक कहांतक बतलाऊँ मनुष्यका अपना शरीरभी जब कि वह व्याधिसे विकृत होजाता है. अपने अधीनमें नहीं रह जाता है. हे पिता ! इनको देख मुझे तो पक्का विश्वास हो गया है कि, इस दुनियामें किसीका कोई नहीं. इस कारणसे मेरी बुद्धि लोकयात्राओंमें प्रवृत्त होना नहीं चाहती. इस दुनियामें यदि कोई सच्ची वस्तु है तो परम पुरुषार्थ है. उसीका सिद्ध करना मेरा मुख्य उद्देश्य है. यदि कहिये कि, अर्थ तथा धर्म पुरुषार्थ हैं तो यह सम्भव नहीं क्योंकि देखनेमें आता है कि, कोई मनुष्य कोटीश्वर रहने परभी क्षणमात्रमें कालका ग्रास बन जाता है, और धन होनेसे तृप्ति हो यहभी सम्भव नहीं. क्योंकि मनुष्य लक्षेश्वर रहने परभी अधिक धनकी लिप्सा रखा करता है तथा उत्तरोत्तर उसकी तृष्णाकी वृद्धिही होती जाती है. यदि कामको पुरुषार्थ कहें तो ठीक नहीं. क्योंकि चाहे कोई मनुष्य जन्मभर इसका सेवन करता रहे तथापि यह पुरुषको कृतार्थ करे यह देखनेमें नहीं आता, अब रह गया धर्म वहभी पुरुषार्थ नहीं वहभी पुरुषार्थाभासही प्रतीत होता है क्योंकि धर्मका जो फलस्वरूप स्वर्ग है उसकाभी कभी न कभी अन्त होताही है. इसलिये अब सिद्ध यह हुआ कि, मोक्षही परम पुरुषार्थ है और नहीं. सो हे पिता ! वह परम पुरुषार्थ कैसे प्राप्त हो सकता है. कृपा करके कहिये. यह सुनकर पिता बोला-वाह रे पुत्र वाह तूने यथार्थही बताया कि. यह संसार पर्यन्त विरस है. सो यदि तू मोक्षही चाहता है. तो ले मैं तुझे उसकी प्राप्तिका उपाय बताये देता हूँ पर यह निश्चय रख कि उपाय ज्ञानमात्र मोक्ष प्राप्तिका साधन कदापि नहीं है. यदि यह बात रहती तो मैं ही मुक्त हो जाता. देख'-

उपायाः खलु पन्थानो गन्तारस्तेषु दुर्लभाः ।
सन्तु वर्त्मविदः सर्वे गन्तैव लभते पदम् ॥ ७ ॥

उपाय रूपी पथमें सुपुत्र! गन्ता महा दुर्लभ है सदैव ।
हो वर्त्म वेत्ता बहु क्यों न किन्तु है सिर्फ गन्ता पद लाभ भागी ॥ ७॥

तथा च श्रुतिः-"आत्मा वा अरे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" इत्यभिधाय तदुपायानाह-

रे पुत्र ! अब सुन वेद क्या कहता है ? वह कहता है कि, जो मुमुक्षु हैं

उनको चाहिये कि वे हमेशा आत्माका श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन किया करे. अच्छा यह सुन लिया न, अब मोक्ष लब्धिके उपाय सुनः-

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः ।
मत्वा च सतत ध्येय एते दर्शनहेतवः ॥ ८ ॥

श्रुति वाक्योंसे श्रवण ईशका प्रिय सुत ! करना
तर्कौंसे उसको तथैव फिर अवगत करना ।
अवगत कर फिर सदा ध्यान उसका ही धरना ।
इन उपायको ही दर्शनका हेतु समझना ॥ ८ ॥

अयमर्थः-यदात्मा वेदवाक्येभ्यः श्रोतव्य आकर्णनीयः मंतव्यश्चोपपत्तिभिरिति यथा वेदवाक्येन बोधितस्तथोपपद्यते वा न वेति तर्कसंपर्कशालिनाऽनुमानेन मंतव्यो ज्ञातव्य इत्यर्थः। तथा च श्रुतिः "शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति । मत्वा च सततं ध्येयः" इति पुनः पुनश्चिंत्यमाने ह्यात्मनि यदा विषयव्यावृत्तं मनो निश्चलतां याति तदात्मा प्रत्यक्षो भवति मनोऽपि तत्रैव लीयत इति मुक्तेरुपायाः। तथा चोपनिषत्-

तात्पर्य यह है कि पहले वेद वाक्योंके द्वारा आत्माका श्रवण करना पश्चात् वेदके वाक्योंसे बोधित जो आत्मा है वह वैसी है अथवा नहीं यह तर्कसम्पर्कशाली अनुमानसे जानना, चाहिये. कहा भी गया है कि, जो मनुष्य शब्द ब्रह्ममें निष्णात है वह परब्रह्मको प्राप्त करता है. इसके पश्चात् उस आत्माका हमेशा ध्यान करता रहे. इस प्रकार जब मन धीरे धीरे विषयोंसे व्यावृत्त हो निश्चलताको प्राप्त हो जाता है तब आत्माका प्रत्यक्ष हो जाता है और मन भी उसीमें लीन हो जाता है बस यही मुक्तिके उपाय हैं. उपनिषदका भी यही कथन हैः-

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च ।
अशुद्धं कामसङ्कल्पात् शुद्धं कामविवर्जितम् ॥ ९ ॥
निरस्तविषयासंगं संनिरुद्धं मनो हृदि ।
यदा यात्यचलीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥ १० ॥

संसारमें शुद्ध अशुद्ध ये दो प्रकारके हैं मन प्राणियोंके ॥
अशुद्ध होता यह काम युक्त । विशुद्ध ही है इससे विहीन ॥ ९ ॥

विषयमें रतिको जब त्यागके हृदयमें रहता मन रुद्ध है।
न चलता उससे जब है तब मनुज है लखता पद मुक्तिका ॥ १०॥

मनसस्तु विषयासंगो दुर्निवारः । मनसि निर्विषये सति सुगम एव मुक्तेः पन्थाः । तद्यथा—

पर एक बात है कि मन विषयोंका संग त्याग दे यह बडा मुश्कल है यदि कहीं इसने विषयासंगको त्यागा तो हे पुत्र! समझ रख कि मुक्तिका मार्ग मुट्ठीमें ही है. देखोः—

तृष्णा व्याघ्री ग्रसति न यदा व्यात्तवित्तौघवक्त्रा
कामो वामानयनविशिखैश्चेन्न चौरो निहंति ।
तत्रालोकं तिरयति न चेन्मोहनामान्धकारो
मुक्तेः पन्था न हि जिगमिषोस्तत्किमेकाहगम्यः ॥ ११ ॥

व्यात्त वित्त रूपी मुखसे यदि तृष्णा व्याघ्री ग्रसे नहीं।
नयन रूप इषुसे वामाके काम चोर यदि हते नहीं ॥
मोह रूप तम निश्चय ज्ञानको यदि आच्छादित करे नहीं।
तो जिगमिषुका मुक्ति मार्ग क्या एक दिवसमें गम्य नहीं॥११॥

ततो यमनियमासनप्रत्याहारध्यानधारणासमाधय इत्यष्टभिरंगैः संपन्नं योगमुपजीवन्नात्मसाक्षात्कारे भव निर्बन्धी । पुत्र उवाच । गुरोः प्रसादादद्यारभ्य भविष्यामि निर्बंधी । पितोवाच । तर्हि प्राप्स्यसि फलम् । श्लोकस्तु—

तो हे वत्स! यम नियम आसन प्रत्याहार ध्यान धारणा और समाधि ये जो योगके आठ अंग हैं इनके सहित योगमें संलग्न होकर ब्रह्मके साक्षात्कारमें निर्बन्धी बन जा, यह सुन पुत्रने कहा—बहुत अच्छा मैं आपकी अनुकंपासे निर्बन्धी बनूंगा यह सुन पिताः—तो विश्वास रख कि तू इसका फल भी शीघ्रही प्राप्त कर लेगा. देखः—

निर्बन्धाज्जलधिं तरंति मनुजा बध्नन्ति वन्यं गजं
विद्यानामुपयान्ति पारमुपरि भ्राम्यन्ति रज्जोरपि ।
योगाभ्यासरता जितेन्द्रियगणा जित्वा समीरं शनै-
र्दुर्लक्ष्यं परमं पदं सुमनसः पश्यंति निर्बंधिनः ॥ १२ ॥

निर्बन्धसे जलधिको तरते मनुष्य ।
हैं बांधते सुत ! यथा बनके गजोंको ।
होते तथा सकल शास्त्र सुपारगामी ।
ये रज्जुके उपर भी झुलते तथा हैं ॥
निर्बन्धि मानव तथा निज इन्द्रियोंको ।
हे पुत्र ! आशु गतिको करके निरुद्ध ॥
अभ्यासमें निरत सन्तत योगके हो ।
पाते परेश पदको क्रमशः अवश्य ॥ १२ ॥

ततस्तथा निर्बंधी स द्विजपुत्रोऽल्पेन कालेन कैवल्यभाग् बभूव॥

इति पुरुषपरीक्षायां निर्बंधिकथा ॥

इसके उपरान्त वह निर्बन्धी द्विज कुमार थोडे ही कालमें कैवल्यको प्राप्त होगया ॥

इति निर्बन्धिकथा समाप्त ॥

---

४१ निस्पृहकथा ।

तद्यथा—

दोषैर्द्वेषादिभिस्त्यक्तो गुणैर्युक्तो दयादिभिः ।
व्यावृत्तो विषयेभ्यश्च निस्पृहो मुनिरुच्यते ॥ १ ॥

निस्पृह पुरुष वह कहा जाता है.—

दया आदि गुणसे जो प्राणि जगमें युत है
तथा द्वेष आदिक दोषोंसे जो वर्जित है ।
फिर संसारिक विषय संगसे जो वर्जित है
कहते उसको प्राज्ञवर्य नृप ! मुनि निस्पृह हैं ॥ १ ॥

बभूव वाराणस्यां वामनानन्दनामा परिव्राजकः । स चाधीतवेदांतो गुरुवचनपरिपालनपरायणो योगाभ्यासे सनिर्बंधः क्रमजितपवनः परमनिर्विण्णः शत्रुमित्रयोः समानदृष्टिः न लाभेन हृष्यति न वाऽलाभेन विषीदति । न सुखाय स्पृहयति। न दुःखैरुद्विजते । तथाभूतमपगतरागं तं विदित्वा भगवान्नारायणः परमसन्तुष्टस्तस्मै वचनं ददौ ।

स तु साक्षान्नारायणवचनं श्रुत्वा परमहृष्टः क्रमेण नारायणदर्शनार्थी बभूव प्रोवाच च । भगवन्नारायण सर्वतोऽक्षिशिरोमुख सर्वमय ! यथा भक्तवत्सलतया मे वचनं ददासि तथैव मे दर्शनं देहि । श्रीभगवानुवाच । मुने वामनानंद! दर्शयिष्यामि तुभ्यमात्मानम्। किं तु तवाग्रिमे जन्मनि यदा मनस्ते निर्विषयं भविष्यति । परिव्राजक उवाच । भगवन्नेषणात्रयपरित्यागपवित्रस्य कुतो मम विषयाभिलाषः। श्रीभगवानुवाच ।वत्स न विश्वसितव्यमिन्द्रियेषु। सम्यग्विषयसान्निध्यं हि विकारहेतुः । विषयसान्निध्येऽपि यस्य हृदयं न विक्रियते तथाविधः संन्यासी कृष्णचैतन्यः केवलम् । स तु संप्रति दण्डकारण्ये तिष्ठति । सोऽस्मिन्नेव जन्मनि मम साक्षाद्दर्शनं प्राप्तो मुक्तो भविष्यति । त्वमपि यदा तत्समानो भविष्यसि तदा प्राप्स्यसि मम दर्शनम् । परिव्राजकश्चिंतयामास । अहो मदधिकोऽप्युदासीनः पुरुषो विद्यते। भवतु तं गत्वा पश्यामीति दण्डकारण्यं जगाम । तत्र स परमहंसः पुरसन्निधाने निरापदि निर्मशके शंभोरायतने समाधिस्थो याचितभिक्षश्च तिष्ठति । पुरं न प्रविशति । तथाविधं तं दृष्ट्वा स वामनानंदः स्वाधिकं तु न मन्यते । निकटस्थो निरूपयति । किं मदधिकं निर्विकारत्वमस्य । चिरनिरूपणीयो हि व्यक्तिस्वभावः । तत्पश्यामि तावत् । एवं स्थिते एकदा च सुखरात्रिपर्वरात्रौ तस्य नगरस्य राज्ञाऽवमानिता, तस्य महिषी सामर्षा भवनान्निर्गत्य देवालये यतिमुपससार।विपुलश्च धनमस्य पुरतोऽर्पयामास ।

वाराणसी पुरी (काशी) में वामनानन्द नामका एक संन्यासी रहता था, वह वेदान्त विद्याका अच्छा विद्वान् था, वह गुरुके आज्ञा पालनमें हमेशा संलग्न चित्त रहा करता था. योगाभ्यासके द्वारा पवनको जीत लेना तो मानो उसके लिये खेलका काम था, इस प्रकार वह धीरे धीरे बडा निर्विण्ण होगया, वह शत्रु तथा मित्रोंको समान दृष्टिसे ही देखने लगा, लाभ तथा अलाभसे न तो उसे कुछ हर्ष ही होता और न विषाद ही, वह स्वप्नमें भी सुखकी स्पृहा नहीं रखता, दुःखकी तो वह कुछ पर-

वाह ही नहीं करता था, इस प्रकार उसको रागसे रहित देखकर जगत्पिता भगवान् उससे बडा सन्तुष्ट हुआ और उसने अदृश्य हो वामनानन्दके साथ बात चीत की, यह देख वामनानन्द बडा सन्तुष्ट हुआ और क्रमसे भगवान्का दर्शनाभिलाषी होकर बोला कि, हे सर्वतोऽक्षि शिरोमुख सर्वमय भगवन्! जिस भक्तवत्सलतासे तू अदृश्य होकर मेरे साथ वार्तालाप करता है उसी भक्तवत्सलतासे मुझको अपना दर्शन देनेकी कृपालुता क्यों न प्रकट करता, दर्शन दे. यह सुन भगवान्ने कहा रे वामनानन्द! धीरज धर मैं तुझे दर्शन अवश्य दूंगा, पर इस जन्ममें नहीं अगले जन्ममें, जब कि तेरा मन विषय वासनासे रहित हो जायगा. यह सुन वामनानन्द बोला कि, हे भगवन्! क्या तू नहीं जानता कि, अब मेरे मनमें एषणात्रयकी बू भी न रह गई है, फिर अब तक तेरे चित्तमें ऐसी शंका क्यों कि मेरा मन विषयवासनासे अब तक हीन नहीं हुआ है, यह सुन भगवान्ने कहा कि, रे वत्स! इन इन्द्रियोंके ऊपर विश्वास न कर, विषयोंके सान्निध्य होने परभी जिसका चित्त कभी विकृत नहीं होता है ऐसा केवल संन्यासी कृष्णचैतन्यही है, वह इस समय दण्डकारण्यमें रहता है, वह इसी जन्ममें मेरा दर्शन प्राप्त करके मुक्त होनेवाला है, तू भी उसके समान बन फिर मेरा दर्शन प्राप्त करेगा, यह सुन परिव्राजक वामनानन्द सोचने लगा यह सुनकर तो मुझे बडा आश्चर्य प्रतीत होता है कि, मुझसे भी बढकर यहां उदासीन पुरुष वर्तमान है, खैर वहां जाकर देखना चाहिये, ऐसा परामर्श करके संन्यासी वामनानन्द दण्डकारण्यमें जा पहुँचा वहां जाकर देखता क्या है कि परमहंस कृष्णचैतन्य पुरके निकट भगवान् चन्द्रशेखरके एक मन्दिरमें समाधिस्थ होकर बैठा है, और भिक्षाके द्वारा अपनी जीवन यात्राका निर्वाह किया करता है, यह देख वामनानन्द उसके निकटमें जाकर सोचने लगा क्या भगवान्का कहना सच है क्या इसमें निर्विकारता मुझसे भी अधिक है? अच्छा इसकी परीक्षा समय सापेक्ष है, क्योंकि किसी व्यक्तिका स्वभाव जल्दी जान लेना यह बडा कठिन है: इस प्रकार कुछ दिन बीत गये, दीपावलीका पर्व उपस्थित हुआ, रात्रिके समय नगरके स्त्री पुरुष दीपावलीके उत्सवमें मस्त थे; इसी समय किसी कारण उस नगरके रानी राजामें झगडा होगया,

राजाने रानीको खूब फटकारा, वह अपमान रानीसे न सहा गया, वह अपने साथ बहुतसे द्रव्य लेकर परमहंस कृष्णचैतन्यके निकट चली गयी, और सब द्रव्य परमहंसके सामने रख दिये.

यतिस्तां राजमहिषीमुवाच। अयि किमाकांक्षितं भवत्या? किमर्थं वा काष्ठपाषाणवत्कठिनं मामुपसर्पसि? धनं स्वकीयं गृहाण। अहं तु यतिरस्मि। मम किं धनैः किं च स्त्रीभिः-

यह देख यतिने कहा कि, रे रानी! बता तू क्या चाहती है? काष्ठ पाषाणके समान कठिन मेरे पास क्यों आयी है, ले अपना धन यहांसे उठा, मैं संन्यासी हूँ मुझे धन या स्त्रीसे क्या प्रयोजन, सुनः-

त्यक्तसंसारभोगस्य यतेर्यस्य धनैषणा।
किं तस्य यतिभावेन तृष्णापङ्के निमज्जतः॥ २॥

संसारके त्याग समस्त भोगको।
जो चाहता है यति अर्थको तथा॥
तृष्णा स्वरूपी अति पङ्क मग्न है।
क्या लाभ ही है यति भावसे उसे॥ १॥

अपि च-

वसु लोष्ठसमानं मे स्त्रियः सर्वाश्च मातरः।
जन्तवः सुहृदः सर्वे परबुद्धिर्न कुत्रचित्॥ ३॥

और भीः-

मेरे लिये है वसु लोष्टके सम तथा परस्त्री मम है प्रसू सम।
है बन्धुके तुल्य समस्त जन्तु भी मुझे किसीमें पर बुद्धि है नहीं॥ ३॥

इति समस्तविवर्त्तं पश्यन् वामनानंदस्त्रिदण्डी साश्चर्यो बभूव चिंतयामास च। तद्यथा-

इन सब विवर्त्तोंको देख कर त्रिदण्डी वामनानन्द बडा आश्चर्यित हुआ और सोचने लगा कि-

अहमेनामुपसर्पामीति यावत्तथा करोति तावदेव भगवता नारायणेन वाग् दत्ता। श्रीभगवानुवाच। अये वामनानंद! किमिदं मयोक्तं व्यर्थमेव यदिन्द्रियेभ्यो न विश्वसितव्यमिति। तच्छ्रुत्वा वामनानन्दः सलज्जो बभूव। श्लोकस्तु-

इस त्रिभुवन सुन्दरी राज महिषीको मानो विधाताने यहां मेरे लिये ही भेजा है. तो मुझे इससे क्यों मिलना न चाहिये ऐसा सोच कर वह त्रिदण्डीने उस राजपत्नीसे ज्योंही मिलना चाहा कि, त्यों ही भगवा नारायणने अदृश्य होकर कहा कि, रे वामनानन्द ! क्या तुझे याद है जो मैंने कहा था कि इन्द्रियोंका विश्वास न करना, अब कह वह सच्चा हुआ या नहीं? यह सुनते ही वामनानन्द बडा लज्जित हुआ. और बोला:-

यावल्लौल्यं वसति हृदये यावदर्थाभिलाषो
यावच्चेतः कुसुमविशिखत्रासमंगीकोति ।
यावत्सर्वेष्वपि समतया हेतुहीना न मैत्री
तावन्नात्मा परमगहनो हंत मच्चित्तमेति ॥ ४ ॥

इति पुरुषपरीक्षायां निस्पृहकथा ॥

जब तक लौल्य हृदयमें बसता जब तक इच्छा धनकी है ।
जब तक रहती भीति चित्तमें जगमें कुसुम विशिखकी है ॥
जब तक सबसे समतासे ही बिना हेतु मैत्री नहिं है ।
तब तक परम गहन आत्माको मम मन पा सकता नाहिं है ॥ ४ ॥

इति निस्पृहकथा समाप्त ॥

---

४२ लब्धसिद्धिकथा ।

विरक्तः सर्वभोगेषु स्वात्मानन्दभृतान्तरः ।
नेच्छन्नपीश्वरात् किंचिल्लब्धसिद्धिरिहोच्यते ॥ १ ॥

लब्धसिद्धि उसे कहते हैं:-

सकल भोगको जिसने जगमें त्याग दिया है
अन्तर स्वात्मानन्द प्रपूर्ण हुआ जिसका है ।
ईश्वरसे भी नहीं चाहता कुछ जो फिर है
लब्धसिद्धि कहते उस नरको पण्डित वर हैं ॥ १ ॥

आसन्नुज्जायिन्यां भर्तृहरिशकविक्रमादित्यनामानस्त्रयः सोदरा राजकुमाराः । तेषां मध्ये प्रथमो भर्तृहारिर्नाम कुमारः प्राक्तनजन्मपुण्येन दोषादिरहितः शुचिः शांतः सकरुणः संसारविरक्तश्चाभवत् ।

क्रमेण पितर्युपरते स राज्यमनिच्छन्नपि मंत्रिभिरनुनीय राजा कृतः । सोऽपि राज्यकर्मसु सचिवानादिदेश । यदहो सचिवाः शृणुत । राज्ञा राज्यसुखमनुभवनीयम् । सुखं त्वननुभूतमनुभूयते । ततो मां भुक्तभोजनं न कारयथ । ततस्तथा कुर्वाणेषु मंत्रिषु स दंडनीतिचतुरः शत्रून्निराकुर्वन्नविनीतान् विनयन् प्रजाः परिपालयन् राज्यसुखमनुभवन् वर्षमात्रं समतिनिनाय । वर्षान्ते च मंत्रिण ऊचुः । देव एकेन संवत्सरेण भवता सर्वाण्यपि सिद्धानि राजभोग्यानि भुक्तानि । इतः परं तु पुनस्तान्येव वस्तूनि भविष्यंति । भुक्तभोजनं देवेन निषिद्धमस्ति । अभुक्तं वस्तु देवस्य नास्त्येव । ततो राजभोगं कथं कारयिष्याम इत्यादिशतु देवः । राजोवाच । यदि भुक्तभोग एव कर्त्तव्यस्तदाऽनवस्था । भोगे पुरुषः कृतार्थ एव न स्यात् । तथा च पूर्वश्लोकः–

उज्जयिनी नाम नगरमें भर्तृहरि शक और विक्रमादित्य नाम तीन राजकुमार रहते थे. उनमें भर्तृहरि सबसे बडा राजकुमार था. वह प्राक्तन जन्मके पुण्यसे पवित्र शान्त तथा बडा करुणायुक्त था. उसमें दोषका तो पता तक न था, वह विरक्त भी ऐसा था कि, उसे सांसारिक पदार्थ तो स्वप्नमें भी अच्छे नहीं लगते थे. जब इसका पिता स्वर्गको सिधारा तो मंत्रियोंने इसे राजगद्दी पर बैठनेके लिये कहा पर इसने पहले आनाकानी की, पर मंत्रियोंके विशेष अनुनयसे राजगद्दी पर बैठना मुश्किलसे स्वीकार कर लिया, राजा होनेके दूसरे दिन भर्तृहरिने अपने सचिवोंको बुलाया और कहा कि, हे सचिवो! तुम जानते हो कि, राजाको राज्य सुखका अनुभव अवश्य करना चाहिये पर सुखका अनुभव तो उसी पदार्थसे सम्भव है जो कि एक वार अनुभूत नहीं हुआ है, सो खबरदार, जो पदार्थ मुझको कभी न भोजन कराना जिसका कि मैंने एक वार उपभोग कर लिया है, उस समय कार्यके अनुरोधसे मंत्रियोंने यह बात स्वीकार कर ली और राजाको नित्य नूतन भोजन कराने लगे, राजा भर्तृहरि दण्डनीतिमें बडा चतुर था, इस लिये संसारके सब राजाओंने उसकी आधीनता स्वीकार कर ली थी, अविनीतोंको तो यह ऐसा दण्ड देता था कि, वे इसका नाम सुनते ही काँप उठते थे. इस प्रकार राजा भर्तृहरिने राज्य सुखका अनुभव करते हुए एक वर्ष बिताया, वर्षके

अन्तमें मन्त्रियोंने इससे कहा कि हे देव ! एक वर्षके मध्य आपने सभी राज भोग्य वस्तुओंका उपभोग करलिया है, अब फिर उन्हीं उन्हीं वस्तुओंका उपभोग देवको करना पडेगा, पर देवका तो ऐसा आदेश है-ही नहीं तो अब देव ही बतावें कि हम देवका भोजन कैसा तैयार करें? यह सुन भर्तृहरि सोचने लगा कि, यदि मुझे भुक्त भोग भोगही करना पडेगा तो अनवस्था होती है, क्योंकि इन भोग्य वस्तुओंका [illegible] कभी अन्त है ही नहीं, और ऐसे पुनरावर्ती भोग जातसे मनुष्य [illegible]तार्थ हो यह भी कदापि सम्भव नहीं, कहा भी गया है:-

येन संवत्सरो दृष्टः सकृत्कामश्च सेवितः ।
तेन सर्वमिदं दृष्टं पुनरावर्त्तते जगत् ॥ २ ॥

एक पूर्ण सम्वतको जिसने देख लिया है,
एक बार फिर काम जन्य सुख भोग लिया है ।
उसने मानो देख लिया इस जगमें सब कुछ
पुनरावर्ती है इस जगती तलमें सब कुछ ॥ २ ॥

अपि च-

भोगेनापि न भोगेभ्यो यस्येच्छा विनिवर्त्तते ।
तस्य प्राणान्तिको रोगस्तृष्णा केन निवार्यते ॥ ३ ॥

औरभीः-

करके भी उपभोग जगतकी सब चीजोंका
होता है अभिलाष निवृत्त न उनसे जिसका ।
उसका तृष्णा रोग प्राणको हर लेता है
इस रुजका नर कौन शान्त फिर कर सकता है ॥ ३ ॥

ततः स राजा परमविरक्तः समस्तमपि राज्यसुखं परित्यज्य राज्ये भ्रातरं शकं [illegible]जानं कृत्वा तपोवनं गत्वा तपश्चरणपरायणः प्रतिक्षणब[illegible]नः सुषुम्णान्तर्गतमनाः कृत[illegible] इव बाह्यसंवित्तिशून्यः परमात्मपरिचयपरम[illegible] एकदा तु कथंचिद्भग्नसमाधिः स्वकीयां बल[illegible] दृष्ट्वा त्वक्सारसूच्या सीव्यति । तदा च तं ल[illegible] च दृष्ट्वा भगवता नारायणेन तदलंकृतकुटी[illegible]यति[illegible]

श्रीभगवानुवाच। रे भर्तृहरे ! त्वं मम भक्तोऽसि त्वय्यहं प्रसन्नोऽस्मि । तस्माद्वरं वृणु । राजोवाच-

यह सोच राजा भर्तृहरि पहलेसे विरक्त तो था ही अब भी और विरक्त हो गया उसने उसी दम अपना सारा राज्य सुख त्याग दिया, और अपने कनिष्ठ भाई शकको राज गद्दी पर बैठाकर स्वयं तपोवनमें चला गया, और वहां कठिन तपश्चर्या करने लगा, वह वहां पद्मासन लगाकर तथा अपने मनको सुषुम्णा नाम नाडीमें विलीन करके बैठा रहा करता था, वह परमात्माके साक्षात्कार जन्य परमानन्दसे पूर्ण समाधिमें इस प्रकार मग्न रहा करता था कि, उसे गर्भस्थ बालकके समान बाहरी पदार्थोंकी कुछ भी सम्वित्ति (ज्ञान) न थी, इस प्रकार कुछ दिन बीत गये, एक दिन मुश्किलसे इसकी समाधि टूट गई,इसकी निगाह अपनी बल्कलमयी कंथाकी ओर गई, इसने देखा कि, वह फट गई है, बस अब क्या था भर्तृहरि झट एक कांटा ले आया और उससे कंथाका सीना शुरू किया,भर्तृहरि वार वार उस कांटेमें धागा घुसेडता पर छिद्र न होनेके कारण वह उसमें नहीं घुसता यह देखकर भगवान् खूब हंसे और सुअवसर प्राप्त करके कुटीके निकट आ बोले-रे भर्तृहरि ! तू मेरा बडा भक्त है, तेरी भक्तिसे मैं अतिशय तुष्ट हूं, इसलिये वर मांगले, यह सुन भर्तृहरिने जो कहा सो सुन लीजियेः-

नाहं सागरसंयुतां वसुमतीमायुर्न कल्पायुतं
न स्वर्गं न सुराङ्गनां न च पदं पौरन्दरं कामये ।
निष्कामस्य कुतोऽर्थिता परिहृतार्थित्वाय दानं कुत-
स्त्वं दाताऽसि जगत्प्रभो यदि तदा देह्यर्थिने वांछितम् ॥ ४ ॥

न हूं चाहता धरा ससागर नहीं आयु कल्पायुत ओ
नहीं स्वर्ग नाहिं सुरांगनाको पदवी फिर न ? दरकी ।
अकामिको है कहां अर्थिता अयाचि नरको दान कहां
दो जगपति अर्थीको वांछित दाता यदि हो आप महा ॥ ४ ॥

...ानुवाच । वत्स भर्तृहरे । त्वं निष्काम एवासि । तथाऽपि
...य्यन...थे वांछितदातारि ममापि दानरभसरक्षार्थं किमपि

याचनीयं भवति भवता। राजोवाच। प्रभोराज्ञा नातिक्र
याचे तावदिदं यत्संप्रति कन्थां सीवितुमिच्छोर्मम सू
सूत्रं प्रविशतु । श्रीभगवानुवाच । साधु वत्स तृष्णावि
सांप्रतमागच्छ । ममैव ज्योतिःस्वरूपे लीनो भव ।
साक्षात् सायुज्यरूपां मुक्तिं प्राप । श्लोकस्तु-

यह सुन जगत्पति भगवानने कहा कि, रे भर्तृहरि ! मैं तू निष्काम है, तुझे कुछ नहीं चाहिये तथापि क्या तुझे कि मुझ त्रैलोक्यनाथसे जो तुझे वर देनेके लिये उत्सुक मांगले यह सुनकर भर्तृहरिने कहा कि, हे प्रभु ! मुझे तो न चाहिये तथापि मुझे कुछ न कुछ मांगना ही पडेगा, आज्ञाका भंग करना सेवकका धर्म नहीं सो यदि तुम्हारा है कि, मैं वर दूंगा ही तो लो कृपा करके यह वर दो रन्ध्रमें यह धागा जल्दी घुस जावे यह सुनते ही भगवान् हसने लगे और कहा वाह रे तृष्णा विजयी वीर वाह! अ आ मेरे ज्योतिःस्वरूपमें विलीन होजा, इसके पश्चात् साक्षात् सायुज्य नाम मुक्ति प्राप्त की । कविकी उक्तिः-

यस्मादाविर्भवति भुवनं लीयते यत्र भूयः
पाथस्तेजोगगनधरणीवायवो यादृकाराः ।
यस्मात्किंचिन्न परमपरं नास्ति किंचिच्च यस्य
साक्षात्कारस्थितिपरिचयं तस्य यातोन्तरात्मा

इति पुरुषपरीक्षायां लब्धसिद्धिकथा ॥

जिससे होता जग जिसमें फिर घुस जाता है ।
क्षिति जल गगन प्रकाश वहिं जिसकी विकृति,
जिससे कुछ भी पर न अपर भी है इस जगमें,
हुई नृपात्मा लीन दृष्टिसे ही द्रुत उसमें ॥ ५ ॥

इति लब्धसिद्धिकथा समाप्त ॥

भुक्त्वा राज्यसुखं विजित्य हरितो हत्वा रिपून्संगरे
हुत्वा चैव हुताशनं मखविधौ भृत्वा धनैरर्थिनः ।
वाग्वत्यां भवदेवसिंहनृपतिस्त्यक्त्वा शिवाग्रे वपुः
पूते यस्य पितामहस्स्वरगमद्दारद्वयालङ्कृतः ॥ १ ॥

यमका ग्रास बनाया सब रिपुओंको जिसने ।
राज्य सुखोंका भोग किया अतिशय फिर जिसने ॥
हवन किया मख हुताशमें बहुशः फिर जिसने ।
किया याचकोंको अर्चित धनचयसे जिसने ॥
जो फिर अतिशय पूत नदी श्री वागवतीके ।
तट पर त्याग शरीर सामने शङ्करजीके ॥
वासी दार द्वयके सहित हुए सुर पुरके ।
ऐसे नृप भवदेव पितामह वर थे जिनके ॥ १ ॥

कीर्तिराशिविमलीकृतविश्वः पंडितप्रवरदुर्गतिहर्त्ता ।
दिव्यभाग्यवसतिः किल यस्य देवसिंहनृपतिर्भुवि तातः ॥ २ ॥

जिनने स्वच्छ किया स्वकीर्तिसे सकल जगतको ।
जिनने दूर किया फिर पण्डित वरके दुखको ॥
जो फिर सुभाग्यके इस जगतीमें निवास थे ।
ऐसे नरपति देव सिंह, जिनके सुतात थे ॥ २ ॥

ग्रामगेहसरसीर्बहुकर्ता हेमहस्तिरथदानविदग्धः ।
साहसैकजलधी रणजेता देवसिंहनृपतिर्गुणराशिः ॥ ३ ॥

जिन नरपतिने स्वराज्यमें बहु ग्रामबसाये ।
तथा जिन्होंने बहुत तडाग स्वयं खुदवाये ॥
फिर जो गज रथ स्वर्णदानमें अति पण्डित थे ।
विजयी फिर गुण समूहसे जो मण्डित थे ॥ ३ ॥

[illegible]ज्जनभूमिपालविजयात्क्षोणीषु लब्ध्वा यशो
[illegible]रि दिगङ्गनाकचभरं सत्कीर्तिपुंजास्पदम् ।
तस्य श्रीशिवसिंहदेवनृपतेर्विज्ञप्रियस्याज्ञया
ग्रंथं ग्रंथिलदंडनीतिविषये विद्यापतिर्व्यातनोत् ॥ ४ ॥

इति श्रीसमस्तप्रक्रियाविराजमानरूपनारायणमहाराजाधिराज श्रीमच्छिवसिंहदेवपादानामाज्ञया श्रीविद्यापतिविरचितायां पुरुषपरीक्षायां पुरुषार्थपरिचायको नाम चतुर्थः परिच्छेदः संपूर्णतामवाजीत ॥

रणक्षेत्रमें गौड तथा गज्जन सुविषयके ।
क्षोणी पालकसे जिनने यश पाया लडके ॥
जिसको जिनने माला रचके कुन्दकलीकी ।
वेणीपै रख दिया हरित रुपी रमणीकी ॥
उन श्री श्री शिव सिंह देव नृपके निदेशसे ।
जो रखते थे प्रेम जगतमें अति बुधेशसे ॥
नर पालककी दण्डनीतिके गहन विषय पर ।
विद्यापतिने रचा ग्रंथ यह जो थे कविवर ॥ ४ ॥

इति श्री पं. चन्द्रकान्त पाठक काव्यतीर्थकृत पुरुष परीक्षा-भाषागद्यपद्ये चतुर्थ परिच्छेद समाप्त ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रंथः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण—मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी—मुंबई.